जुलाई-सितंबर, 2015 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
कमला कांत

महत्वपूर्ण निर्णय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 और 173 – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति के किसी दोष के कारण अपने दायित्व से भले ही इनकार करे तथापि, वह प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन है – तथापि, वह पालिसी की शर्तों के भंग के आधार पर बीमाकृत से ऐसी धनराशि वसूल सकती है ।

विपन कुमार बनाम **श्रीमती देवकी देवी और अन्य** 100

संसद् के अधिनियम

निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (29) – (42)

पृष्ठ संख्या 1 – 173 **(2015) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जुलाई-सितंबर, 2015 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 1 – 173)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई-सितंबर, 2015

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अशोक कपूर **बनाम** मुर्तू देवी	131
चन्द्र सिंह और अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	1
दयाल सिंह और एक अन्य **बनाम** भिन्दर कौर	81
नन्द लाल और एक अन्य **बनाम** मीना देवी और अन्य	93
मंजू ठाकुर **बनाम** राज कुमार	49
राजेन्द्र सिंह और अन्य **बनाम** चन्द्रवीर सिंह और अन्य	16
विपन कुमार **बनाम** श्रीमती देवकी देवी और अन्य	100
संजय मदान और एक अन्य **बनाम** नेशनल इंश्योरेंस कंपनी	108

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कांत,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक शर्मा और जगमाल सिंह

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2015 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10)

– धारा 39 – अपील – आग लगने से प्रश्नगत सम्पत्ति का नष्ट होना – प्रश्नगत सम्पत्ति का बीमाकृत होना – बीमा कम्पनी द्वारा मान्य एवं विधिपूर्ण तरीके से नष्ट सम्पत्ति का आकलित क्षतिपूर्ति का एक समझौते के अधीन संदाय करना – प्रभावित व्यक्तियों द्वारा क्षतिपूर्ति धनराशि प्राप्त करना – समझौते को कपट या प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के आधार पर चुनौती देना – चुनौती नामंजूर करना – यदि बीमा कम्पनी द्वारा आग से नष्ट हुई सम्पत्ति का मान्य एवं विधिपूर्ण तरीके से आकलित क्षतिपूर्ति की धनराशि का एक समझौते के अधीन संदाय कर दिया जाता है और प्रभावित व्यक्ति उक्त समझौते के अधीन धनराशि प्राप्त कर लेते हैं तो बाद में कपट या प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के आधार पर उक्त प्राप्ति को चुनौती नहीं दे सकते हैं जब तक कि अन्यथा साबित नहीं कर दिया जाता है क्योंकि उक्त समझौता पूर्ण और अंतिम समझा जाएगा ।

संजय मदान और एक अन्य बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** 108

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 166 और 173 – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति के किसी दोष के कारण अपने दायित्व से भले ही इनकार करे तथापि, वह प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन है – तथापि, वह पालिसी की शर्तों के भंग के आधार पर बीमाकृत से ऐसी धनराशि वसूल सकती है ।

विपन कुमार बनाम **श्रीमती देवकी देवी और अन्य** 100

पृष्ठ संख्या

– धारा 173 – यान दुर्घटना – दुर्घटना में यान में यात्रा करने वाले यात्री की मृत्यु होना – यात्री का मुफ्त यात्री होना साबित नहीं होना – दुर्घटना चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण कारित होना – दुर्घटना के समय चालक के पास वैध और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति होना – यान बीमाकृत होना – बीमा कम्पनी का प्रतिकर संदाय करने का दायित्व – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि यान दुर्घटना, चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई है और यान में यात्रा कर रहा मृतक मुफ्त यात्री नहीं था तथा चालक के पास यान चलाते समय वैध और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी तो यान का बीमा करने वाली बीमा कम्पनी प्रतिकर संदाय करने के दायित्व से बच नहीं सकती है ।

नन्द लाल और एक अन्य बनाम **मीना देवी और अन्य** 93

राजस्थान सेवा नियम, 1951

– नियम 13 – शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक के पद पर चयन – अधिमानता के आधार पर तैनाती न होना – इसके विरुद्ध अभ्यावेदन करना – उप-निदेशक (माध्यमिक शिक्षा), जोधपुर द्वारा अभ्यावेदन खारिज किया जाना – आदेश युक्तियुक्त और न्यायसंगत होना – यदि किसी अभ्यर्थी का लोक पद पर चयन होता है तो वह चयनित होने के नाते ही यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे अपनी पसन्द के स्थान पर तैनात किया जाए क्योंकि तैनाती करना नियुक्ति प्राधिकारी का न्यायिक विवेकाधिकार होता है ।

चन्द्र सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 1

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 227 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 का नियम 1 और 2 तथा 4] – रिट – व्यादेश – संयुक्त संपत्ति का विभाजन नहीं होना – संयुक्त स्वामियों में एक का सम्पूर्ण संपत्ति पर कब्जा होना – कब्जाधारी स्वामी द्वारा अपने अंश से अधिक भाग पर निर्माण कार्य आरम्भ करना – निर्माण कार्य अन्य सह-स्वामियों की सहमति के बिना और विभाजन करवाए बिना किया जाना – निर्माण कार्य रोकने के लिए अन्य सह-स्वामियों द्वारा व्यादेश के लिए वाद फाइल करना – व्यादेश मंजूर होना – इसके विरुद्ध रिट फाइल होना – रिट नामंजूर होना – यदि संयुक्त स्वामित्व वाली भूमि में से कोई एक सह-अंशधारी द्वारा उसका विभाजन करवाए बिना और अन्य सह-स्वामियों की सहमति लिए बिना अपने अंश से अधिक भूमि पर निर्माण करता है तो वह अवैध और अविधिमान्य होगा और ऐसे निर्माण को रोकने के लिए व्यादेश या आदेश मंजूर करना विधिमान्य और विधिसम्मत होता है ।

अशोक कपूर बनाम **मुर्तू देवी** 131

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 100 और आदेश 39 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 5 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 12] – वादियों-प्रतिवादियों – सम्पत्ति के विभाजन समझौता – समझौते के अनुसार सम्पत्तियों का विभाजन न होना – पक्षकारों द्वारा समझौते के अनुसरण में सम्पत्तियों का कब्जा नहीं सौंपना – विनिर्दिष्ट अनुपालन – यदि किसी सम्पत्ति के बारे में पक्षकारों के बीच आपसी समझौते द्वारा बंटवारा कर लिया जाता है तो उक्त समझौते के अनुसार ही उक्त सम्पत्ति का बंटवारा विनिर्दिष्टतः अनुज्ञेय है यदि कोई

पृष्ठ संख्या

पक्षकार इसका पालन नहीं करता है तो पीड़ित पक्षकार अनुपालन माध्यम से उक्त समझौते के अनुसार सम्पत्ति का बंटवारा करने और कब्जा प्राप्त करने का अधिकारी होता है ।

राजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम **चन्द्रवीर सिंह और अन्य** 16

– धारा 115 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 66] – पुनरीक्षण – विल – निष्पादन – उत्तराधिकार – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित संपत्ति का विल निष्पादन अकृत, शून्य और अविधिमान्य है तो वह संपत्ति स्वाभाविक तौर पर उसके नैसर्गिक उत्तराधिकारी को प्राप्त हो जाएगी ।

दयाल सिंह और एक अन्य बनाम **भिन्दर कौर** 81

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 12(1)(क), 13(1)(ik) और (ख) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा जानबूझकर संभोग करने से निरन्तर इनकार करना – पत्नी का नपुंसक होना साबित नहीं होना – क्रूरता – विवाह के पश्चात् यदि पत्नी द्वारा बिना किसी युक्तियुक्त कारण से पति के प्रयास के बावजूद जानबूझकर संभोग करने से निरन्तर इनकार किया जाता है और विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है तो यह क्रूरता की कोटि में आएगा और इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करना युक्तिसंगत और विधिमान्य होगा ।

मंजू ठाकुर बनाम **राज कुमार** 49

चन्द्र सिंह और अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 8 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

राजस्थान सेवा नियम, 1951 – नियम 13 – शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक के पद पर चयन – अधिमानता के आधार पर तैनाती न होना – इसके विरुद्ध अभ्यावेदन करना – उप-निदेशक (माध्यमिक शिक्षा), जोधपुर द्वारा अभ्यावेदन खारिज किया जाना – आदेश युक्तियुक्त और न्यायसंगत होना – यदि किसी अभ्यर्थी का लोक पद पर चयन होता है तो वह चयनित होने के नाते ही यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे अपनी पसन्द के स्थान पर तैनात किया जाए क्योंकि तैनाती करना नियुक्ति प्राधिकारी का न्यायिक विवेकाधिकार होता है ।

वर्तमान मामले में याचियों का चयन प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक (पी. टी. आई.) श्रेणी-II के पद की नियुक्ति हेतु राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा हुआ था और चयन होने पर उन्हें तारीख 27 जून, 2013 के उपाबंध-1 नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था । दृष्टांत के रूप में, याची सं. 1 चन्द्र सिंह पुत्र श्री गुलाब सिंह की आदेश उपाबंध-1 के साथ संलग्न अनुसूची के क्रम सं. 5 के द्वारा सरकारी ज्येष्ठ सेकेण्डरी स्कूल, कल्याणपुर, जिला-बाड़मेर में तैनाती हुई थी । उसने जोधपुर का निवासी होने के कारण जोधपुर जिला में स्थानांतरण और तैनाती चाहने हेतु अभ्यावेदन दिया था । पसंद की तैनाती न मिलने से व्यथित होकर रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय चयन प्रक्रिया में मेरिट के आधार पर प्रशासनिक आदेशों जैसे स्थानांतरण और तैनातियों के विरुद्ध मुकदमों की

आई बाढ़ और ऐसी रिट याचिकाओं के फाइल करने का समर्थन नहीं करता है । प्रथमतः, याचियों द्वारा शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक (पी. टी. आई.) ग्रेड-II के पदों पर नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया में अपनी मेरिट के आधार पर तैनाती दिए जाने के लिए कोई दिशा-निर्देश प्रस्तुत नहीं किया गया है । इस संबंध में, सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि स्थानांतरण और तैनातियां शुद्धतः प्रशासनिक विषय हैं इनमें जांच सीमित आधारों पर ही अर्थात् कानूनी नियमों और विनियमों के भंग या आक्षेपित आदेशों के पारित करने में दुर्भावना सिद्ध करने पर ही न्यायिक संवीक्षा के माध्यम से हस्तक्षेप किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, इनमें से न तो कोई लिया गया अथवा न ही सिद्ध किया गया है । तारीख 3 अगस्त, 2012 के आदेश में पंचायती राज विभाग द्वारा जारी दिशा-निर्देश उन वर्तमान याचियों को समान रूप से लागू नहीं होते हैं, जिन्हें राजस्थान राज्य के शिक्षा विभाग में नियुक्ति के लिए राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा की गई नियमित चयन प्रक्रिया में शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशकों के रूप में नियुक्त किया गया है । अध्यापकों और शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशकों के लिए पंचायत राज विभाग की नियुक्ति और चयन प्रक्रिया भी उसी श्रेत्र के व्यक्तियों के स्थानीय नियोजन के भिन्न परिप्रेक्ष्य में और बढ़ावा देने के लिए ही है, इसे तारीख 3 अगस्त, 2012 के आदेश में ही अनुध्यात किया जा सकता ताकि जहां तक संभव हो उसी पंचायत समिति के निवासियों को उनकी मेरिट के अध्यधीन उनकी तैनाती की जा सके । ये दिशा-निर्देश स्वयमेव ही या अन्यथा वर्तमान याचियों को लागू नहीं किए जा सकते हैं, जो स्वीकृततः राजस्थान सरकार के पंचायती राज विभाग में चयनित और नियुक्त नहीं हुए हैं । ऐसी किसी उपलब्ध कानूनी मार्गदर्शकों की पूर्वोक्त उपधारणा पर आधारित मोनिका मील वाले मामले में समन्वय न्यायपीठ की मताभिव्यक्तियों और निदेश बिना किसी आधार के हैं और इसलिए, इनका, इसमें याचियों द्वारा अवलंब नहीं लिया जा सकता है । इसके विपरीत, तारीख 23 मई, 2014 के आक्षेपित आदेश, उपाबंध-10 में विद्वान् माध्यमिक शिक्षा, उप-निदेशक, जोधपुर द्वारा दिए गए कारण पूर्णतः ठीक, विधिक और समुचित पाए गए हैं । याची को जिला-बाड़मेर के कल्याणपुर में तैनाती दी गई है जो जोधपुर के मुख्य शहर से मुश्किल से 60 किलोमीटर की दूरी पर है जिस जिले में याची ने तैनाती की ईप्सा की है जो वर्तमान मामले में उसकी उच्चतर मेरिट के आधार पर तात्पर्यित है । पिछले कुछ वर्षों से

न्यायालय में इस प्रकृति के मामलों की बाढ़ सी आ गई है और ऐसे मामलों में नैमित्तिक हस्तक्षेप से अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो सकती है, जैसा कि प्रकटतः ऐसा हुआ है । याचियों द्वारा क्रमवार रिट याचिकाओं के बाद रिट याचिकाएं और लगातार मुकदमे फाइल किए गए हैं और आदेशों और मानहानि याचिकाओं के तात्पर्यित अननुपालन के भय से विभाग के प्राधिकारी दबाव में कार्य करने के लिए बाध्य हो गए और उन्हें उनकी पसंद के स्थान पर तैनाती कर दिए । यह पूर्णरूपेण एक अमान्य परिस्थिति है । याचियों द्वारा अपनी पसंद के स्थान पर अपनी तैनाती करने पर जोर देना, इस न्यायालय की न्यायिक प्रक्रिया का अवलंब लेते हुए किसी भी प्रकार से अनुमोदन और समर्थन नहीं किया जा सकता है । इतना कह सकते हैं कि यह ऐसे मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का घोर दुरुपयोग है । यदि ऐसे व्यक्तियों को, जो राज्य स्तर पर चयनित हुए हैं, को उनकी पसंद के स्थान पर तैनाती देने के लिए राज्य सरकार के कोई दिशा-निर्देश होते, यद्यपि ऐसे कोई दिशा-निर्देश नहीं हैं जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, तो भी इस न्यायालय द्वारा उनकी इस बात का समर्थन नहीं किया जाता । बढ़ती हुई बेरोजगारी की स्थिति में, जहां चयन और नियुक्तियां अत्यधिक प्रतियोगिता के साथ कठोर चयन प्रक्रिया के बाद प्राप्त हो रही हों, यदि तैनाती के स्थान को भी, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की विषयवस्तु बना दिया जाए, तो ऐसे मामलों में इस न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करने वाली इससे अधिक कोई और अनावश्यक बात नहीं हो सकती है । वर्तमान मामला स्वयं में ही इस बात का एक सुस्पष्ट उदाहरण है जिसमें ऐसे प्रयोजनों के लिए मुकदमेबाजी हुई हैं । वर्तमान याचियों की रिट याचिकाओं में से पहली रिट याचिका उन अभ्यावेदनों को विनिश्चित करने के लिए इस न्यायालय से अहानिकर निर्देश की ईप्सा करते हुए सामने आई थी जिसे समन्वय न्यायपीठ ने एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 12333/2013 - चन्द्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य का निपटारा करते हुए तारीख 27 जनवरी, 2014 को आदेश जारी किया था । इस आदेश के अधीन जब अभ्यावेदन को उप-निदेशक के युक्तियुक्त आदेश द्वारा विनिश्चित और खारिज कर दिया गया तब भी याची संतुष्ट नहीं हुए और पुनः तारीख 23 मई, 2014 के उक्त आक्षेपित आदेश उपाबंध-10 को अभिखंडित करने के अनुरोध के

साथ वर्तमान रिट याचिका फाइल कर दी और जिसमें याचियों ने बाड़मेर और जालोर के जिलों के बदले जोधपुर में तैनाती देने के लिए प्रत्यर्थियों को परमादेश निदेश देने की ईप्सा की है । यह न्यायालय विद्वान् उप-निदेशक द्वारा दिए गए कारणों में कोई त्रुटि पाने में असमर्थ है और याचियों का अभ्यावेदन खारिज करना पूर्ण रूप से न्यायोचित है । (पैरा 13, 14, 15, 16, 17, 18 और 21)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 15668/2012, तारीख 3 अक्तूबर, 2012 को विनिश्चित : **मोनिका मील** बनाम **उप-निदेशक, सेकेंडरी शिक्षा, जयपुर ;**	5,7,9,10,14
[2013]	एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 14589/2013, तारीख 18 दिसम्बर, 2012 को विनिश्चित : **सचित ओझा** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** ।	10

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2014 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 4025.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री महावीर सिंह के साथ कैलाश जंगीद

प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – याचियों का चयन शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक (पी. टी. आई.) श्रेणी-II के पद पर प्रत्यर्थी-राज्य द्वारा जारी किए गए विज्ञापन के अनुसरण में राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा किया गया था और चयनित होने पर, उन्हें तारीख 27 जून, 2013 के उपाबंध-1 द्वारा नियुक्ति का प्रस्ताव दिया गया था ।

2. दृष्टांत के रूप में, आदेश उपाबंध-1 के साथ संलग्न सूची के क्रम सं. 5 के द्वारा याची सं. 1 चन्द्र सिंह पुत्र श्री गुलाब सिंह की सरकारी ज्येष्ठ सेकेण्डरी स्कूल, कल्याणपुर, जिला-बाड़मेर में तैनाती हुई थी । उसने जोधपुर का निवासी होने के कारण जोधपुर जिला में स्थानांतरण और

तैनाती की ईप्सा करते हुए एक अभ्यावेदन दिया और इसके पूर्व याची सं. 1 चन्द्र सिंह द्वारा एक रिट याचिका अर्थात् एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 12322/2013 फाइल की गई थी, उस रिट याचिका का निपटारा करते हुए, इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ ने याची को अपने विभाग में, निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, बीकानेर के समक्ष एक उपयुक्त अभ्यावेदन करने के लिए वापस भेज दिया । उक्त निदेशक से विधि के अनुसरण में ऐसे अभ्यावेदन का एक माह की अवधि के भीतर विनिश्चय करने की प्रत्याशा की गई थी ।

3. याची द्वारा फाइल उक्त अभ्यावेदन को उप-निदेशक (माध्यमिक शिक्षा), जोधपुर ने विस्तृत और सकारण आदेश द्वारा तारीख 23 मई, 2014 के वर्तमान आक्षेपित आदेश, उपाबंध-10 द्वारा खारिज कर दिया था और उससे व्यथित होकर याची ने पूर्वोक्त आदेश को वर्तमान रिट याचिका द्वारा आक्षेपित करते हुए, इस न्यायालय में पुनः रिट याचिका फाइल की ।

4. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री कैलाश जंगीद ने यह निवेदन किया कि याची पी. टी. आई. ग्रेड-II अध्यापकों के उक्त चयन में मेरिट में उच्चतर था और वह अपनी अधिमानता के स्थान पर तैनात होने का हकदार था और चूंकि उसकी मेरिट से निम्न व्यक्तियों को उनकी पसंद के स्थान पर स्थानांतरित किया गया था इसलिए, याची के अभ्यावेदन को गलत तौर पर खारिज किया गया है और इसलिए, उक्त आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

5. श्री कैलाश जंगीद ने इस न्यायालय के जयपुर खंडपीठ के **मोनिका मील** बनाम **उप-निदेशक, सेकेंडरी शिक्षा, जयपुर**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है, जिसमें विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह निदेश दिया गया था कि अध्यापक श्रेणी-II की तैनाती, अभ्यर्थियों की मेरिट के अध्यधीन उनकी अधिमानता के अनुसार की जानी चाहिए, जिसके द्वारा अत्यधिक मेरिट वाले अभ्यर्थियों की तैनाती कमतर मेरिट वाले अभ्यर्थियों की तुलना में बेहतर पसंद की हो । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि इससे, इस संबंध में तैनाती और मुकदमेबाजी के संविवाद से बचा जा सकता है ।

6. न्यायालय के विनिर्दिष्ट प्रश्न पर, याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री कैलाश जंगीद, ऐसे स्थानांतरणों और तैनातियों के लिए लागू कानूनी

---

[1] बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 15668/2012, तारीख 3 अक्तूबर, 2012 को विनिश्चित ।

दिशा-निर्देशों के बारे में, जिसके आधार पर, ऐसी अधिमानता उक्त चयन प्रक्रिया में उनकी मेरिट के आधार पर व्यक्तियों को दिए जा सके, न्यायालय के परिशीलन हेतु ऐसे किन्हीं दिशा-निर्देशों को प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे । तथापि, उन्होंने राजस्थान सरकार के ग्रामीण विकास और पंचायती राज विभाग द्वारा जारी तारीख 3 अगस्त, 2012 के एक आदेश का अवलंब लिया, जिसके अधीन इसके खंड 3 में यह अनुध्यात है कि संबंधित जिलों के लिए चयनित अध्यापकों की तैनाती उनकी मेरिट के अनुसार, उन्हीं पंचायत समिति में की जाएगी, जहां वे रहते हैं जहां तक संभाव्य हो । पंचायती राज विभाग के तारीख 3 अगस्त, 2012 के उक्त आदेश का सुसंगत भाग वर्तमान संदर्भ के लिए निम्नलिखित उद्धृत है :–

"**आदेश**

प्राथमिक शालाओं एवं उच्च शालाओं के लिए रिक्त पदों को भरने की दृष्टि से जिलों में नव चयनित अध्यापकों के पदस्थापन बक्त निम्न निर्देश प्रसारित किए जाते हैं –

I - जिला परिषद –

1. पंचायत समितियों में उपलब्ध रिक्त पदों को भरने के लिए उपलब्ध नव चयनित अध्यापकों का पंचायत समितिवार आनुपातिक आधार पर आबंटन किया जाए ।

2. सर्वप्रथम निःशक्तजन, विधवा महिला, परित्यक्ता व एकल महिला को यथा सम्भव उनकी गृह पंचायत समिति का ही आबंटन किया जाए ।

3. जिले के चयनित अध्यापकों को यथा संभव उनकी स्वयं की पंचायत समिति में ही मेरिट के आधार पर आबंटन किया जाए ।

4. उक्त श्रेणियों के अध्यापकों से आबंटन हेतु उनके पंचायत समिति की जानकारी ऑनलॉइन प्राप्त की जाए ।"

7. यही उपधारणा, जिसके आधार पर **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले में निर्णय दिया गया था, जिसका अन्य विभिन्न आदेशों में अनुसरण किया जाना कथित है, जैसा कि याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा कथित है जो उक्त निर्णय के पैरा 1 में वर्णित निम्नलिखित है :–

"इन रिट याचिकाओं में अन्तर्वलित संक्षिप्त संविवाद अध्यापक

ग्रेड II के पद पर चयनित और नियुक्त अभ्यर्थियों की तैनाती से संबंधित है । याचियों से तैनातियों की अधिमानता पूछने के बावजूद भी उनकी योग्यता की अवहेलना करते हुए, अधिमानता की अवज्ञा की गई थी ।"

8. उस मामले में, याची के विद्वान् काउंसेल की दलील पैरा 1 और 2 में दी गई है :–

"प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि तैनातियां, अभ्यर्थियों की उनकी मेरिट और अधिमानता के अनुसार की जानी चाहिए । अपवाद, निःशक्त, तलाकशुदा, विधवा और अकेली महिला के मामले में होना चाहिए । इन चार संवर्गों में उनकी मेरिट प्रास्थिति को विचार में लाए बिना तैनातियों में अधिमानता दी जानी चाहिए, तथापि, उपरोक्त उल्लिखित चार संवर्गों में अधिमानता के बारे में कोई विवाद्यक उद्भूत होता है तो अधिमानता उनमें से उनकी मेरिट के अनुसार दी जानी चाहिए ।"

9. पूर्वोक्त उपधारणा के आधार पर, मेरिट के आधार पर तैनाती के लिए विहित अधिमानता यह होनी थी कि अध्यापक ग्रेड-II के लिए चयनित अभ्यर्थियों को अपनी तैनाती के लिए अपनी अधिमानता देने के लिए कहा जाना चाहिए था, किन्तु इस बारे में न्यायालय के समक्ष न तो ऐसा कोई दस्तावेज उपलब्ध कराया गया न ही इस रिट याचिका की सुनवाई करते हुए इस न्यायालय के समक्ष कोई ऐसा दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है; **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"प्रत्यर्थियों के काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों और याचियों द्वारा दर्शित समाधान को ध्यान में रखते हुए, इन रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है, प्रत्यर्थियों को निर्देश देते हुए कि उनके द्वारा अध्यापक ग्रेड-II की तैनातियां, अभ्यर्थियों की मेरिट के अध्यधीन अभ्यर्थियों द्वारा दी गई अधिमानता के अनुसार दी जानी चाहिए, जिसके द्वारा मेधावी अभ्यर्थियों को कम मेधावी अभ्यर्थियों की तुलना में बेहतर पसन्द की जाती मिलनी चाहिए । पूर्वोक्त का अपवाद निःशक्त, तलाकशुदा, विधवा और अकेली महिला के लिए होगा । तथापि, इन चार श्रेणियों के बीच में भी मेधावी अभ्यर्थियों को तैनाती में अधिमानता होगी । यह आदेश न केवल इन याचिकाओं को लागू

नहीं होगा अपितु संपूर्ण राज्य में लागू होगा । यहां इस संबंध में तैनाती और मुकदमेबाजी के किसी संविवाद से बचने के लिए है । इस प्रकार, राज्य सरकार से यह प्रत्याशा की जाती है कि वह उपर्युक्त निर्देशों के अनुसार तैनातियों को विनियमित करे ।

पूर्वोक्त के साथ, रिट याचिकाएं और रोक आवेदन मंजूर किए जाते हैं ।

हस्ता./-

(एम. एन. भंडारी)
न्यायाधीश''

10. याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री कैलाश जंगीद ने यह दलील है कि चूंकि वर्तमान याची चन्द्र सिंह (एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 12322/2013) द्वारा फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका में, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने याची के अभ्यावेदन का विनिश्चय करने के लिए माध्यमिक शिक्षा निदेशक, बीकानेर को निदेश दिया था और इसलिए, याची को अधिमानता के स्थान पर अर्थात् जोधपुर जिले में तैनाती दी गई थी, किन्तु उप-निदेशक, माध्यमिक शिक्षा, जोधपुर ने तारीख 3 मई, 2014 के आक्षेपित आदेश उपाबंध-10 द्वारा याची के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया था । दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह निवेदन किया कि समन्वय न्यायपीठों के अन्य आदेशों में **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है और अवलंब लिया गया है; जिसमें प्रत्यर्थियों को इस न्यायालय द्वारा पारित ऐसे आदेशों का अनुपालन करते हुए याचियों की रिट के अनुसार उनके द्वारा ईप्सित स्थान पर तैनाती देने की बात कही गई है । उन्होंने **सचित ओझा** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ द्वारा एक अन्य आदेश को उद्धृत किया है ।

11. याचियों के अभ्यावेदन को खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश में प्रत्यर्थी-उप-निदेशक द्वारा दिए गए कारणों पर भी ध्यान दिया गया है । वर्तमान संदर्भ के लिए, तारीख 23 मई, 2014 के आक्षेपित आदेश उपाबंध-10 का सुसंगत सार निम्नलिखित उद्धृत है :–

''याची द्वारा प्रस्तुत व्यथा के निस्तारण के क्रम में माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय दिनांक 27.01.2014, याची के अभ्यावेदन

[1] एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 14589/2013, तारीख 18 दिसम्बर, 2013 को विनिश्चित ।

एवं स्थानीय कार्यालय जारी पदस्थापन आदेश दिनांक 27.6.2013 का अवलोकन किया साथ ही वर्तमान में जोधपुर मण्डल के साथी जिलों के राजकीय माध्यमिक/उच्च माध्यमिक विद्यालयों में शारीरिक शिक्षक ग्रेड-II के पदों पर कार्यरत व्यक्तियों एवं रिक्तियों का आनुपातिक रूप से अवलोकन किया एवं विद्यमान राज्य सेवा नियमों का गहन अध्ययन कर सम्पूर्ण स्थिति पर तथ्यपरक एवं वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के साथ विचार किया ।

स्थानीय कार्यालय द्वारा जारी आदेश दिनांक 27.06.2013 का अवलोकन करने पर यह तथ्य प्रकाशित हुआ कि याची से निम्न अधिमानता के किसी भी पुरुष अभ्यर्थी को जोधपुर जिले में पदस्थापित नहीं किया गया । इसके अतिरिक्त जोधपुर मण्डल में जोधपुर जिले की अपेक्षा अन्य जिलों में रिक्तियों की संख्या अधिक थी अतः विद्यमान रिक्तियों के अनुपात के अनुसरण में पदस्थापन स्थल के आबंटन में जोधपुर जिले की अपेक्षा अन्य जिलों को प्राथमिकता दी गई । राज्य सरकार एवं निदेशालय बीकानेर से प्राप्त दिशा-निर्देशों के अनुसरण में निःशक्त, विधवा, परित्यक्ता एवं एकल महिला अभ्यर्थी को उसके गृह जिले में अपने निवास के नजदीक पर स्थापित किया जाना था । यथा आदेश दिनांक 27.06.2013 जारी करते समय इन निर्देशों की पालना भी की गई ।

याची का पदस्थापन स्थल राउमावि कल्याणपुर, जिला-बाड़मेर में किया गया है जो अधोहस्ताक्षरकर्ता नियुक्ति प्राधिकारी की क्षेत्राधिकारिता में होने के साथ-साथ याची को आबंटित किए गए जोधपुर मण्डल की सीमाओं से परे भी नहीं है । वैकल्पिक रूप से कल्याणपुर एक कस्बाई क्षेत्र है । जहां पर सभी मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध हैं तथा यह दूरस्थ एवं दुर्गम क्षेत्र की श्रेणी में भी नहीं आता है ।

राजस्थान सेवा नियम, 1951 का नियम 13 यह प्रावधित करता है कि राज्य कर्मचारी का पदस्थापन स्थल एवं उसके राजकीय दायित्व के निर्वहन का स्थल निर्धारित करना राज्य सरकार के विवेक पर निर्भर करेगा तथा नियमों के अनुसरण में किसी भी राज्य कर्मचारी को बिना किसी अतिरिक्त पारिश्रमिक के किसी भी स्थान पर पदस्थापित कर उसकी सेवाओं का राज्य हित में समुचित उपयोग लिया जा सकेगा । किसी विशिष्ट स्थान पर कर्मचारी द्वारा अधिकार

के रूप में पदस्थापन का दावा नहीं किया जा सकता । यदि सभी राज्य कर्मचारियों को उनकी स्वेच्छा से पदस्थापन स्थल आबंटित कर दिए जाएं तो अधिक सुविधाजनक एवं सुगम्य स्थलों पर कार्मिकों का अनावश्यक आधिक्य एवं दुर्गम एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अभाव हो जाएगा जिसके कारण प्रशासनिक व्यवस्था एवं राजकीय कार्य का नियमित एवं व्यवस्थित रूप से संचालन करना दुर्भर हो जाएगा एवं उपलब्ध मानवीय संसाधनों में असन्तुल की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी ।

भारत के संविधान का अनच्छेद 21-क निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा के अधिकार का प्रावधान करते हुए बालकों की शिक्षा के दायित्व का अधिरोपण राज्य पर करता है । दुर्गम एवं ग्रामीण क्षेत्रों, में अध्यनरत बालक के समान शिक्षा के समुचित अवसर प्राप्त करने के अधिकारी हैं । शैक्षणिक व्यवस्था में उपलब्ध मानवीय संसाधनों का असमान रूप से वितरण करके उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता । वर्तमान में जोधपुर जिले में विद्यमान रिक्त पदों की संख्या मण्डल के अन्य जिलों में विद्यमान रिक्त पदों की संख्या से अत्यधिक न्यून है । ऐसे में अन्य जिलों से जोधपुर जिले में पदस्थापन किए जाने से अन्य जिलों में शिक्षकों की कमी उत्पन्न हो जाएगी एवं विद्यमान व्यवस्था पर और अधिक प्रतिकूत प्रभाव पड़ेगा ।

याची द्वारा प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन के जरिए अपना पदस्थापन जोधपुर जिले में किए जाने की मांग पर अधोहस्ताक्षरकर्ता सक्षम प्राधिकारी द्वारा विद्यमान राज्य सेवा नियमों, राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त दिशा-निर्देशों एवं जोधपुर मण्डल में अवस्थित मानवीय संसाधनों के वितरण के अनुपात के दृष्टिकोण से गहन विचार एवं मनन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि याची श्री चन्द्र सिंह को स्थानीय कार्यालय द्वारा जारी आदेश दिनांक 27.06.2013 द्वारा आबंटित किया गया पदस्थापन स्थल न तो दूरस्थ है न ही दुर्गम । साथ ही याची द्वारा अपना पदस्थापन स्थल जोधपुर जिले किए जाने की मांग कतई न्यायसंगत एवं उचित नहीं है । अतः याची द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन दिनांक 30.01.2014 एतद् द्वारा खारिज किया जाता है ।

हस्ता./

उप-निदेशक (माध्यमिक)
शिक्षा विभाग, जोधपुर"

12. मैंने याचियों के विद्वान् काउंसेल को विस्तार से सुना और इस

न्यायालय के समक्ष उद्धृत सुसंगत आदेशों का परिशीलन किया तथा रिट याचिका में किए गए प्रकथनों और आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों पर विचार किया है ।

13. यह न्यायालय चयन प्रक्रिया में मेरिट के आधार पर प्रशासनिक आदेशों जैसे स्थानांतरण और तैनातियों के विरुद्ध मुकदमों की आई बाढ़ और ऐसी रिट याचिकाओं के फाइल करने का समर्थन नहीं करता है । प्रथमतः, याचियों द्वारा शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशक (पी. टी. आई.) ग्रेड-II के पदों पर नियुक्ति के लिए चयन प्रक्रिया में अपनी मेरिट के आधार पर तैनाती दिए जाने के लिए कोई दिशा-निर्देश प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

14. **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले में समन्वय न्यायपीठ के निर्णय पर आधारित याचियों के काउंसेल श्री कैलाश जंगीद की दलील का अवलंब भी अनुचित है । **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले में ली गई उपधारणा और आधार मेरिट के आधार पर तैनातियां देने के लिए ऐसे मानदण्ड लागू करने के लिए कोई भी दस्तावेज उपलब्ध नहीं हैं और इसलिए, उक्त निर्णय लापरवाही के अनुसार प्रतीत होता है । इस संबंध में, सुस्थापित विधिक स्थिति यह है कि स्थानांतरण और तैनातियां शुद्धतः प्रशासनिक विषय हैं इनमें जांच सीमित आधारों पर ही अर्थात् कानूनी नियमों और विनियमों के भंग या आक्षेपित आदेशों के पारित करने में दुर्भावना सिद्ध करने पर ही न्यायिक संवीक्षा के माध्यम से हस्तक्षेप किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, इनमें से न तो कोई लिया गया अथवा न ही सिद्ध किया गया है । तारीख 3 अगस्त, 2012 के आदेश में पंचायती राज विभाग द्वारा जारी दिशा-निर्देश उन वर्तमान याचियों को समान रूप से लागू नहीं होते हैं, जिन्हें राजस्थान राज्य के शिक्षा विभाग में नियुक्ति के लिए राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा की गई नियमित चयन प्रक्रिया में शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशकों के रूप में नियुक्त किया गया है । अध्यापकों और शारीरिक प्रशिक्षण अनुदेशकों के लिए पंचायत राज विभाग की नियुक्ति और चयन प्रक्रिया भी उसी श्रेत्र के व्यक्तियों के स्थानीय नियोजन के भिन्न परिप्रेक्ष्य में और बढ़ावा देने के लिए ही है, इसे तारीख 3 अगस्त, 2012 के आदेश में ही अनुध्यात किया जा सकता ताकि जहां तक संभव हो उसी पंचायत समिति के निवासियों को उनकी मेरिट के अध्यधीन उनकी तैनाती की जा सके । ये दिशा-निर्देश स्वयमेव ही या अन्यथा वर्तमान याचियों को लागू नहीं किए जा सकते हैं, जो स्वीकृततः राजस्थान सरकार के पंचायती राज विभाग में चयनित और नियुक्त नहीं हुए हैं । ऐसी किसी उपलब्ध कानूनी मार्गदर्शकों की पूर्वोक्त उपधारणा पर आधारित

मोनिका मील (उपर्युक्त) वाले मामले में समन्वय न्यायपीठ की मताभिव्यक्तियों और निदेश बिना किसी आधार के हैं और इसलिए, इनका, इसमें याचियों द्वारा अवलंब नहीं लिया जा सकता है ।

15. इसके विपरीत, तारीख 23 मई, 2014 के आक्षेपित आदेश, उपाबंध-10 में विद्वान् माध्यमिक शिक्षा, उप-निदेशक, जोधपुर द्वारा दिए गए कारण पूर्णतः ठीक, विधिक और समुचित कारण पाए गए हैं । याची को जिला-बाड़मेर के कल्याणपुर में तैनाती दी गई है जो जोधपुर के मुख्य शहर से मुश्किल से 60 किलोमीटर की दूरी पर है जिस जिले में याची ने तैनाती की ईप्सा की है जो वर्तमान मामले में उसकी उच्चतर मेरिट के आधार पर तात्पर्यित है ।

16. पिछले कुछ वर्षों से न्यायालय में इस प्रकृति के मामलों की बाढ़ सी आ गई है और ऐसे मामलों में नैमित्तिक हस्तक्षेप से अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो सकती है, जैसा कि प्रकटतः ऐसा हुआ है । याचियों द्वारा क्रमवार रिट याचिकाओं के बाद रिट याचिकाएं और लगातार मुकदमे फाइल किए गए हैं और आदेशों और मानहानि याचिकाओं के तात्पर्यित अननुपालन के भय से विभाग के प्राधिकारी दबाव में कार्य करने के लिए बाध्य हो गए और उन्हें उनकी पसंद के स्थान पर तैनाती कर दिए । यह पूर्णरूपेण एक अमान्य परिस्थिति है ।

17. याचियों द्वारा अपनी पसंद के स्थान पर अपनी तैनाती करने पर जोर देना, इस न्यायालय की न्यायिक प्रक्रिया का अवलंब लेते हुए किसी भी प्रकार से अनुमोदन और समर्थन नहीं किया जा सकता है । इतना कह सकते हैं कि यह ऐसे मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की अधिकारिता का घोर दुरुपयोग है । यदि ऐसे व्यक्तियों को, जो राज्य स्तर पर चयनित हुए हैं, को उनकी पसंद के स्थान पर तैनाती देने के लिए राज्य सरकार के कोई दिशा-निर्देश होते, यद्यपि ऐसे कोई दिशा-निर्देश नहीं हैं जैसा कि ऊपर उपदर्शित किया गया है, तो भी इस न्यायालय द्वारा उनकी इस बात का समर्थन नहीं किया जाता । बढ़ती हुई बेरोजगारी की स्थिति में, जहां चयन और नियुक्तियां अत्यधिक प्रतियोगिता के साथ कठोर चयन प्रक्रिया के बाद प्राप्त हो रही हों, यदि तैनाती के स्थान को भी, संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन न्यायिक पुनर्विलोकन की विषयवस्तु बना दिया जाए, तो ऐसे मामलों में इस न्यायालय के लिए हस्तक्षेप करने वाली इससे अधिक कोई और अनावश्यक बात नहीं हो सकती है ।

18. वर्तमान मामला स्वयं में ही इस बात का एक सुस्पष्ट उदाहरण है

जिसमें ऐसे प्रयोजनों के लिए मुकदमेबाजी हुई हैं । वर्तमान याचियों की रिट याचिकाओं में से पहली रिट याचिका उन अभ्यावेदनों को विनिश्चित करने के लिए इस न्यायालय से अहानिकर निर्देश की ईप्सा करते हुए सामने आई थी जिसे समन्वय न्यायपीठ ने एस. बी. सी. डब्ल्यू. पी. सं. 12333/2013 - चन्द्र सिंह और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य वाले मामले का निपटारा करते हुए तारीख 27 जनवरी, 2014 को आदेश जारी किया था । इस आदेश के अधीन जब अभ्यावेदन को उप-निदेशक के युक्तियुक्त आदेश द्वारा विनिश्चित और खारिज कर दिया गया तब भी याची संतुष्ट नहीं हुए और पुनः तारीख 23 मई, 2014 के उक्त आक्षेपित आदेश उपाबंध-10 को अभिखंडित करने के अनुरोध के साथ वर्तमान रिट याचिका फाइल कर दी और जिसमें याचियों ने बाड़मेर और जालोर के जिलों के बदले जोधपुर में तैनाती देने के लिए प्रत्यर्थियों को परमादेश निदेश देने की ईप्सा की है ।

19. न्यायालय का ध्यान, प्रत्यर्थी-राज्य, शिक्षा विभाग द्वारा तारीख 1 जून, 2013 के उपाबंध-6 द्वारा पंचायत राज विभाग के अलावा अन्य अध्यापकों के स्थानांतरण और तैनातियों के लिए जारी दिशा-निर्देश की ओर आकर्षित किया गया है जिसका सुसंगत भाग वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत है :–

"राजस्थान सरकार
स्कूल (ग्रुप-2) विभाग

क्रमांकः प.17(4) शिक्षा-2/2009 जयपुर

दिनांकः 01-06-2013

स्थानांतरण के संबंध में दिशा-निर्देश

राज्य सरकार के आदेश क्रमांकः प.5(1)प्र.सु./अनु./1/2008 दिनांक 27.5.2013 के द्वारा स्थानांतरण पर प्रतिबंध अग्रिम आदेशों तक तत्काल प्रभाव से हटा दिया गया है । अतः शिक्षा विभाग में शिक्षकों के स्थानांतरण के संबंध में पूर्व में जारी दिशा-निर्देश दिनांक 08.05.2012 के अधिक्रमण में शिक्षा विभाग में भी विभिन्न श्रेणी के शिक्षकों के स्थानांतरण किए जाने के संबंध में राज्य सरकार द्वारा निम्नानुसार दिशा-निर्देश जारी किए जा रहे हैं ।

माध्यमिक शिक्षा विभाग के समस्त श्रेणी एवं प्रारम्भिक शिक्षा विभाग में द्वितीय श्रेणी शिक्षकों के स्थानांतरण निम्नांकित दिशा-निर्देश के अनुसार किए जा सकेंगे –

1. निम्न श्रेणी के शिक्षकों के स्थानांतरण नहीं होंगे –

(अ) अनुदानित विद्यालय में समायोजित शिक्षक ।

(ब) अप्रैल, 2011 के पश्चात् सीधी भर्ती द्वारा नियुक्त व परिवीक्षाधीन काल पर कार्यरत शिक्षक ।

(स) प्रतिबन्धित 10 जिलों (सिरोही, जालोर, प्रतापगढ़, बारां, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूंगरपूर) में पदस्थापित शिक्षक जिनकी प्रतिबन्धित जिले में 10 वर्ष की सेवाएं पूर्ण नहीं की हों । परन्तु प्रतिबंधित जिले में 10 वर्ष की सेवाएं पूर्ण करने वाले शिक्षक स्थानांतरण आवेदन हेतु पात्र होंगे तथा ऐसे प्राप्त आवेदनों में से जिले में स्वीकृत प्रत्येक विषय के पदों का अधिकतम 10 प्रतिशत तक शिक्षकों के स्थानांतरण उनके प्रतिबन्धित जिले में पदस्थापन/कार्यग्रहण तिथि से वरिष्ठता के आधार पर किए जाएंगे ।

(द) वे शिक्षक जिनको वर्तमान पदस्थापन स्थान पर 2 वर्ष की अवधि पूर्ण नहीं हुई हो ।

अपवाद :–

(क) प्रतिबन्धित जिलों में कार्यरत वे शिक्षक जिन्होंने 31 मई, 2013 तक 10 वर्ष की सेवा पूर्ण कर ली है, वे अन्य जिलों में स्थानांतरण के पात्र होंगे ।

(ब) स्थानांतरण केवल निम्न स्थितियों में दो वर्ष पूर्व किए जा सकेंगे –

- विकलांग शिक्षक (पूर्णतः विकलांग शिक्षक जो आने-जाने में ट्राईसाइकिल का उपयोग करते हैं/पूर्णतः दृष्टिहीन शिक्षक)
- विधवा महिला/परित्यक्ता महिला शिक्षक/अविवाहित महिला ।
- ऐसे शिक्षक जो स्वयं अथवा जिनके पति/पत्नी व आश्रित बच्चे जो असाध्य रोग (यथा ब्रेन ट्यूमर/एड्स से पीड़ित हों अथवा जिनका गुर्दा प्रत्यारोपण हुआ हो अथवा कैंसर रोगी जिनकी बाईपास अथवा ओपन हार्ट सर्जरी हुई हो, गंभीर पक्षाघात) से पीड़ित हों, ऐसे शिक्षकों को गम्भीर बीमारी का प्रमाण पत्र राज्य सरकार के किसी भी मेडिकल कॉलेज से प्राप्त कर संलग्न करना होगा ।

- पारस्परिक स्थानांतरण ।
- राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर पुरस्कार प्राप्त शिक्षक ।"

20. उपर्युक्त दिशा-निर्देशों के मूल परिशीलन से यह उपदर्शित होता है कि अध्यापकों की श्रेणी जिसमें वर्तमान याची आते हैं, वे 10 वर्ष की अवधि तक स्थानांतरण किए जाने योग्य नहीं थे, यदि वे 10 विनिर्दिष्ट जिलों में नियुक्त और तैनात हुए हैं जिसे याचियों के विद्वान् काउंसेल ने "अति पिछड़ा क्षेत्र" कहा है । इन जिलों से अध्यापकों के स्थानांतरण संभव नहीं है जब तक कि अन्यथा उसने उस विशिष्ट जिले में 10 वर्ष सेवा के पूरे न कर लिए हों और यह प्रतिबंधित है । उक्त 10 जिले सिरोही, जालोर, प्रतापगढ़, बारां, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, झालवाड़, बांसवाड़ा और डूंगरपूर हैं । यह राजस्थान राज्य के कम विकास और पिछड़ा क्षेत्र हैं । ऐसे अनुबंध सभी स्थानों पर अध्यापकों की संख्या का संतुलन बनाए रखने के उद्देश्य से दिए गए हैं । वर्तमान याची जिला बाड़मेर में तैनात हैं और वह बाड़मेर जिले के बाहर विशिष्ट स्थान पर तैनाती चाहते हैं और इस कारण से विद्वान् उप-निदेशक द्वारा आबंटित की गई है, यह अध्यापकों की संख्या का संतुलन बनाए रखने के लिए है, याचियों का उक्त चयन प्रक्रिया में याचियों की उनकी मेरिट के आधार पर उक्त जिले के बाहर स्थानांतरण नहीं किया जा सकता है ।

21. यह न्यायालय विद्वान् उप-निदेशक द्वारा दिए गए कारणों में कोई त्रुटि पाने में असमर्थ है और याचियों का अभ्यावेदन खारिज करना पूर्ण रूप से न्यायोचित है । याचियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा **मोनिका मील** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय का लिया गया अवलंब आधारहीन ही नहीं बल्कि गलत भी है । इस प्रकार, उक्त दी गई दलील स्वीकार्य नहीं है और खारिज किए जाने योग्य है तथा इसे तद्नुसार खारिज किया जाता है ।

22. इस प्रकार, रिट याचिका में गुणागुण नहीं पाया गया है । इसलिए इसे खारिज किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की प्रति तुरन्त प्रत्यर्थियों को भेजी जाए ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./क.

राजेन्द्र सिंह और अन्य

बनाम

चन्द्रवीर सिंह और अन्य

तारीख 3 मार्च, 2015

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 और आदेश 39 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 5 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 12] – वादियों-प्रतिवादियों – सम्पत्ति के विभाजन समझौता – समझौते के अनुसार सम्पत्तियों का विभाजन न होना – पक्षकारों द्वारा समझौते के अनुसरण में सम्पत्तियों का कब्जा नहीं सौंपना – विनिर्दिष्ट अनुपालन – यदि किसी सम्पत्ति के बारे में पक्षकारों के बीच आपसी समझौते द्वारा बंटवारा कर लिया जाता है तो उक्त समझौते के अनुसार ही उक्त सम्पत्ति का बंटवारा विनिर्दिष्टतः अनुज्ञेय है यदि कोई पक्षकार इसका पालन नहीं करता है तो पीड़ित पक्षकार अनुपालन माध्यम से उक्त समझौते के अनुसार सम्पत्ति का बंटवारा करने और कब्जा प्राप्त करने का अधिकारी होता है ।

प्रतिवादियों द्वारा फाइल यह द्वितीय अपील, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 1, भीलवाड़ा द्वारा सिविल अपील संख्या 44/2001 "राजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम चन्द्रवीर सिंह और अन्य वाले मामले में" तारीख 19 फरवरी, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री से उद्भूत हुई है, जिन्होंने जिसे प्रतिवादियों-राजेन्द्र सिंह और अन्य द्वारा फाइल अपील खारिज कर दिया था और विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), मंडलगढ़, जिला भीलवाड़ा द्वारा सिविल मूल वाद संख्या 70/1992(85/1983) "चन्द्रवीर सिंह और अन्य बनाम श्रीमती राजकंवर और अन्य" वाले मामले में पारित तारीख 1 नवम्बर, 2001 को निर्णय और डिक्री की अभिपुष्टि कर दी थी जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड) ने वादियों-चन्द्रवीर सिंह और अन्य द्वारा "गोविन्द विलास" और "मुकुट-मंडल" के रूप में ज्ञात वाद संपत्ति के कब्जे और उस संपत्ति जो बिजोलिया शहर, जिला भीलवाड़ा में स्थित "गोविन्द विलास" और "मुकुट-मंडल" के किला (गढ़) में स्थित है, से संबंधित विवाद के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश डिक्री की ईप्सा करते हुए फाइल की गई थी, डिक्री कर दिया था ।

वादी चन्द्रवीर सिंह और श्रीमती चांद कुमारी बिजोलिया के राजपूत मृतक केसरी सिंह के विधिक प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय, भीलवाड़ा में तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को वर्तमान वाद संख्या 85/1983(70/82) फाइल किया था जिसमें विचारण के 18 वर्ष बाद तारीख 1 नवम्बर, 2001 को विद्वान् विचारण न्यायालय ने डिक्री की थी जिसमें दोनों पक्षकारों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध मध्यवर्ती लाभ के अनुतोष के गैर-अनुदान के लिए विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 1, भीलवाड़ा के समक्ष सिविल प्रथम अपील संख्या 43/2001 ''चन्द्रवीर सिंह बनाम राजेन्द्र सिंह और अन्य'' के समक्ष फाइल की थी जबकि सिविल प्रथम अपील संख्या 44/2001 ''राजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम चन्द्रवीर सिंह'' को प्रतिवादियों द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा कब्जे के लिए वाद में डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई थी । इन दोनों अपीलों का विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा तारीख 19 फरवरी, 2014 को निपटारा कर दिया और इन दोनों अपीलों को खारिज कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह पुत्र श्री विजय सिंह और अन्य ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन प्रथम द्वितीय अपील फाइल की है । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना और अभिलेख का परिशीलन किया है । पक्षकारों के बीच नजदीकी संबंध को देखते हुए, इस न्यायालय ने भी तारीख 24 नवम्बर, 2014 को मध्यस्थता के माध्यम से विवाद का समाधान करने के लिए मामले को निर्दिष्ट किया और दोनों पक्षकारों को तारीख 9 दिसम्बर, 2014 को विद्वान् मध्यस्थ के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया । तथापि, दुर्भाग्यपूर्ण तौर पर, मध्यस्थता बातचीत, तारीख 9 दिसम्बर, 2014 और 10 दिसम्बर, 2014 की मध्यस्थ रिपोर्ट के साथ तारीख 11 दिसम्बर, 2014 की सूचना द्वारा सफल रहा । इसलिए, दलीलें, वर्तमान द्वितीय अपील की स्वीकृति के लिए और यह निष्कर्ष निकालने के लिए गुणागुण पर सुने गए कि क्या प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विधि का कोई सारवान् प्रश्न उदभूत हुआ था । पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय का समाधान है कि प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विधि का कोई सारवान् प्रश्न उदभूत नहीं हुआ है और दोनों निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित

समवर्ती निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर आधारित तथ्यों के तर्कपूर्ण निष्कर्ष हैं और इससे वर्तमान द्वितीय अपील में विधि का कोई सारवान् प्रश्न उदभूत नहीं हुआ है । यद्यपि, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में साक्ष्य का पुनः मूल्यांकन करने की अनुज्ञा नहीं है, तथापि, इस न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की विधिमान्यता का परीक्षण करने के लिए वर्तमान मामले में सुसंगत और महत्वपूर्ण दस्तावेजों की जांच की है । प्रथमतः दस्तावेज प्रदर्श 15 तथाकथित तारीख 14 जनवरी, 1959 का विभाजन विलेख है । यह भी उल्लिखित है कि तारीख 14 जनवरी, 1958 को उक्त विभाजन विलेख का चारों भाइयों में से दोनों भाइयों अर्थात् गोवर्धन सिंह और मदन सिंह के बीच निष्पादित हुआ था, किन्तु केसरी सिंह और विजय सिंह के बीच विवाद बना रहा । पश्चात्वर्ती दस्तावेज दो भाइयों अर्थात् केसरी सिंह और विजय सिंह के बीच तारीख 14 अप्रैल, 1968 को निष्पादित हुआ था जिसे विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया है और जो वर्तमान दोनों लड़ने वाले पक्षकारों के बीच अपीलों का मूल आधार है । केसरी सिंह द्वारा श्री बने को लिखा "कंवरपदा का महल" के गिराए जाने के संबंध में तारीख 3 अक्तूबर, 1968 के पत्र प्रदर्श ए/2 तथा भाइयों के बीच निष्पादित तारीख 14 जनवरी, 1958 को और तारीख 14 अप्रैल, 1968 के दोनों दस्तावेज के लेखक जो उक्त अन्तर्देशीय पत्र पर पते से आर.एस.एस. अधिकारी प्रतीत होता है और वह तत्कालीन तहसीलदार प्रशिक्षण स्कूल, टोंक का प्रधानाचार्य था और इस संबंध में बने सिंह द्वारा प्रतिवादी विजय सिंह को भेजा गया, दूसरा पत्र तारीख 8 अक्तूबर, 1968 का जिसकी सम्यक् अभिस्वीकृति पर स्वयं विजय सिंह द्वारा तारीख 8 अक्तूबर, 1968 को हस्ताक्षर किया गया है, अभिलेख पर प्रदर्श 2 है । यह अभिस्वीकृति प्रदर्श 2 के रूप में अभिलेख पर जिससे स्पष्ट रूप से यह दर्शित करता है कि वादी केसरी सिंह द्वारा शर्तों का अनुपालन की जाने वाली उसके द्वारा सम्यक् रूप से पालन किया गया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि पूरा मलबा उसके द्वारा हटाया नहीं गया है जैसाकि उक्त पत्र में कथित है कि इसे हटाया जाना था, यह नहीं कहा जा सकता कि तारीख 14 अप्रैल, 1968 का करार असफल हो गया या उक्त भाई केसरी सिंह का फायदा सुनिश्चित करता है । उस करार के अध्यधीन कुछ नहीं अपितु तारीख 14 जनवरी, 1958 के पूर्ववर्ती विभाजन दस्तावेज का भाग का विस्तार है, अब प्रतिवादी विजय सिंह उसका विधिक प्रतिनिधि करता है, वर्तमान प्रतिवादी

राजेन्द्र सिंह और अन्य वाद संपत्ति अर्थात् "गोविन्द विलास" और "मुकुट महल" को सौंपने के लिए आबद्ध है जो इन्होंने अपने बड़े भाई केसरी सिंह और उसके कुटुंब सदस्यों वर्तमान वादी अर्थात् श्री चन्द्रवीर सिंह और श्रीमती चांद कुमारी से आधिपत्य में लिए हैं । उक्त संसूचना के अनुसार, जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए/2 के रूप में प्रदर्शित किया था, यह प्रतीत होता है कि उक्त करार को करते समय पक्षकारों के बीच अच्छे संबंध नहीं थे तो क्यों उक्त पत्र (प्रदर्श ए/2) को बने सिंह, आर.एस.एस. को भेजा गया, जिसकी पी. डब्ल्यू. 1 चन्द्रवीर सिंह के अलावा पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष परीक्षा भी की गई थी । उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है कि तारीख 14 अप्रैल, 1968 के विभाजन ज्ञापन के साथ पठित तारीख 14 जनवरी, 1958 का पश्चात्वर्ती करार कुछ नहीं अपितु मात्र पुराने विभाजन ज्ञापन का विस्तार है, वादी, वाद संपत्ति का कब्जा पाने के स्पष्ट रूप से हकदार थे तथा प्रतिवादी विजय सिंह और उसके विधिक प्रतिनिधि जो उसके मात्र अनुज्ञेय कब्जे थे, वाद संपत्ति को खाली करने और वाद फाइल करने के समय पर उसे वादियों को सौंपने के लिए आबद्ध थे । दस्तावेजों की ग्राह्यता विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सही तौर पर वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया गया है, विभाजन के ज्ञापन को मुद्रांकित या रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं है इसलिए निचले न्यायालयों ने संवत् वर्ष 2028 (1971) से उसकी संगणना करते हुए उसे बारह वर्ष की अवधि के भीतर वाद फाइल होना सही ही अभिनिर्धारित किया है जब प्रतिवादी कब्जा सौंपने के लिए आबद्ध थे । अपीलार्थी-प्रतिवादियों की यह दलील तारीख 14 अप्रैल, 1968 के करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के वाद के रूप में इसे परिसीमा अवधि मात्र वर्षों की होनी चाहिए, भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि दोनों भाइयों की ओर से कतिपय कार्यों को पूरा करने के लिए 1968 को करार किया गया, 1958 के विभाजन ज्ञापन के ठीक पश्चात् एक अन्य है और वह किसी पृथक् विचार के लिए कोई स्वतंत्र करार नहीं है जिसका वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की ईप्सा की गई है । उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रतिवादियों-राजेन्द्र सिंह और अन्य की वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए विधि के कोई सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होते हैं, इसलिए, प्रतिवादियों द्वारा फाइल द्वितीय अपील गुणागुण रहित है और यह खारिज किए जाने योग्य है । (पैरा 10, 11, 12, 13, 14, 15, 16 और 20)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 5 एस. सी. सी. 370 :
मरगार्डिया सेकूरिया फर्नाडीज और अन्य बनाम
इरासमो जैक डे सेकूरिया । 17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 132.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थियों-प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री सज्जन सिंह और रमीत मेहता

प्रत्यर्थियों-वादियों की ओर से श्री संदीप सरूपारिया

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – प्रतिवादियों द्वारा फाइल यह द्वितीय अपील, विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 1, भीलवाड़ा द्वारा सिविल अपील संख्या 44/2001 "राजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम चन्द्रवीर सिंह और अन्य वाले मामले में" तारीख 19 फरवरी, 2014 को पारित निर्णय और डिक्री से उद्भूत हुई है, जिन्होंने प्रतिवादियों-राजेन्द्र सिंह और अन्य द्वारा फाइल अपील खारिज कर दिया था और विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), मंडलगढ़, जिला भीलवाड़ा द्वारा सिविल मूल वाद संख्या 70/1992(85/1983) "चन्द्रवीर सिंह और अन्य बनाम श्रीमती राजकंवर और अन्य" वाले मामले में पारित तारीख 1 नवम्बर, 2001 के निर्णय और डिक्री की अभिपुष्टि कर दी थी जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड) ने वादियों-चन्द्रवीर सिंह और अन्य द्वारा "गोविन्द विलास" और "मुकुट-मंडल" के रूप में ज्ञात वाद संपत्ति के कब्जे और उस संपत्ति जो बिजोलिया शहर, जिला भीलवाड़ा में स्थित "गोविन्द विलास" और "मुकुट-मंडल" के किला (गढ़) में स्थित है, से संबंधित विवाद के संबंध में प्रतिवादियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश डिक्री की ईप्सा करते हुए, फाइल की गई थी, को डिक्री कर दिया था ।

2. वर्तमान द्वितीय अपील तारीख 16 मई, 2014 को उन प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल की गई है, जो पूर्वोक्त रूप से विवाद के संबंध में विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा पारित कब्जे के लिए समवर्ती निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रतिवादी थे ।

3. वादी चन्द्रवीर सिंह और श्रीमती चांद कुमारी बिजोलिया के राजपूत

मृतक केसरी सिंह के विधिक प्रतिनिधि हैं, जिन्होंने विद्वान् जिला न्यायाधीश के न्यायालय, भीलवाड़ा में तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को वर्तमान वाद संख्या 85/1983(70/82) फाइल किया था जिसमें विचारण के 18 वर्ष बाद तारीख 1 नवम्बर, 2001 को विद्वान् विचारण न्यायालय ने डिक्री की थी जिसमें दोनों पक्षकारों ने विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों के विरुद्ध मध्यवर्ती लाभ के अनुतोष के गैर-अनुदान के लिए विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 1, भीलवाड़ा के समक्ष सिविल प्रथम अपील संख्या 43/2001 ''चन्द्रवीर सिंह बनाम राजेन्द्र सिंह और अन्य'' फाइल की जबकि सिविल प्रथम अपील संख्या 44/2001 ''राजेन्द्र सिंह और अन्य बनाम चन्द्रवीर सिंह'' को प्रतिवादियों द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा कब्जे के लिए वाद में डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई थी । इन दोनों अपीलों का विद्वान् प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा तारीख 19 फरवरी, 2014 को निपटारा कर दिया गया और इन दोनों अपीलों को खारिज कर दिया गया था । इससे व्यथित होकर, प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह पुत्र श्री विजय सिंह और अन्य ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन प्रथम द्वितीय अपील फाइल की है ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 1 नवम्बर, 2001 के निर्णय में सुसंगत निष्कर्ष निकाले हैं जिसे वर्तमान वाद फाइल करने के मुख्य तथ्य की पृष्ठभूमि में भी देना होगा जो वर्तमान संदर्भ के लिए निम्नलिखित उद्धृत है :–

''**विवाद्यक संख्या 2 व 3**

2. क्या स्वर्गीय केसरी सिंह जी ने माफिक इकरारनामा कंवरपदा के महल को आसोज सूदी 4 सम्वत् 2015 तक उतरवा (गिरा) दिए जिसकी सूचना विजय सिंह को दे दी ।'' – वादी

3. क्या माफिक इकरारनामा कंवरपदा के महल उतरवाने के बाद आसोद सूदी पूनम सम्वत् 2028 तक मुतवादीया जायदाद स्वर्गीय विजय सिंह जी द्वारा खाली कर स्वर्गीय केसरी सिंह जी को सुपुर्द करना था ? – वादी

इन दोनों विवाद्यकों को साबित करने का भार वादी पर था । वादी पी.ड. 1 चन्द्रवीर सिंह के अनुसार वादपत्र में संलग्न नक्शा ए. जिसमें लाल स्याही से जो जायदाद दर्शाई गई है, यह जायदाद प्रतिवादीगण के पिता विजय सिंह के द्वारा वादी के पिता केसरी सिंह

को सौंपनी थी तथा केसरी सिंह को वादपत्र के नक्शा बी में टी.यू.बी. एक्स स्थान पर प्रदर्श 1 के अनुसार संवत् 2025 की आसोद सूद 15 तक हटा कर सूचना विजय सिंह को देनी थी । इसके पश्चात् आसोद सूद 15 संवत् 2028 तक वादपत्र के साथ संलग्न नक्शा (ए) में दर्शाई गई जायदाद विजय सिंह द्वारा खाली करके केसरी सिंह को सुपुर्द करनी थी, इस संबंध में वादी चन्द्रवीर सिंह ने कथन किया है कि प्रदर्श 1 के क्रम में नक्शा बी. में टी.यू.बी. एक्स स्थान निर्धारित तिथि आसोद सूद 15 संवत् 2015 से पूर्व ही आसोद सूद 4 को हटा दिया था तथा मलबा हटा दिया व सूचना काका विजय सिंह को दी । जिसकी ए.डी. प्रदर्श 2 है जिस पर विजय सिंह के हस्ताक्षर हैं जो वह पहचानता है । इसकी रजिस्टर्ड सूचना बने सिंह को दी ए. से बी. हस्ताक्षर बने सिंह के है । प्रदर्श 2 व 3 के असल पत्र उनके पास हैं जिनको असल सूचना दी है । विजय सिंह और बने सिंह को सूचना दी गई थी खण्डहर समय पर गिरा दिया गया है सूचना खण्डहर गिराए जाने की दूसरे, तीसरे दिन ही दी थी । विजय सिंह को मकान खाली करने को कहा लेकिन उनकी सितम्बर, 1983 में मृत्यु हो गई बाद में प्रतिवादियों ने खाली करने में असमर्थता व्यक्त की । विजय सिंह व बने सिंह को कंवरपदा के खण्डहर गिराने की सूचना इस साक्षी के पिता ने पत्र लिखकर दी तब वह मौजूद था । पी.ड. 3 हीरालाल ने यह स्वीकार किया है कि मकान खाली करो तो विजय सिंह व उनके लड़के तैयार हो गए । बने सिंह को व विजय सिंह को अलग-अलग मजमून लिखकर भेजा था पेज संख्या 4 में नीचे से छठी लाईन में यह भी स्वीकार किया है कि नोटिस दे दिया था फिर भी दावा काका का सम्मान रखने के लिए नहीं किया । पी.ड. बने सिंह है, जिन्होंने कि प्रदर्श 1 लिखना कथन किया है, प्रदर्श 1 के अनुसार कंवरपदों के महल को वादी के पिता को गिराना था इनको गिराने की सूचना रजिस्टर्ड पत्र द्वारा राव केसरी सिंह ने भेजी थी । वादी ने पत्र प्रदर्श 4 लिखा पश्चात् में विजय सिंह को लिखा और प्रदर्श की नकल भी पत्र के साथ भेजी थी । विजय सिंह के नाम पत्र भेजा था इसलिए उनके पास ही होना चाहिए । प्रदर्श 2 व 3 पर ए. से बी. हस्ताक्षर भी उनके बताए हैं । प्रदर्श 4 आया जिसकी ए.डी. प्रदर्श 3 है । प्रदर्श 4 पर मदनलाल, भंवर लाल, मोहनलाल, हीरालाल, के हस्ताक्षरों के कंवरपदों के महल गिराने की सूचना विजय सिंह को दी

थी उस समय वह मौजूद था । पी.ड. 1 चन्द्रवीर सिंह के बयान पेज संख्या 2 नीचे से चौथी लाईन में विजय सिंह व बने सिंह को सूचना हेतु मेरे पिता ने पत्र लिखे थे उस समय मैं वहीं मौजूद था उन पत्रों पर भंवर लाल, मेड़तिया, मोहनलाल शास्त्री, उदयलाल क्षत्रीय व हीरालाल जी नेईवाल के भी दस्तखत कराए थे । इन साक्षियों में से हीरालाल पी.डी.3, पी.डी. 5 भंवरलाल प्रकरण में परीक्षित हुए हैं । जिन्होंने इस बात की पुष्टि की है कि प्रदर्श 4 राव साहब ने उनके सामने लिखा था जो ए. से बी. है, हस्ताक्षर उनके सामने किए जो सी. से डी. है । ई. से एफ. लिखावट उसके हाथ की है और जी. से एच. उसके हस्ताक्षर बताए हैं । आई. से जे. उदयलाल, के. से एल. मोहनलाल के हस्ताक्षर हैं उदयलाल व मोहनलाल ने उसके सामने हस्ताक्षर किए भंवरलाल ने भी हस्ताक्षर उसके सामने किए थे । इस सुझाव को गलत बताया है कि राव साहब को मिलने वाला होने से झूठ बयान दे रहा है तथा लिखा पढ़ी उसके सामने नहीं हुई हो । प्रदर्श 4 पर मोहनलाल के हस्ताक्षर एम. से एन. होने की पुष्टि की है । इस संबंध में साक्षी हीरालाल, उदयलाल के होने की पुष्टि की है । कंवरपदों के महल गिरा कर समतल कर दिए गए थे इस बात की भी पुष्टि की है । शिवनंदन पी.ड.6 इस संबंध में एक और महत्वपूर्ण साक्षी है जिसने कथन किया है कि प्रदर्श 1 उनके सामने लिखा गया इसने यह भी कथन किया है कि कंवरपदों के महल खण्डहर थे उनको गिरा देना था, विजय सिंह जी गढ़ में गोविन्द विलास जो गढ़ के जनाने भाग में एक हिस्सा है उसका ग्राउंड फ्लोर मुकुट महल नाम के मर्दाने महल जो कमरा पनोरा है उनको खाली करके देना था जो कि विजय सिंह जी के द्वारा राव साहब को देना था । कंवरपदों का महल संवत् 2025 के आसोद सूद पूनम तक गिराकर विजय सिंह को संभालना था और 2025-2028 के बीच तीन वर्ष की अवधि में विजय सिंह को उनका कब्जा गोविन्द विलास और मुकुट महल खाली करके नोहरे में जाना था केसरी सिंह जी ने कंवरपदों के महल को गिरा दिया था जो कि कारीगरों की व्यवस्था करके इस साक्षी ने भी गिराया था तथा मलबा हटा दिया था । राव साहब ने विजय सिंह को मौखिक ही कहा था परन्तु विजय सिंह ने ध्यान नहीं दिया । इसलिए रजिस्टर्ड पत्र से बने सिंह को सूचना दी जो प्रदर्श 4 है । प्रदर्श 4 राव केसरी सिंह के हाथ का है सी. से डी. राव साहब केसरी सिंह के

हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श 2 पर ए. से बी. हस्ताक्षर विजय सिंह जी के हैं यह भी कहा कि जागिर कमिश्नर से फैसला हो गया इसकी प्रमाणित प्रतिलिपि प्रदर्श 5 को प्रदर्शित कराया है । इसमें गढ़ को ठिकाना बिजोलिया की निजी संपत्ति मद संख्या 2 में दर्शाया गया है । कंवरपदा के महल गिराने में इसमें 15,000/- रुपए खर्च हुए थे हिसाब अलग रखा था जो देवीलाल ने रखा था । विजय सिंह के लिखते पढ़ते देखा । इस सुझाव को गलत बताया है कि कंवरपदों के महल को गिराया गया है वहां चन्द्रवीर सिंह का कब्जा था । इस सुझाव को भी गलत बताया कि प्रदर्श 4 उनके सामने नहीं लिखा गया हो । दूसरी ओर प्रतिवादी की ओर से परीक्षित साक्षी राजेन्द्र सिंह ने कथन किया है कि मुकुट महल बना हुआ था इसकी जानकारी नहीं है । कंवरपदों का महल को गिराया नहीं गया था अपने आप गिर गया था । इसका मलबा अड़ौसी-पड़ौसी ले गए । इस प्रकार वादी पक्ष का कथन है कि संवत् 2015 में पूर्व ही मुकुट महल को कंवरपदों के महल को गिराकर सूचना विजय सिंह को दी थी इस संबंध में जो सूचना दी गई है इसकी रजिस्टर्ड पावती रसीद प्रदर्शित कराई गई है जिस पर ए. से बी. विजय सिंह के हस्ताक्षर हैं तथा प्रदर्श 4 पर विजय सिंह का उल्लेख किया तथा जिन साक्षियों के हस्ताक्षर करवाए गए उनमें से साक्षी हीरालाल व भंवर लाल को भी साक्ष्य में परीक्षित कराया गया है । बने सिंह को सूचना आसोद सूद 4 संवत् 2025 को प्राप्त होने का कथन किया है । प्रदर्श 4 साक्ष्य में पेश किया गया है । जिस पर कि उक्त साक्षियों के हस्ताक्षर हैं । इसमें जिरह का अवसर प्राप्त हुआ है लेकिन ऐसी कोई साक्ष्य नहीं है कि जिससे यह प्रकट हो कि कंवरपदों के महल को आसोद सूद 4 संवत् 2025 तक नहीं गिराया गया हो । मात्र कंवरपदों के महल को प्रतिवादियों ने गिराने से इनकार किया इस प्रकार वादी पक्ष की उपरोक्त साक्ष्य से यह साबित है कि वादी के द्वारा प्रदर्श 1 के क्रम में आसोद सूद 4 संवत् 2025 को कंवरपदों का महल गिरा दिया गया था । प्रतिवादी पक्ष की ओर से यह बहस अवश्य की गई है कि प्रदर्श 2 ए. डी. पर मोहर नहीं है । प्रदर्श 2 पर विजय सिंह के जो हस्ताक्षर आए हैं वह अंग्रेजी में हैं, अंग्रेजी का विजय सिंह जी को ज्ञान नहीं था । किन्तु यह रसीद पोस्टल ए.डी. से भेजी गई हैं जो केसरी सिंह के द्वारा भेजी गई है जिसमें मय तारीख विजय सिंह के हस्ताक्षर हैं । इसके

अलावा प्रदर्श 4 से भी प्रकट है कि वादी के द्वारा महल गिराए गए । चूंकि प्रतिवादी के द्वारा प्रदर्श 1 की पालना में कोई रुचि नहीं लेना देखते हुए, बने सिंह, जिसके द्वारा कि प्रदर्श 1 लिखा गया है, उनको भी सूचना दी गई है जो कि पी.ड. 2 के रूप में पेश हुए हैं । जिन्होंने इस बात की पुष्टि की है ।

विवाद्यक संख्या 1 में यह निर्धारित किया जा चुका है कि प्रदर्श 15 जो कि पक्षकारों के बीच लिखा गया है जिसके क्रम में प्रदर्श 1 लिखा गया है तथा निर्धारित तिथि आसोद सूद 15 संवत् 2025 से पूर्व ही आसोद सूद 4 संवत् 2025 को ही केसरी सिंह के द्वारा कंवरपदों के महल को गिरा कर सूचना प्रतिवादी को भेजी एवं रजिस्टर्ड नोटिस भी दे दिया । प्रदर्श 1, प्रदर्श 15 मात्र विभाजन एवं करार हैं तथा इनके अपर्याप्त स्टाम्प पर होने की आपत्ति का निराकरण विवाद्यक संख्या 1 में किया जा चुका है व प्रदर्श 1 के रजिस्ट्रेशन की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि इस संबंध में प्रदर्श 15 में तथ्यों का उल्लेख किए जाने से इसके पंजीयन की आवश्यकता नहीं रह जाती है । इस प्रकार वादी पक्ष की साक्ष्य की प्रतिवादी खण्डित करने में असफल रहा है । अतः विवाद्यक संख्या 2, प्रदर्श 1 को देखते हुए जिसमें इस बात का उल्लेख है कि श्री राव जी साहब केसरी सिंह जी और उनके सगे तीन भाई सर्वश्री गोवर्धन सिंह जी, मदन सिंह जी और विजय सिंह के परस्पर 14 जनवरी, 1958 को छुट भाई बट के लिए रहवास के मकानों का बंटवारा हुआ था । उक्त व्यक्तियों के बीच 14 जनवरी, 1958 को निष्पादित हुआ जिसमें इस बात का उल्लेख कि विजय सिंह को जो नोहरा व प्लाट फैसले के मुताबिक दिया गया है वह उनके ही रहेंगे किन्तु राव साहब कंवरपदों के महल को आसोद सूद 15 संवत् 2025 तक गिराकर मलबा हटा देंगे व इस तिथि से तीन वर्ष के अन्दर विजय सिंह अपने भाई बंट के नोहरे में रहना शुरू कर देंगे ।

इस प्रकार प्रदर्श 1 को चूंकि वादी साबित कर चुका है अतः प्रदर्श 1 के आधार पर वादी के द्वारा निर्धारित तारीख आसोद सूद 15 संवत् 2025 से पूर्व आसोद सूद 4 संवत् 2025 को कंवरपदों के महल को गिराकर मलबा हटाकर सूचना प्रतिवादी को दी जा चुकी है । तथा प्रतिवादी ने आसोद सूद 15 संवत् 2025 से 2028 के बीच तीन वर्ष की अवधि में विजय सिंह को अपने भाई बंट के अनुसार

सपरिवार नोहरे में रहना शुरू करना था तथा अपना कब्जा वादी केसरी सिंह को देना था ।

इस प्रकार विवाद्यक संख्या 2 व 3 भी वादी के पक्ष में निर्धारित किए जाते हैं ।

विवाद्यक संख्या 4

4. क्या प्रतिवादियों का मुतदाविया जायदाद पर अनुज्ञात्मक कब्जा है ?

इस विवाद्यक को साबित करने का भार वादी पर था । वादी के द्वारा विवादित जायदाद प्रतिवादियों के अनुज्ञात्मक कब्जे में बताई गई है । इस संबंध में प्रतिवादियों ने अपने जवाबदावे व अपनी साक्ष्य में मना किया है । प्रतिवादियों का कथन है कि 1968 से वादी विवादित जायदाद में नहीं रहता है तथा 1956 में अधिनियम लागू हो जाने से 'प्राईमाजीनीचर' का कानून अंतर्गत धारा 5 हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम समाप्त हो गया था तथा गढ़ व अन्य सम्पतियां केसरी सिंह की संयुक्त हिन्दू परिवार सम्पत्ति हो गई थी, जिसमें स्वर्गीय केसरी सिंह व उनके तीन सगे भाइयों-गोवर्धन सिंह, मदन सिंह व विजय सिंह की संयुक्त हिन्दू परिवार की सम्पत्ति हो गई थी, जिसमें स्वर्गीय केसरी सिंह व उनके तीन भाई हिन्दू विधि के अनुसार हकदार बन गए । विवादित सम्पत्ति पर विजय सिंह व उनके परिवार का अनन्य रूप से 52 साल से कब्जा था तथा विजय सिंह की मृत्यु के पश्चात् प्रतिवादियों संख्या 1, 2, 3 इस पर बहैसियत मालिक काबिज हैं । चूंकि यह जायदाद केसरी सिंह तथा उनके सगे भाइयों की सामलाती थी । अतः स्वर्गीय केसरी सिंह व विजय सिंह को कोई इकरार लिखने का अधिकार नहीं था । इस संबंध में वादी चन्द्रवीर सिंह ने अपनी साक्ष्य में कथन किया है, उनके पिता चार भाई हैं । केसरी सिंह बड़े थे छोटे गोवर्धन सिंह, मदन सिंह व विजय सिंह थे । चूंकि केसरी सिंह 1918 में जागीरदार बन गए थे व छोटों को अलग जागीर देकर पट्टे दे दिए थे । अतः चन्द्रवीर सिंह ही एक मात्र मालिक है । 23 अगस्त, 1958 को जागीर रिज्यूम हो गई थी । केसरी सिंह 1972 में गुजर गए थे । दिनांक 14 जनवरी, 1958 को राव जी साहब श्री केसरी सिंह जी और भाई गोवर्धन सिंह, श्री मदन सिंह, श्री विजय सिंह जी के परस्पर भाई बंट में मकान देने का प्रश्न उपस्थित होने पर वाद विचार आप भाइयों का ठिकाना से निम्न प्रकार

से मकान देना तय हुआ –

1. श्री गोवर्धन सिंह जी	–	छोटा दरवाजा (बिजोलिया) के पास की हवेली ।
2. श्री मदन सिंह जी	–	माजी साहब कृष्णावत जी नोहरा
3. श्री विजय सिंह जी	–	माजी साहब शख्तावत जी का नोहरा

श्री विजय सिंह जी को जो नोहरा दिया गया है उसके पीछे जो खाली प्लाट कंवरपदा के खण्डहर महलों समेत है तथा इस नोहरा के पूर्व में जो श्री किशन दरोगा का पट्टाशुदा मकान है उसके और नोहरा के बीच में जो भूमि है वह भी श्री विजय सिंह के नोहरा की जमीन में सम्मिलित है । कंवरपदा के महल खण्डहर है जिनको यदि श्री विजय सिंह जी गिरा कर मकान बनावेंगे तो वहां का मलबा श्री विजय सिंह जी अपने उपयोग में लेंगे और यदि वे खण्डहर राज जी साहब गिरवाकर श्री विजय सिंह जी को प्लाट के रूप में भूमि सुपुर्द करेंगे तो खण्डहरों का मलबा राव जी साहब का निजी होगा ।

श्री मदन सिंह जी और श्री गोवर्धन सिंह जी को श्री विजय जी के नोहरा के बाबत लिखी उपरोक्त बात से कोई मतभेद या ऐतराज नहीं है ।

यह फैसलनामा आज माह बद 9 मंगलवार संवत् 2011 तारीख 14 जनवरी, 1958.

केसरी सिंह व तीनों भाइयों में परस्पर छूट भाई बंट के लिए रहवास के मकानों का बंटवारा हुआ था । इस पर चारों भाइयों के हस्ताक्षर हैं । जिसमें कंवरपदा के महल को गिराकर विवादित जायदाद विजय सिंह की ओर से केसरी सिंह को देने का उल्लेख है विजय सिंह की मृत्यु सितम्बर, 1983 में हुई थी । इस साक्षी ने (बयान के पेज 4 में नीचे से 12वीं लाईन में) यह स्वीकार किया है कि 1960-70 से वह बाहर रह रहे हैं । पी.ड. 5 भंवरलाल का कथन है कि चन्द्रवीर सिंह जी गढ़ से बाहर रहते हैं दो मकानों पर विजय सिंह का कब्जा है । मुकुट महल व पानेरा जो चन्द्रवीर ने खाली किए तो उन्होंने ताले लगा दिए । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि केसरी सिंह ने तीनों भाइयों को अलग-अलग गांव जागिर में दे दिए

थे व स्वामित्व गढ़ पर केसरी सिंह का ही था । विजय सिंह के देहांत के बाद खाली करने के लिए कहा तो टालमटोल करते रहे, उनके मरने के बाद राजेन्द्र सिंह ने भी आना-कानी की । डी.ड. 1 राजेन्द्र सिंह को कथन है कि गढ़ पर कब्जा उनका मालिकाना हक से है । गढ़ पर वादी का कोई कब्जा नहीं है । विजय सिंह व मदन सिंह का कब्जा गढ़ पर उनकी पैदाइश से है । तीसरे भाई गोवर्धन सिंह का कब्जा व केसरी सिंह जी का कब्जा बाद में यहां आने से है । गढ़ के संबंध में कोई भाई बंटवारा नहीं हुआ । गोविन्द विलास व दो भण्डारों पर हमारा कब्जा था । मुकुट महल हमारे पिता के कब्जे में था, अब हमारे कब्जे में है । डा.ड. 5 श्री किशन सिंह ने कथन किया है कि डोढ़ी पर भण्डार पर, कचहरी पर, फरामखाना, डाक बंगला पर अभी चन्द्रवीर सिंह के ताले लगे हुए हैं । मुकुट महल राजेन्द्र सिंह के कब्जे में है तथा दरीखाना खुला हुआ है । जिसका उपयोग राजेन्द्र सिंह कर रहे हैं । गोविन्द निवास में राजेन्द्र सिंह की माता व परिवार रहते हैं इसके अलावा प्रतिवादी साक्षी संख्या 6 रतन सिंह भी अपनी जिरह में स्वीकार करता है कि उसकी माता की राव साहब की पत्नी के पास नौकरी थी । विजय सिंह, महेन्द्र सिंह, राजेन्द्र सिंह के कब्जे में गोविन्द विलास, मुकुट महल, रसोई दो तीन कमरे हैं । इसके अलावा बाकी पर चन्द्रवीर सिंह जी का कब्जा है । इसी प्रकार डी.ड. 7 हुक्मीचंद भी राव साहब का अभी भी विवादित जायदाद को छोड़कर शेष पर चन्द्रवीर सिंह के ताले लगे होने बताना है । इस प्रकार जहां प्रतिवादी 1968 से वादी गढ़ में निवास करना नहीं बताता है वादी का 1968 से गढ़ पर निवास नहीं है जैसा कि स्वयं प्रतिवादी के साक्षी श्री किशन डी.ड.5, डी.ड.6 रतनलाल, डी.ड. 7 हुक्मीचंद स्वीकार करते हैं कि विवादित जायदाद के अलावा शेष पर चन्द्रवीर का कब्जा है तथा वह वार-त्यौहार आते-जाते हैं । वादी के द्वारा कर विवादित जायदाद के लिए ही कब्जा तथा निषेधाज्ञा के लिए वाद पेश किया गया है । तथा वादपत्र की मद संख्या 6 में विवादित जायदाद पर विजय सिंह का तथा उनकी मृत्यु के बाद प्रतिवादियों का परमेसिव पजेशन था । प्रतिवादियों द्वारा 29 सितम्बर, 1983 को मना कर दिया गया ।

प्रदर्श 15, तारीख 14 जनवरी, 1958 को लिखा गया था तथा जागीरदारी अगस्त, 1958 में रिज्यूम हुई । (बयान पी. डब्ल्यू. 1 चन्द्रवीर सिंह) अतः यह प्रकट है कि जागीरदारी रिज्यूम होने से पूर्व

ही केसरी सिंह व सगे भाइयों के बीच निष्पादित किया गया । उसके बाद प्रदर्श 1 केसरी सिंह व विजय सिंह के बीच 14 अप्रैल, 1968 को निष्पादित हुआ । प्रतिवादियों के पिता श्री विजय सिंह जो प्रदर्श 1 व 15 में पक्षकार थे तथा अनुबंध केसरी सिंह से किया गया था कि केसरी सिंह कंवरपदा के महल गिराकर सूचना विजय सिंह को देंगे व विजय सिंह नोहरे पर कब्जा कर विवादित जायदाद खाली कर, केसरी सिंह जी को सौंप देंगे । परिणामस्वरूप केसरी सिंह को विवादित जायदाद पर कब्जा करना था । इसके अतिरिक्त अविभाजित हिन्दू परिवार की संयुक्त संपत्ति के बीच संपत्ति पर मात्र कब्जा संयुक्त रूप से आपसी सहमति से संयुक्त संपत्ति पर अवस्थित होने से आपसी सहमति से अदला-बदली करके कब्जा करना था और यह दस्तावेज मात्र इस बाबत ही लिखा गया था जो कि संयुक्त हिन्दू परिवार की संपत्ति को इसके संयुक्त सह-भागीदार के बीच हुई । विवादग्रस्त संपत्ति व अन्य जो संपत्ति थी उसका आपस में लेन-देन किया जाना था । क्योंकि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 4 के अनुसार जिस वक्त दस्तावेज लिखा गया तब प्राईमिनेचर के अधिकार समाप्त हो गए । जो 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 लागू होने की तारीख से समाप्त हो गया था और यह उत्तराधिकार का नियम प्राईमिनेचर धारा 5 उत्तराधिकार अधिनियम के तहत संरक्षण नहीं किया गया था बल्कि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम के अधीन यह संपत्ति संयुक्त हिन्दू परिवार के कर्ता की अविभाजित अनपार्टिबल इस्टेट संपत्ति थी न कि किसी पूर्व राजा की । संप्रभुता रियासत की संपत्तियां जिन पर तो रूल आफ प्राईमिनेचर का उत्तराधिकार मिलने से हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम का संरक्षण किया गया हो ।

इस प्रकार संयुक्त हिन्दू परिवार की संयुक्त हिस्सेदारी केसरी सिंह व विजय सिंह की हिन्दू संपत्ति विवादग्रस्त व अन्य दस्तावेज प्रदर्श 1 व 15 की संपत्तियां एक हिस्सेदार की संपत्ति को दूसरे के कब्जे में देना था तथा दूसरे समान वाले हिस्सेदार से अपनी संपत्ति कंवरपदा का महल को गिराना, उसका मलबा हटाना व उसके तीन वर्ष उपरांत कब्जे में दिए जाने का उल्लेख है । कंवरपदा का महल गिराने वाले पक्षकार को देना था ऐसी स्थिति में केसरी सिंह के द्वारा कंवरपदा के महल गिराने के उपरांत जो कि आसोद सूद 15 संवत्

2025 को गिराना था, जिसके तीन वर्ष की अवधि में यानि आसोद सूद 15 संवत् 2028 तक विजय सिंह के कब्जे में जो विवादित जायदाद थी उस पर कब्जा केसरी सिंह को दिया जाना था । ऐसी स्थिति में प्रदर्श 15 भी उसके निष्पादन के पश्चात् चूंकि विवाद्यक संख्या 1 के निष्पादित करना विवादित जायदाद के संबंध में साबित हो चुका है तो ऐसी स्थिति में विवादित जायदाद को विजय सिंह व उसके वारीसान से कब्जा केसरी सिंह के विहाफ तथा उसकी अनुमति से दिया गया कब्जा माना जाएगा जो कि एक हिस्सेदार द्वारा दूसरे को परमिशन के आधार पर कब्जे की तारीख में आता है । अतः विवादित संपत्ति को 2025 से 2028 तक विजय सिंह का कब्जा केसरी सिंह जिसका कि कब्जा प्रदर्श 1 व 15 से प्राप्त करने का अधिकार हो गया था कि इबारत से ही विजय सिंह व उनके वारीसान के पास केसरी सिंह की अनुमति से परमिसिव कब्जा माना जाएगा और इस प्रकार केसरी सिंह की अनुमति में प्रदर्श 1 व 15 के निष्पादन के फलस्वरूप विजय सिंह के पास परमिसिव कब्जा था । विवादित जायदाद पर विजय सिंह व उनके वारीसान का परमिसिव कब्जा केसरी सिंह की अनुमति में ही माना जाएगा, चाहे इससे पूर्व विवादित जायदाद की स्थिति कोई भी क्यों न रही हो । ऐसी स्थिति में विजय सिंह तथा उनके वारीसान को विवादित जायदाद का कब्जा चन्द्रवीर सिंह (वादी-उत्तराधिकारी) को देना था । अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादियों का कब्जा परमिसिव कब्जा नहीं रहा हो तथा इस वाद की वादी का आधार भी यही है । अतः यह विवाद्यक वादी के पक्ष में तथा प्रतिवादियों के विरुद्ध निर्धारित किया जाता है ।"

5. तत्पश्चात्, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 19 फरवरी, 2014 के आदेश द्वारा पूर्वोक्त विवाद्यकों पर निकाले निष्कर्ष की अभिपुष्टि करते हुए निष्कर्ष निकाले हैं जो वर्तमान संदर्भ के लिए निम्नलिखित हैं :–

"24. जहां तक इस आपत्ति की दस्तावेज प्रदर्श 1 मुद्रांकित व पंजीकृत नहीं है, अतः साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । इस संबंध में जो उपरोक्त न्यायिक दृष्टांत प्रस्तुत किए गए हैं, के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत प्रकरण की विवेचना करें तो यह सामने आता है कि प्रस्तुत प्रकरण वादीगण ने दस्तावेज प्रदर्श 1 के आधार पर प्रस्तुत किया है, जिसके लिए वादीगण का कथन है कि आपस में स्व. केसरी सिंह व स्व.

विजय सिंह में यह तय हो गया था कि विजय सिंह वादग्रस्थान, जो गढ़ का है, उसे खाली कर जो नोहरा व प्लाट गढ़ के बाहर है, उसमें चले जाएंगे एवं यह दस्तावेज प्रदर्श 1 पूर्व में हुए बंटवारे के बाद में एकनोलजमेंट के रूप में लिखा गया था । अतः इस दस्तावेज प्रदर्श 1 को पंजीकृत या मुद्रांकित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि शर्तें पहले ही तय हो चुकी थीं एवं बाद में केवल उसका मात्र एकनोलजमेंट किया गया था । अतः ऐसी स्थिति में शर्तें दस्तावेज लिखे जाने के पहले ही बंटवारे बाबत तय हो गई थी एवं बंटवारा पहले ही चारों भाइयों में होकर उनमें से दो भाई अपनी-अपनी संपत्तियों पर काबिज हो गए थे, परंतु दो भाइयों के मध्य बंटवारे को रूप नहीं दिया जा सका था, इस कारण पुनः प्रदर्श 1 लिखा जाना इस दस्तावेज प्रदर्श 1 से साबित होता है । अतः चूंकि पूर्व में ही बंटवारे की शर्तें तय थीं, अतः उसके एकनोलजमेंट के तहत बंटवारे को क्रियान्वयन करने के लिए पुनः नया दस्तावेज प्रदर्श 1 लिखा गया है । अतः यह दस्तावेज एकनोलजमेंट अथवा ज्ञापन की श्रेणी में माना जा सकता है एवं इस दस्तावेज प्रदर्श 1 के पंजीकरण व मुद्रांकित की आवश्यकता नहीं रहती है ।

25. प्रतिवादियों के अधिवक्ता का यह तर्क है कि दस्तावेज प्रदर्श 1 को यदि पूर्व का बंटवारानामा माने तो वह पूर्व का दस्तावेज भी पंजीकृत नहीं है । अतः जिस दस्तावेज प्रदर्श 15 के आधार पर दूसरा दस्तावेज प्रदर्श 1 लिखा गया है तो वह भी साक्ष्य में ग्राह्य होना नहीं माना जा सकता है । इस तर्क पर विचार करें तो यह सही है कि प्रदर्श 15 दस्तावेज पंजीकृत नहीं है परन्तु यह बात सामने आई है कि प्रदर्श 15 चार भाइयों के मध्य लिखा गया था, जिसमें से दो भाइयों ने उसकी शर्तों की पालना कर दी, केवल केसरी सिंह व विजय सिंह के संबंध में संपत्ति के कब्जे का ही विवाद शेष रहता है । अतः अगर दस्तावेज प्रदर्श 15 को पंजीकृत नहीं माने तब भी यह तथ्य साबित हुआ है कि चार भाइयों के मध्य आपस में बंटवारा की शर्तें तय होकर भाई अपनी संपत्तियों पर काबिज हो गए थे । अतः बंटवारानामें पर उन्होंने अमल कर लिया था व शेष दो भाइयों का ही विवाद शेष रहा था, जबकि शर्तें पहले ही तय हो चुकी थीं व उन्हीं शर्तों को दुबारा लिखते हुए प्रदर्श 1 लिखा गया था । प्रदर्श 15 को अपंजीकृत मानते हुए साक्ष्य में ग्राह्य नहीं मानते तब भी यह साबित

होता है कि चारों भाइयों में शर्तें तय हो चुकी थीं एवं प्रदर्श 1 में जो शर्तें हैं, वे पहले की शर्तों की पालना के लिए पुनः पक्षकारों को समय दिया गया था । अतः ऐसी स्थिति में प्रदर्श 1 केवल मेमोरेंडम माना जा सकता है एवं उसके अपंजीकृत व मुद्रांकित होने पर भी उसे साक्ष्य में ग्राह्य होना माना जा सकता है ।

26. इस विवाद्यक बिन्दू के संबंध में अधिवक्ता प्रतिवादी का यह भी तर्क रहा है कि प्रदर्श 1 दस्तावेज पर प्रतिवादियों के पिता व विजय सिंह के हस्ताक्षर हैं या नहीं, यह साबित करने का भार वादी पर था । हालांकि चन्द्रवीर सिंह पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में यह कथन करता है कि प्रदर्श 1 पर विजय सिंह और उसके पिता ने उसके सामने हस्ताक्षर किए थे परन्तु चन्द्रवीर सिंह यह कहीं भी नहीं कहता कि प्रदर्श 1 पर विजय सिंह ने कौन से स्थान पर हस्ताक्षर किए । पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में बने सिंह का यह जरूर कथन है कि ई से एफ हस्ताक्षर विजय सिंह के हैं और प्रदर्श 1 उन्होंने केसरी सिंह, विजय सिंह के कहने से लिखा । यह बात स्पष्ट है कि प्रदर्श 1 में विजय सिंह नाम से जो हस्ताक्षर हो रखे हैं, वह हिन्दी में है । प्रदर्श 2 पर रजिस्ट्री की पावती है, जिस पर विजय सिंह के हस्ताक्षर ए से बी के बीच में अंग्रेजी में है । ऐसी स्थिति में वादी पक्ष की तरफ से प्रदर्श 6,11 व 12 दस्तावेज तलब करवाए गए और प्रदर्श चिन्हित करवाए गए परन्तु किसी गवाह से यह नहीं कहलाया गया कि इनमें विजय सिंह नाम से हस्ताक्षर है, जो मृतक विजय सिंह के हस्ताक्षर होना नहीं कहलाए गए । परन्तु किसी गवाह से यह नहीं कहलाया गया कि इनमें विजय सिंह नाम से हस्ताक्षर है, जो मृतक विजय सिंह के है या नहीं । किसी भी गवाह से विजय सिंह के हस्ताक्षर होना नहीं कहलाए जाने से यह साबित नहीं माना जा सकता कि विजय सिंह के हस्ताक्षर ए से बी है । यह भी कथन किया गया कि मात्र प्रदर्श चिन्हित कराने से कोई दस्तावेज साबित नहीं होता । किसी भी दस्तावेज को साबित करने के लिए उसे प्रदर्श चिन्हित करने के अलावा उस गवाह को पेश करना पड़ता है जो विश्वसनीय रूप से यह कहे कि उक्त हस्ताक्षर विजय सिंह के ही हैं । उन्होंने अपने तर्कों के समर्थन में न्यायिक दृष्टांत ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1856, ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1949, 1955 आई. एल. आर. (5) (राज.) 191 प्रस्तुत किए ।

27. दस्तावेज के संबंध में गवाह पी. डब्ल्यू. 1 व पी. डब्ल्यू. 2 दोनों ने विजय सिंह के हस्ताक्षर होना प्रदर्श 1 में बताया है । प्रतिवादियों ने ऐसा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जिससे यह साबित होता हो कि हस्ताक्षर विजय सिंह के नहीं है । केवल मात्र यह कथन कि प्रदर्श 1 पर अंग्रेजी में हस्ताक्षर है, जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि प्रदर्श 1 पर विजय सिंह के हस्ताक्षर न हों । प्रदर्श 1 पर विजय सिंह के हस्ताक्षर होना साबित माना जाता है एवं उपरोक्त न्यायिक दृष्टांत प्रतिवादियों की कोई मदद नहीं करते हैं कि उक्त दस्तावेज को साबित नहीं किया गया हो ।

28. अतः उपर्युक्त विवेचनानुसार इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विवाद्यक सं. 1 व 9 अधीनस्थ न्यायालय द्वारा वादीगण के पक्ष में व प्रतिवादियों के विरुद्ध निर्णीत करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है । अतः विवाद्यक सं. 1 व 9 पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की पुष्टि की जाती है ।

.....

30. वादी गवाह पी. डब्ल्यू. 1 चन्द्रवीर सिंह ने यह कथन किया है कि नक्शा "ए" में लाल स्याही से बताए गए हिस्से के बाबत दावा किया है । नक्शा "बी" में टीयूवीआएस हिस्से में मेरे काका विजय सिंह को सपरिवार जाना था, जो गढ़ के हिस्से के बाहर है । आसोज सूद पूनम संवत् 2025 तक टीयूवीएक्स स्थान गिराना था । यह हिस्सा निश्चित तिथि से पूर्व ही आसोज सूद चार को गिरा दिया था और मलबा हटा दिया था । गिराने की सूचना मेरे काका विजय सिंह रजिस्टर्ड पत्र द्वारा दे दी गई थी, जिसकी ए डी रसीद प्रदर्श 2 है, जिस पर ए से बी दस्तखत मेरे काका विजय सिंह के हैं, जो मैं पहचानता हूं । इसकी रजिस्टर्ड सूचना बने सिंह को भी दी गई, जिसकी ए डी रसीद प्रदर्श 3 है, जिस पर ए से बी दस्तखत बने सिंह के हैं, जो मैं पहचानता हूं । विजय सिंह और बने सिंह को सूचना दी कि मकान समय पर गिरा दिया गया है । उनको सूचना मकान गिराया, उसके दूसरे तीसरे दिन ही पत्र द्वारा भेज दी गई । उसके बाद विजय सिंह जी को खाली करने के लिए कहा और दूसरे लोगों से भी कहा । जिरह में गवाह का कथन है कि विजय सिंह और उनके उत्तराधिकारियों का व्यवहार मानवीय नजर नहीं आया इसलिए उनको सूचना रजिस्ट्री से दी थी । इकरार प्रदर्श 1 के मुताबिक

मकान समय पर खाली करने को तैयार नहीं थे, इसलिए रजिस्ट्री से सूचना दी । मकान गिराते ही दूसरे दिन मकान खाली करने के लिए कह दिया तो विजय सिंह और उनके लड़के ने इनकार कर दिया । प्रदर्श 2 और 3 के जरिए जो पत्र भेजे, उनकी नकल नहीं रखी । विजय सिंह और बने सिंह को एक ही मजबून लिखकर नहीं भेजा, अलग-अलग मजमून लिखकर भेजा । व्यवहार खराब होने पर भी उसकी कापी नहीं रखी, क्योंकि रजिस्ट्री से पत्र भेजे थे । यह गलत है कि प्रदर्श 2 व 3 रसीदें इस विवाद के संबंध में नहीं हो ।

31. गवाह पी. डब्ल्यू. 2 बने सिंह ने कथन किया है कि प्रदर्श 1 के अनुसार कंवरपदा के महल को गिराना था और उसे प्लाट के रूप कर देना था । कंवरपदा के महल गिराने की इत्तिला रजिस्टर्ड पत्र द्वारा राव केसरी सिंह जी ने मेरे को सूचित किया था, जो पत्र मैं आज लाया हूं, जो प्रदर्श 4 है । प्रदर्श 4 को प्राप्त होने के पश्चात् मैंने एक पत्र विजय सिंह जी को लिखा और नकल भी पत्र के साथ भेजी थी । मैंने डाक से भेजी थी । मैंने विजय सिंह के नाम से भेजा था इसलिए वह विजय सिंह के पास होना चाहिए । पत्र मैंने डाला, उसकी ए डी प्रदर्श 2 है । प्रदर्श 3 पर ए से बी दस्तखत मेरे हैं । प्रदर्श 4 पत्र आया, उसकी ए डी प्रदर्श 3 है ।

32. गवाह पी. डब्ल्यू. 3 हीरालाल ने कथन किया है कि प्रदर्श 4 राव साहब ने मेरे सामने लिखा । प्रदर्श 4 में ए से बी राव साहब ने हाथ से मेरे सामने लिखा था और सी से डी राव साहब के दस्तखत है, जो मेरे सामने किए । प्रदर्श 4 में इ से एफ लिखावट मेरे हाथ की है और जी से एच मेरे दस्तखत है । पी. डब्ल्यू. 5 भंवरलाल ने कथन किया है कि हम कंवरपदा के महल देखने गए थे, जिनको गिरा दिया था । वहां पर बराबर गिरा दिया था और समतल कर दिया था । बने सिंह जी को निपटाने के लिए लिखा था ।

33. अतः उपरोक्त वाद के समस्त गवाहों ने कंवरपदा के महल को गिरा देने का कथन किया है । गवाह पी. डब्ल्यू. 1 व पी. डब्ल्यू. 2 के अनुसार निर्धारित दिनांक से पूर्व कंवरपदा के महल को गिरा दिया गया था, जो समय प्रदर्श 1 में निर्धारित किया गया था । विवाद्यक सं. 1 व 9 के निस्तारण में प्रदर्श 1 का निष्पादन किया जाना माना जा चुका है । अतः इसकी शर्तों के अनुसार वादीगण के साक्षियों ने कथन किया है कि कंवरपदा के महल को समय से पूर्व गिरा दिया

गया था । इस प्रकार यह बात साबित होती है कि इकरारनामें के अनुसार आसोज सूद 15 (पूनम) संवत् 2050 तक कंवरपदा का महल गिराकर सूचना विजय सिंह जी को दे दी थी । चूंकि प्रदर्श 1 की शर्तों के अनुसार आसोज सूद पूनम संवत् 2028 तक जायदाद को विजय सिंह द्वारा खाली कर केसरी सिंह को सुपुर्द करने की शर्त तय होना स्पष्ट है, ऐसी स्थिति में यह माना जा सकता है कि शर्तों के अनुसार आसोज सूद पूनम संवत् 2028 तक विजय सिंह को वादग्रस्त जायदाद खाली कर केसरी सिंह को सुपुर्द करनी थी । अतः विवाद्यक सं. 2 व 3 को वादीगण के पक्ष में निर्णीत कर अधीनस्थ न्यायालय ने कोई त्रुटि नहीं की है । अतः विवाद्यक सं. 2 व 3 पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की पुष्टि की जाती है ।

.....

आदेश

अतः अपीलार्थी/वादी चन्द्रवीर सिंह द्वारा प्रस्तुत अपील सं. 43/2001 एवं अपीलार्थियों/प्रतिवादियों श्रीमती राजकुंवर (मृतका), राजेन्द्र सिंह व महेन्द्र सिंह द्वारा प्रस्तुत अपील सं. 44/2001 खारिज की जाकर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पारित निर्णय व डिक्री दिनांक 1.11.2001 की पुष्टि की जाती है । खर्चा पक्षकारान अपना-अपना वहन करेंगे । तदनुसार डिक्री बनाई जाए । निर्णय व डिक्री प्रति सहित अधीनस्थ न्यायालय की पत्रावली अविलंब भिजवाई जाए ।

हस्ता./-
(अनन्त भण्डारी)
अपर जिला न्यायाधीश
संख्या-1, भीलवाड़ा (राज.)"

6. अपीलार्थी-प्रतिवादियों श्री सज्जन सिंह और श्री रमित मेहता के विद्वान् काउंसेलों ने यह निवेदन किया है कि मूल रूप से तथाकथित विभाजन विलेख चार भाइयों अर्थात् केसरी सिंह, मदन सिंह, गोवर्धन सिंह और विजय सिंह के बीच तारीख 14 जनवरी, 1958 का विभाजन विलेख नहीं था और क्योंकि वह रजिस्ट्रीकृत नहीं था और न ही समुचित तौर पर मुद्रांकित था, इसलिए वह साक्ष्य में ग्राह्य नहीं था और चूंकि तथाकथित विभाजन विलेख, जो तारीख 14 जनवरी, 1958 को निष्पादित होना अभिकथित है, पर कभी भी कोई कार्य नहीं हुआ है और एक अन्य

दस्तावेज, जो स्वीकृततः चारों भाइयों में से दो भाइयों केसरी सिंह और विजय सिंह के बीच निष्पादित हुआ था और तारीख 14 अप्रैल, 1968 का उक्त दस्तावेज प्रदर्श 1 सशर्त था जिसके अनुसार, वादी केसरी सिंह जिसने अपने विधिक प्रतिनिधि द्वारा प्रतिवेदन किया है, द्वारा "कंवरपदा का महल" के रूप में ज्ञात संपत्ति को ध्वस्त करके गिराया जाना था तथा खाली भूखंड को विजय सिंह को सौंपा जाना था और जिसके उपरांत, उक्त विजय सिंह द्वारा स्वयं और अपने परिवार द्वारा अधिकृत वाद संपत्ति अर्थात् "गोविन्द विलास" और "कुकुट महल" को अपने बड़े भाई केसरी सिंह को सौंपा जाना था और ऐसी ध्वस्त की गई संपत्ति और खाली प्लाट को आसोज सूद 15 संवत् वर्ष 2015 के अनुध्यात समय के भीतर नहीं सौंपा जाता है तो प्रत्येक माह के विलंब के लिए उक्त भाई विजय सिंह एक वर्ष के लिए वाद संपत्ति में रोक बढ़ाने का हकदार होगा । मृतक केसरी सिंह के विधिक प्रतिनिधियों, वादियों चन्द्रवीर सिंह और श्रीमती चांद कुमारी के अनुसार, उन्होंने उक्त संपत्ति अर्थात् "कंवरपदा का महल" को ध्वस्त किया था जो असमतल दशा में था और उसे अनुध्यात समय के पूर्व 15,000/- रुपए की धनराशि खर्च करके ध्वस्त किया गया था और इस संबंध में सूचना प्रतिवादी विजय सिंह को बने सिंह के एक पत्र द्वारा भेज दिया गया था जिसने पृथक् पत्र द्वारा भी विजय सिंह को सूचित कर दिया था और जिसके उपरांत भी उक्त प्रतिवादी विजय सिंह ने प्रश्नगत संपत्ति का कब्जा नहीं सौंपा इसलिए, वादियों ने वर्तमान वाद फाइल किया है ।

7. प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल श्री सज्जन सिंह और श्री रमित मेहता ने यह निवेदन किया कि प्रथमतः प्रश्नगत संपत्ति के गिराए जाने के संबंध में उक्त सूचना प्रतिवादी विजय सिंह द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं की गई है और यद्यपि उक्त पत्र प्रदर्श ए/2 का गहनता से परिशीलन किया, तो इसमें यह कथित है कि उक्त गिराए गए मलबे को उक्त स्थल से हटाया जाना भी था और इसके अभाव में, तारीख 14 अप्रैल, 1968 के दस्तावेज में दोनों भाइयों के बीच करार की शर्त को पूरा किया जाना नहीं कहा जा सकता है और इस प्रकार, प्रतिवादी प्रश्नगत वाद संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए बाध्य नहीं थे । उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि यदि तारीख 14 अप्रैल, 1968 का दस्तावेज एक करार निर्मित करता है जिसका वर्तमान वाद में वादियों द्वारा विशिष्ट अनुपालन किया जाना ईप्सित था तो वाद फाइल करने की परिसीमा अवधि केवल तीन वर्ष थी और चूंकि स्वीकृततः प्रश्नगत वाद, तारीख 1 अक्तूबर, 1983 को फाइल किया गया

था, इसलिए, वाद स्पष्टतः काल-वर्जित था जबकि निचले न्यायालयों ने अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि 12 वर्ष की परिसीमा अवधि की गणना करने पर वाद परिसीमा अवधि के भीतर था । इसलिए, उन्होंने यह तर्क दिया कि विजय सिंह के विधिक प्रतिनिधियों, प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील में, इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विधि के कई सारवान् प्रश्न उद्भूत हुए हैं ।

8. दूसरे ओर, प्रत्यर्थियों-वादियों केसरी सिंह अर्थात् चन्द्रवीर और श्रीमती चांद कुमारी के विधिक प्रतिनिधियों के विद्वान् काउंसेल ने अपीलार्थियों-प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों का जोरदार विरोध किया और यह निवेदन किया है कि वाद उन वादियों के पक्ष में सही और एक ही डिक्री पारित की, जो बड़े भाई केसरी सिंह के विधिक प्रतिनिधि हैं और वस्तुतः यह कि उनके पास उस संयुक्त संपत्ति का कोई भाग नहीं है जिसका तारीख 14 जनवरी, 1958 के विभाजन विलेख के अधीन चारों भाइयों के बीच विभाजन करने की मूलतः सहमति हुई जिस पर कार्य हुआ था जहां तक कि यह दो भाइयों अर्थात् मदन सिंह और गोवर्धन सिंह से संबंधित था और स्वयं उस विभाजन विलेख के अधीन प्रतिवादी विजय सिंह ने "माजी साहब सखावत जी का नोहरा" के रूप ज्ञात संपत्ति प्राप्त की थी । तथापि, चूंकि बाकी दोनों भाइयों अर्थात् बड़े भाई केसरी सिंह और छोटे भाई विजय सिंह के बीच विवाद का निपटारा नहीं हो सका था इसलिए तारीख 14 अप्रैल, 1968 को उनके बीच एक अन्य दस्तावेज निष्पादित हुआ था और वादी के पिता केसरी सिंह ने "कंवरपदा का महल" के गिराने की उक्त शर्त का सम्यक् रूप से अनुपालन किया था और प्रतिवादी विजय सिंह को यह सूचना दी थी कि वह संपत्ति में अपने अंश में ठीक पीछे खाली पड़े भूखंड का अधिभोग ले सकता है और इसलिए प्रतिवादी विजय सिंह जो अब अपने विधिक प्रतिनिधियों को प्रतिनिधित्व कर रहा है, वादियों के वर्तमान वाद संपत्ति का कब्जा सौंपने के लिए आबद्ध था । वाद संपत्ति "गोविन्द विलास" और "मुकुट महल" के रूप में ज्ञात है जो वाद के साथ प्रस्तुत नक्शे के सहित वादपत्र में वर्णित है । विद्वान् काउंसेल श्री संदीप सरूपरिया ने यह निवेदन किया कि विद्वान् दोनों निचले न्यायालयों द्वारा वाद संपत्ति अनुज्ञेय कब्जे के बारे में निकाले गए तथ्य के निष्कर्ष और वादियों के पक्ष में दिए गए कब्जे की डिक्री जैसाकि ऊपर उद्धृत है सुसंगत और तर्कपूर्ण साक्ष्यों पर आधारित है और उन्हें किसी भी प्रकार से प्रतिकूल नहीं कहा जा सकता है न ही इसमें विद्वान् दोनों

निचले न्यायालय द्वारा किसी साक्ष्य और दस्तावेज का गलत परिशीलन किया गया है और इसलिए, प्रतिवादियों की इस द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए कोई विधि का सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होता है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना और अभिलेख का परिशीलन किया है । पक्षकारों के बीच नजदीकी संबंध को देखते हुए, इस न्यायालय ने भी तारीख 24 नवम्बर, 2014 को मध्यस्थता के माध्यम से विवाद का समाधान करने के लिए मामले को निर्दिष्ट किया और दोनों पक्षकारों को तारीख 9 दिसम्बर, 2014 को विद्वान् मध्यस्थ के समक्ष पेश होने का निर्देश दिया । तथापि, दुर्भाग्यपूर्ण तौर पर, मध्यस्थता बातचीत, तारीख 9 दिसम्बर, 2014 और 10 दिसम्बर, 2014 की मध्यस्थ रिपोर्ट के साथ तारीख 11 दिसम्बर, 2014 की सूचना द्वारा असफल रहा । इसलिए, दलीलें, वर्तमान द्वितीय अपील की स्वीकृति के लिए और यह निष्कर्ष निकालने के लिए गुणागुणों पर सुने गए कि क्या प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विधि का कोई सारवान् प्रश्न उद्भूत हुआ है ।

10. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात्, इस न्यायालय का समाधान है कि प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए विधि का कोई सारवान् प्रश्न उदभूत नहीं हुआ है और दोनों निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित समवर्ती निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर आधारित तथ्यों के तर्कपूर्ण निष्कर्ष हैं और इससे वर्तमान द्वितीय अपील में विधि का कोई सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है ।

11. यद्यपि, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में साक्ष्य का पुनःमूल्यांकन करने की अनुज्ञा नहीं है, तथापि, इस न्यायालय ने दोनों निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की विधिमान्यता का परीक्षण करने के लिए वर्तमान मामले में, सुसंगत और महत्वपूर्ण दस्तावेजों की जांच की है । प्रथमतः दस्तावेज प्रदर्श 15, तथाकथित तारीख 14 जनवरी, 1958 का विभाजन विलेख है और जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया है, जो वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत है :–

तारीख 14.01.1958 के बंटवारे का प्रदर्श 15 ज्ञापन

"श्री हरि

रावजी साहब श्री केसरी सिंह जी और भाई श्री गोवर्धन सिंह जी, श्री मदन सिंह जी, श्री विजय सिंह जी के परस्पर भाई बंटवारे में मकान देने का प्रश्न उपस्थित होने पर, बाद विचार 4 भाइयों को ठिकाना से निम्न प्रकार से मकान देना तय हुआ –

1. श्री गोवर्धन सिंह जी	–	छोटा दरवाजा (बिजौलिया) के पास की हवेली
2. श्री मदन सिंह जी	–	माजी साहब कृष्णावतजी का नोहरा
3. श्री विजय सिंह	–	माजी साहब शक्तावत जी का नोहरा

श्री विजय सिंह को जो नोहरा दिया गया है । इसके पीछे जो खाली प्लाट कंवरपदा के खंडहर महलों समेत है तथा इस नोहरा के पूर्व में जो श्री किशन दरोगा का पट्टाशुदा मकान है इसके और नोहरा के बीच में जो भूमि है वह भी श्री विजय सिंह जी के नोहरा की जमीन में सम्मिलित है । कंवरपदा के महल खंडहर हैं जिनको यदि श्री विजय सिंह जी गिरा कर मकान बना ले वहां का मलबा श्री विजय सिंह जी अपने उपयोग में ले सकेंगे यदि वे खंडहर रावजी साहब गिरवा कर श्री विजय सिंह जी को प्लाट के रूप में भूमि सुपुर्द करेंगे तो खंडहरों का मलबा राव जी साहब का निजी होगा ।

श्री मदन सिंह जी और श्री गोवर्धन सिंह जी को विजय सिंह जी के नोहरा के बारे में लिखी उपरोक्त बात से कोई मतभेद या ऐतराज नहीं है । यह फैसलनामा आज माह बद मंगलवार संवत् 2014 तारीख 14.1.58 को लिखी गई ।

लेखक – बने सिंह

ह. गोवर्धन सिंह	ह. ठा. विजय सिंह
ह. ठा. मदन सिंह	आर.एस. केसरी सिंह

तारीख 14.1.1958

विशेष –

श्री गोवर्धन सिंह जी को दी गई हवेली उनके कब्जे में है । श्री

मदन सिंह जी और श्री विजय सिंह जी को उपरोक्त दिए जाने वाले नोहरे रावजी साहब उन्हें फाल्गुन सूद 15 संवत् 2014 तक सुपुर्द कर देंगे । श्री गोवर्धन सिंह जी, श्री मदन सिंह जी, श्री विजय सिंह जी संवत् 2017 के फाल्गुन सूद 15 तक राजद्वार के अंदर के मकान रावजी साहब को सुपुर्द कर देंगे और अपने नए मकानों में रहेगा तो वह रावजी साहब की मर्जी और शर्तों के अनुसार ही रह सकेगा ।

श्री विजय सिंह जी को दिए गए नोहरे में जो खंडहर कंवरपदा के भूमिसात करने कराने की शर्त है वह भी संवत् 2017 के फाल्गुन सूद 15 तक राव जी साहब द्वारा पूरी करानी होगी । यदि इस अवधि के उपरान्त भी राव जी साहब उसे पूरा न कराएंगे तो फाल्गुन सूद 15 संवत् 2017 के बाद प्रत्येक माह गुजरने पर, विजय सिंह जी को राजद्वार के अंदर मौजूदा मकान में एक वर्ष तक रहने का अधिकारी होगा और यह क्रम प्रतिमास प्रतिवर्ष के हिसाब से अवधि बढ़ाने का मापदंड होगा । पूरे महीने के 30 दिन से कम दिन यह अवधि बढ़ाने में नहीं गिने जाएंगे ।

बने सिंह

ह. गोवर्धन सिंह — ह. ठा. विजय सिंह

ह. ठा. मदन सिंह — आर. एस. केसरी सिंह

तारीख 14.1.1958"

12. यह भी उल्लिखित है कि तारीख 14 जनवरी, 1958 का उक्त विभाजन विलेख का चारों भाइयों में से दोनों भाइयों अर्थात् गोवर्धन सिंह और मदन सिंह के बीच निष्पादित हुआ था, किन्तु केसरी सिंह और विजय सिंह के बीच विवाद बना रहा ।

13. पश्चात्वर्ती दस्तावेज, दो भाइयों अर्थात् केसरी सिंह और विजय सिंह के बीच तारीख 14 अप्रैल, 1968 को निष्पादित हुआ था जिसे विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा उद्धृत किया गया है और जो वर्तमान दोनों लड़ने वाले पक्षकारों के बीच दलीलों का मूल आधार है जिसे वर्तमान संदर्भ के लिए भी नीचे उद्धृत किया जाता है :–

प्रदर्श 1 दस्तावेज तारीख 14.4.1968 (ज्ञापन के साथ पठित अतिरिक्त ज्ञापन तारीख 14.1.1958)

"श्रीमान रावजी साहब, केसरी सिंह जी और उनके सगे तीन

भाई सर्व श्री गोवर्धन सिंह जी, मदन सिंह जी और विजय सिंह जी के परस्पर 14 जनवरी, 1958 को छुट भाई बंट के लिए रहवास के मकानों का बंटवारा हुआ था उसमें परिस्थितवश प्रगति तो नहीं हुई पर विजय सिंह जी व रावजी साहब के दरम्यान जो शर्तें उस बंटवारे के लिखत में थीं उनकी पालना यथा समय न होने से अनिश्चितता और कठिनाई उत्पन्न होकर इन दोनों भाइयों के परस्पर मकान बंट का प्रयोजन ही अवरुद्ध सा हो गया इसलिए आज वाद विचार यह तय किया जाता है कि विजय सिंह जी को जो नोहरा और प्लाट पहले के फैसला मुताबिक दिए गए हैं वे उनके बंट में रहेंगे लेकिन जो प्लाट पर कंवरपदे के महलों के खंडहर हैं उन्हें रावजी साहब संवत् 2025 के आसोज सूद 15 तक उतरवा देंगे और इस तिथि के उपरान्त 3 वर्ष में विजय सिंह जी अपने भाई बंट के नोहरे में सपरिवार रहना शुरू कर देंगे । अर्थात् संवत् 2028 के आसोज सूद 15 तक वर्तमान रहवास के मकान को छोड़ देंगे । यदि संवत् 2025 के आसोज सूद 15 तक खंडहर रावजी साहब नहीं उतराएंगे तो इसके उपरान्त जितने महीने खंडहर उतरवाने में लेंगे तो प्रति महीने पर विजय सिंह जी को एक वर्ष के हिसाब से वर्तमान मकानों में रहने का अधिकार होगा । खंडहरों का मलबा रावजी साहब का होगा ।

लेखक बने सिंह

तारीख 14.4.1968 ह./-

आर. एस. केसरी सिंह

ह./-

विजय सिंह

हस्ता./- ”

14. केसरी सिंह द्वारा श्री बने को लिखा “कंवरपदा का महल” के गिराए जाने के संबंध में तारीख 3 अक्तूबर, 1968 के पत्र प्रदर्श ए/2 तथा भाइयों के बीच निष्पादित तारीख 14 जनवरी, 1958 और तारीख 14 अप्रैल, 1968 के दोनों दस्तावेज के लेखक, जो उक्त अन्तर्देशीय पत्र पर पते से आर. एस. एस. अधिकारी प्रतीत होता है और वह तत्कालीन तहसीलदार प्रशिक्षण स्कूल, टोंक का प्रधानाचार्य था और इस संबंध में बने सिंह द्वारा प्रतिवादी विजय सिंह को भेजा गया, दूसरा पत्र जिसकी सम्यक् अभिस्वीकृति (ए. डी. प्राप्ति) पर स्वयं विजय सिंह द्वारा तारीख 8 अक्तूबर,

1968 को हस्ताक्षर किया गया है, अभिलेख पर प्रदर्श 2 है । यह अभिस्वीकृति (ए. डी.) प्रदर्श 2 के रूप में अभिलेख पर है जिससे स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि वादी केसरी सिंह द्वारा शर्तों का अनुपालन की जाने वाली उसके द्वारा सम्यक् रूप से पालन किया गया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि पूरा मलबा उसके द्वारा हटाया नहीं गया है जैसाकि उक्त पत्र में कथित है कि इसे हटाया जाना था, यह नहीं कहा जा सकता कि तारीख 14 अप्रैल, 1968 का करार असफल हो गया या उक्त भाई केसरी सिंह का फायदा सुनिश्चित करता है । उस करार के अध्यधीन कुछ नहीं है अपितु तारीख 14 जनवरी, 1958 के पूर्ववर्ती विभाजन दस्तावेज का विस्तार है, अब प्रतिवादी विजय सिंह उसका विधिक प्रतिनिधित्व करता है, वर्तमान प्रतिवादी राजेन्द्र सिंह और अन्य वाद संपत्ति अर्थात् "गोविन्द विलास" और "मुकुट महल" को सौंपने के लिए आबद्ध है जो उन्होंने अपने बड़े भाई केसरी सिंह और उसके कुटुंब सदस्यों से आधिपत्य में ली है । वर्तमान वादियों अर्थात् श्री चन्द्रवीर सिंह और श्रीमती चांद कुमारी उक्त संसूचना के अनुसार, जिसे विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए/2 के रूप प्रदर्शित किया था, यह प्रतीत होता है कि उक्त करार को करते समय पक्षकारों के बीच अच्छे संबंध नहीं थे तो क्यों उक्त पत्र (प्रदर्श ए/2) को बने सिंह, आर. ए. एस. को भेजा गया, जिसकी पी. डब्ल्यू. 1 चन्द्रवीर सिंह के अलावा पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष परीक्षा भी की गई थी । उक्त पत्र की अन्तर्वस्तु इस प्रकार है :–

> "श्रीमान कुं. साहब श्री बने सिंह जी की सेवा में, जय श्री मोजी बाबा की अर्ज होवे अत्र कुशलं तत्रास्तु आपको सूचनार्थ निवेदन है कि कंवरपदा के महल, जिनको उतारने का जिम्मा आप द्वारा किए गए बाहमी फैसले में मेरे ऊपर रखा गया था । वह महल मकान खंडहर जो भी कहे आश्विन शुक्ला 15, 2015 के दस दिन पूर्व अर्थात् आश्विन शुक्ला 4 गुरुवार को नीवों तक गिरा दिया गया है, मलबा उठाया जा रहा है प्रमाणपत्र के लिए 5 आदमियों द्वारा प्रमाणित कर पत्र नजर कर रहा हूं । भाई विजय सिंह जी के व उनके दोनों लड़के राजेन्द्र सिंह, महेन्द्र सिंह मेरे द्वारा उतारे गए मकान की न रसीद देने वाले हैं और न उसे समय पर उतरा हुआ ही स्वीकार करेंगे अतः आप ही मेरे सबसे बड़े प्रमाण हैं । आप उनको और भाई को सूचना बक्षा देरावें, मेरे पत्र की पहुंच व भाई को जो आप सूचना भिजवाओ उसकी सूचना भी मुझे बक्षावें, कृपा रहे पत्रोत्तर बक्षावे,

शुभम् 2025 का आश्विन शुक्ला 6 तारीख 29 सितम्बर, 1968 ई. ।

आपका कृपाभिलाषी

राव सवाई केसरी सिंह बिजौलियां

हम तस्दीक करते हैं कि कंवरपदा का महल नामी खंडहर नीवो तनु गिर चुका है जिसको हमने आसोज सूद 4 गुरुवार को मौका के ऊपर देखा है ।

हीरालाल नईवाल — ह. उदयलाल

ह. मोहनलाल — ह. भंवरलाल''

15. उपर्युक्त से यह स्पष्ट होता है कि तारीख 14 अप्रैल, 1968 के विभाजन ज्ञापन के साथ पठित तारीख 14 जनवरी, 1958 का पश्चात्वर्ती करार कुछ नहीं है अपितु मात्र पुराने विभाजन ज्ञापन का विस्तार है, वादी, वाद संपत्ति का कब्जा पाने के स्पष्ट रूप से हकदार थे तथा प्रतिवादी विजय सिंह और उसके विधिक प्रतिनिधि जो उसके मात्र अनुज्ञेय कब्जे में थे, वाद संपत्ति को खाली करने और वाद फाइल करने के समय पर उसे वादियों को सौंपने के लिए आबद्ध थे । दस्तावेजों की ग्राह्यता विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा सही तौर पर वादियों के पक्ष में किया गया है, विभाजन के ज्ञापन को मुद्रांकित या रजिस्ट्रीकृत किया जाना अपेक्षित नहीं है, इसलिए निचले न्यायालयों ने संवत् वर्ष 2028 (1971) से उसकी संगणना करते हुए, उसे बारह वर्ष की अवधि के भीतर वाद फाइल होना सही ही अभिनिर्धारित किया है जब प्रतिवादी कब्जा सौंपने के लिए आबद्ध थे । अपीलार्थी-प्रतिवादियों की यह दलील तारीख 14 अप्रैल, 1968 के करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के वाद के रूप में इसे परिसीमा अवधि मात्र वर्षों की होनी चाहिए, भ्रांतिपूर्ण है क्योंकि दोनों भाइयों की ओर से कतिपय कार्यों को पूरा करने के लिए 1968 को करार किया गया, 1958 के विभाजन ज्ञापन के ठीक पश्चात् एक अन्य है और वह किसी पृथक् प्रतिफल के लिए कोई स्वतंत्र करार नहीं है जिसका वादियों द्वारा विनिर्दिष्ट अनुपालन की ईप्सा की गई है ।

16. माननीय उच्चतम न्यायालय ने अनुज्ञेय कब्जे वाले मामले में **मरगार्डिया सेकूरिया फर्नाडीज और अन्य** बनाम **इरासमो जैक डे सेकूरिया**[1] के मामले में न सौंपे जाने में भी यह अभिनिर्धारित किया है कि संपत्ति के

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 370.

शीर्षक के आधार पर कब्जा अनुज्ञेय या उल्टे कब्जे के आधार पर दावे विरुद्ध दावा सदैव बेहतर होता है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने बहुत ही उल्लेख और अनुसंधान निर्णय में संपत्ति विधि, सुखाचार अधिनियम, 1882, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के अधीन कब्जे के चार प्रकारों को उल्लिखित करते हुए जाने माने मामले और गोवा के सम्मानित ईसाई परिवार के साथ निपटाया है जहां अनुज्ञेय और वाद परिसर के कब्जे की निःशुल्क लागत केयरटेकर के रूप में बहनों द्वारा अपने भाइयों को दिया जाना था, जबकि बहन अपने पति के साथ नौसेना में अपनी सेवा के संबंध में गोवा से बाहर थे और जबकि भाई के 20 वर्ष लम्बे समय के विवादित शीर्षक के साथ अपने स्वयं के घर के अपने कब्जे से इनकार करना विधिविरुद्ध है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने 50,000/- रुपए की लागत के साथ बहन की अपील मंजूर करते हुए और आवासीय घर के लिए एक लाख रुपए प्रतिमास के मध्यवर्ती लाभ अभिनिर्धारित किया है जो पैरा 32 से 36 तक इस प्रकार है :–

"**न्यायिक प्रक्रिया में मार्गदर्शक स्टार के रूप में सत्यता**

32. इस दुर्भाग्यपूर्ण मुकदमे में, न्यायालय का गंभीर प्रयास जहां वास्तव में सत्यता का पता लगाने के लिए किया गया है ।

33. सत्यता संपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया में मार्गदर्शक स्टार के रूप में होनी चाहिए । अकेली सत्यता न्याय की नींव हो गई है । संपूर्ण न्यायिक प्रणाली को सच्ची सत्यता को पहचानने पता लगाने के लिए ही सृजित किया गया है । सभी स्तरों पर न्यायाधीशों को सत्यता खोज करने की यात्रा में स्वयं को गंभीरता से लगाना है । यह उनके आदेश, बाध्यता और भारी कर्त्तव्य हैं । न्यायिक प्रणाली केवल विश्वसनीयता करेगी जब व्यक्ति यह प्रत्ययित होगा कि न्याय सत्यता की नींव पर आधारित है ।

34. मोहनलाल शामजी सोनी **बनाम** भारत संघ (1991) (सप्ली.) 1 एस. सी. सी. 271 वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि ऐसी स्थिति में प्रश्न विचार के लिए उद्भूत हुआ है कि क्या किसी न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को दो पक्षकारों के बीच के विवाद में केवल मध्यस्थ के रूप में बैठना चाहिए और मुकाबले के अन्त में घोषणा करनी चाहिए कि कौन जीता है और कौन हारा है या सत्यता और प्रशासनिक न्याय निकालने की

कार्यवाही में सक्रिय भूमिका अदा करते हुए पक्षकारों की स्वतंत्रता अपने स्वयं के किसी विधिक कर्तव्य नहीं है ? यह एक अच्छा स्वीकार्य और सुव्यस्थित सिद्धांत है कि न्यायालय को अपने कानूनी कृत्यों को निर्वहन करना चाहिए – क्या न्याय देने में विधि के अनुसार विवेकाधीन या आवश्यक है क्योंकि यह न्यायालय का कर्तव्य है केवल न्याय करना ही नहीं बल्कि यह भी सुनिश्चित करना है कि न्याय किया जा रहा है ।

35. मनुष्य की अपेक्षा यह है कि न्यायालय को सत्य असत्य तथ्य में निष्कर्ष निकालने के लिए अपने दायित्व का निर्वहन करना चाहिए । न्यायिक प्रणाली के प्रारंभ से ही इसे स्वीकार किया गया है कि सत्य की खोज, दोष-निवारण और स्थापना न्याय न्यायालयों के विद्यमान रेखांकित मुख्य प्रयोजन हैं ।

36. इस न्यायालय ने रितेश तिवारी और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2010) 10 एस. सी. सी. 677 वाले मामले में उद्धृत उद्धरण को पुरःस्थापित किया है जो इस प्रकार है :–

> " ..... प्रत्येक विचारण खोज की यात्रा है जिसमें सत्य की तलाश होती है ।
>
> .....सत्य की तलाश निरन्तर ....., इस मामले में भी ।"

17. झूठे दावों और सुरक्षा की निंदा करते हुए, जिसका भू-संपत्ति वाद के साथ, भू-संपत्ति की कीमत तीव्र गति से बढ़ने के कारण मुख्य रूप से सच्ची गंभीर समस्याओं पर विचार किया है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय में पैरा 81 और 82 में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "झूठे दावों और सुरक्षा की निंदा करते हुए, जिसका भू-संपत्ति वाद के साथ, भू-संपत्ति के दामों में तीव्र गति से बढ़ने के कारण मुख्य रूप से सच्ची गंभीर समस्याओं पर विचार किया है । मूल्यवान रियल एस्टेट संपत्तियों के संबंध में वाद को इस उम्मीद से बेईमान वादियों द्वारा लाया गया है कि अन्य पक्षकार थक चुके होंगे और अंततः एक बड़ी धनराशि का भुगतान करके उनके साथ समझौता हो जाएगा । इस कारण से न्यायालयों में मामलों के अधिनिर्णय में भारी विलंब होता है । उच्चतम न्यायालय ने **रामारामेश्वरी देवी** (2011) 8 एस. सी. सी. 249 वाले मामले में उपर्युक्त मत व्यक्त किया है कि

जब तब कि दोषकर्ता को तुच्छ मुकदमे से लाभ लेने से इनकार नहीं किया जाता है तब तक इसे रोक पाना मुश्किल होगा । अनावश्यक अंकुश लगाने और तुच्छ मुकदमे के उद्देश्य से, न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए है कि अनावश्यक मुकदमे के लिए कोई प्रोत्साहन या प्रेरणा नहीं दी जाती है । यह समस्या का हल किया जा सकता है या कम से कम इसे कम किया जा सकता है यदि अनुकरणीय लागत तुच्छ मुकदमेबाजी को गठित करने पर लगाई जाती है । समुचित मामले में वास्तविक, यथार्थवादी या उचित लागत का अधिरोपण और/या मुकदमे में आदेश वादियों द्वारा झूठे अभिवाक् और गढ़े दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में एक लंबा रास्ता तय करना होगा । भारी लागत के अधिरोपण भी पक्षकारों द्वारा अनावश्यक स्थगनों को नियंत्रण करेगा । समुचित मामले में, न्यायालयों को अभियोजन आदेश करते हुए विचार करना चाहिए अन्यथा यह न्यायिक कार्यवाहियों की शुद्धता और पवित्रता बनाए रखने के लिए संभव नहीं हो सकता है ।'

18. और फिर अंत में, यथा पूर्वोक्त बहन की अपील को मंजूर करते हुए और पैरा 97 से 101 में विधि के सिद्धांतों को अधिकथित करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है जो इस प्रकार है :–

"97. विधि के सिद्धांत जो इस मामले में उभारने का पारदर्शक है जो इस प्रकार है –

1. किसी भी संपत्ति का शीर्षक उपार्जित नहीं होता है यदि वह या उसने परिसर में अनावश्यक रहने की अनुमति दी थी । यहां तक कि वर्षों या दशकों लंबे कब्जे से ऐसे व्यक्ति को उक्त संपत्ति में कोई अधिकार या हित प्राप्त नहीं होता है ।

2. केयरटेकर, चौकीदार या सेवक अपने लंबे समय से कब्जे पर ध्यान दिए बिना संपत्ति में कभी हित प्राप्त नहीं कर सकता है । केयरटेकर या सेवक की मांग पर तुरन्त कब्जा दे दिया गया है ।

3. न्यायालय किसी केयरटेकर, सेवक या किसी व्यक्ति के कब्जा का बचाव करने में न्यायसंगत नहीं है जिसने किसी

मित्र, संबंधी, केयरटेकर या सेवक के रूप मे कुछ समय के लिए परिसर में रहने के लिए अनुमति थी ।

4. न्यायालय का संरक्षण व्यक्ति के लिए मंजूर या बढ़ाया जा सकता है जिसे उसके पक्ष में विधिमान्य किराया करार, पट्टा करार या लाइसेंस करार निर्वाह करने के लिए किया है ।

5. केयरटेकर या एजेंट स्वामी की मार्फत से ही स्वामी की संपत्ति पर धारित रहता है । उसे लंबे समय तक रहने या कब्जा के सिवाय उस संपत्ति में अपना किसी भी प्रकार का अधिकार या हित अर्जित नहीं होता है ।

98. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय विचारण न्यायालय के रूप में भी अपास्त किए जाने योग्य और तद्नुसार हम ऐसा करें । परिणामस्वरूप यह न्यायालय निदेश देता है कि वाद परिसर का कब्जा अपीलार्थी को सौंपा जाए जो स्वीकृततः वाद संपत्ति का स्वामी है ।

99. इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों को वाद परिसर को खाली करने के लिए तीन मास का समय दिया जाता है । उन्होंने यह भी निदेश दिया है कि तीन मास की अवधि समाप्त होने के बाद वाद संपत्ति को खाली करके और शांतिपूर्वक कब्जा अपीलार्थी को सौंपा जाए । इस आशय से दो सप्ताह के भीतर इस न्यायालय में प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा फाइल किया जाए ।

100. प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों को तीन मास की अवधि के लिए परिसर के उपयोग और अधिग्रहण के लिए प्रतिमास 1,00,000/- रुपए (एक लाख रुपए) संदाय करने का निदेश भी दिया है । उपयोग और अधिग्रहण के लिए उक्त राशि अपीलार्थियों को प्रत्येक मास की 10 तारीख से पहले दी जाए । यदि प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधि इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के रूप में उपयोग और अधिग्रहण के लिए धनराशि संदाय करने में असमर्थ हैं तो वे इस निर्णय की तारीख से दो सप्ताह के भीतर परिसर के कब्जे को सौंप दें । तत्पश्चात्, यदि प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधि वाद संपत्ति का कब्जा शांतिपूर्वक नहीं सौंपते हैं तो उस स्थिति में, अपीलार्थी को पुलिस सहायता लेकर परिसर के कब्जा लेने की स्वतंत्रता होगी ।

101. परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की अपील मंजूर की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रत्यर्थियों को चार सप्ताह के भीतर अपीलार्थी को 50,000/- रुपए की लागत संदाय करने का निदेश दिया जाता है (हमने तथ्य को ध्यान में रखते हुए संतुलित लागत अधिरोपित की है कि मुख्य प्रत्यर्थी की मृत्यु हो गई है) । तद्नुसार आदेश दिया गया है ।"

19. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रतिवादियों-राजेन्द्र सिंह और अन्य की वर्तमान द्वितीय अपील में इस न्यायालय द्वारा विचार किए जाने के लिए विधि के कोई सारवान् प्रश्न उद्भूत नहीं होते है, इसलिए, प्रतिवादियों द्वारा फाइल द्वितीय अपील, गुणागुण रहित है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

20. तद्नुसार और उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपीलार्थी-प्रतिवादी-राजेन्द्र सिंह और अन्य द्वारा फाइल की गई वर्तमान द्वितीय अपील खारिज की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की एक प्रति दोनों निचले न्यायालयों और संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

21. प्रतिवादी-अपीलार्थी ''गोविन्द विलास'' और ''मुकुट-महल'' के रूप में नामित वाद में वर्णित वाद संपत्ति का कब्जा वादियों को सौप देंगे और ''कंवरपदा का महल'' नाम की संपत्ति को अपने कब्जे में लेंगे जो केसरी सिंह द्वारा ध्वस्त की गई थी यदि पूर्व में आज से तीन मास की अवधि के भीतर नहीं ली गई है । प्रतिवादी वाद संपत्ति के कब्जे के भाग पर या उसमें किसी तृतीय पक्षकार का हित सृजन नहीं करेंगे । यदि वे ऐसा करते हैं तो उसे शून्य माना जाएगा और कोई ऐसा तृतीय पक्षकार भी डिक्री से बाध्य होगा । यदि डिक्री का तीन मास के भीतर पालन नहीं किया जाता है तो सामान्य प्रक्रिया में डिक्री का निष्पादन शीघ्र किया जाएगा । प्रत्यर्थी-वादी इस न्यायालय की अवमानना अधिकारिता का आह्वान करने के भी हकदार होंगे ।

द्वितीय अपील खारिज की गई ।

मही./क.

मंजू ठाकुर

बनाम

राज कुमार

तारीख 31 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 12(1)(क), 13(1)(iक) और (iख) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा जानबूझकर संभोग करने से निरन्तर इनकार करना – पत्नी का नपुंसक होना साबित नहीं होना – क्रूरता – विवाह के पश्चात् यदि पत्नी द्वारा बिना किसी युक्तियुक्त कारण से पति के प्रयास के बावजूद जानबूझकर संभोग करने से निरन्तर इनकार किया जाता है और विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है तो यह क्रूरता की कोटि में आएगा और इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करना युक्तिसंगत और विधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12(1)(क), 13(1)(iक) और (iख) के अधीन एक अर्जी फाइल की थी । यह प्रकथन किया गया कि इसमें के प्रत्यर्थी ने कुछ समय पहले अपने पिता को खो दिया था जो एच. आर. टी. सी. कार्य कर रहे थे । उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी ने एच. आर. टी. सी. में अनुकम्पा के आधार पर नियोजन की ईप्सा की । प्रत्यर्थी सातवीं कक्षा तक पढ़ा था और उसे एच. आर. टी. सी. द्वारा हेल्पर/पेन्टर के रूप में नियोजित किया गया था । श्री कामेश्वर ठाकुर, अपीलार्थी की बहन का पति था जो भी एच. आर. टी. सी. में कारपेन्टर के रूप में कार्य कर रहा है । प्रत्यर्थी सूद समुदाय से है जबकि अपीलार्थी राजपूत जाति की है । प्रत्यर्थी की माता बूढ़ी, अशिक्षित और ग्रामीण महिला है । श्री कामेश्वर ठाकुर ने अपीलार्थी से विवाह करने के लिए प्रत्यर्थी और उसकी माता से अनुरोध किया और उसके अनुरोध पर प्रत्यर्थी और उसकी माता ने विवाह के लिए सहमति दे दी । तारीख 29 जून, 2002 को हिन्दू रीति-रिवाजों के साथ अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच बुटैल धर्मशाला, शिमला में विवाह सम्पन्न हुआ । विवाह के पश्चात् अपीलार्थी प्रत्यर्थी के गृह में रहने के लिए उसके साथ आ गई और लगभग एक माह तक रही । इस अवधि के दौरान अपीलार्थी ने उसे अपने

पास आने नहीं दिया । अपीलार्थी वैवाहिक संभोग के लिए सहमत नहीं हुई । कुछ समय के पश्चात्, अपीलार्थी अपने माता-पिता के गृह चली गई और लगभग 45 दिनों तक अपने माता-पिता के पास रही और इसके पश्चात् वह अपने वैवाहिक गृह वापस लौट आई । अपने माता-पिता के गृह से वापस आने के पश्चात् भी अपीलार्थी वैवाहिक संभोग के लिए सहमत नहीं हुई और उसने अपने शरीर को छूने के लिए भी प्रत्यर्थी को अनुमति नहीं दी । अपीलार्थी ने पृथक् आवास के लिए जोर दिया । चूंकि अपीलार्थी के आचरण के कारण विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था, इसलिए, प्रत्यर्थी अत्यधिक मानसिक और शारीरिक पीड़ा और आघात से गुजर रहा था । प्रत्यर्थी अवसाद में चला गया था और इस बात को उसकी माता ने महसूस किया । अपीलार्थी की सास ने उसके अप्रायिक आचरण को महसूस किया और उसने उसका मासिक धर्म भी महसूस नहीं किया और जब उसने अपीलार्थी से चिकित्सीय परीक्षण के लिए जाने के बारे में पूछा तो अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसकी माता से झगड़ा करना आरम्भ कर दिया । प्रत्यर्थी की माता, घनहटी ने एक पुराने गृह की कब्जे सहित स्वामी थी और अपीलार्थी के माता-पिता उसी क्षेत्र के पास के रहने वाले थे । अपने विवाह की परेशानियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी ने घनहटी के अपने गृह में अपीलार्थी को अपने माता-पिता को लाने का निर्देश दिया और घनहटी में भी अपीलार्थी ने अपने साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए प्रत्यर्थी को अनुमति नहीं दी । प्रत्यर्थी के अनुसार, अपीलार्थी ने उसके घर पर अपने माता-पिता, भाइयों, बहनों और भतीजों को बुलाना आरम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी पृथक् कमरे में सोने को बाध्य हुआ । अपीलार्थी मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित थी और वह तथा उसके कुटुम्ब सदस्यों ने ऐसी अशक्तता को विवाह के पूर्व प्रकट नहीं किया था । अपीलार्थी उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करती थी । प्रत्यर्थी का उसके साथ विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था यद्यपि, कई बार इस प्रयोजन के लिए अपीलार्थी के साथ कोशिश की । प्रत्यर्थी, अपीलार्थी के कारण मानसिक कष्ट के साथ ही शारीरिक क्रूरता से ग्रसित होने लगा था । यह भी प्रकथन किया गया कि अपीलार्थी तारीख 12 सितम्बर, 2003 को संदेहपूर्ण स्थितियों में अपने जीजा श्री कमलेश्वर ठाकुर के साथ पाई गई थी । यह ऐसे घटित हुआ था कि प्रत्यर्थी तारीख 12 सितम्बर, 2003 को अपनी ड्यूटी समाप्त करने के पश्चात् उसके घर पहुंचा और उसका परिसर अन्दर से बन्द पाया । जब प्रत्यर्थी ने दरवाजा खटखटया तो

अपीलार्थी ने दरवाजा खोला और प्रत्यर्थी ने परिसर में श्री कमलेश्वर ठाकुर को पाया । श्री कमलेश्वर ठाकुर ने प्रत्यर्थी को उपहति कारित की और उसे सादे कागजों पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया ताकि उसकी अचल सम्पत्ति को अपीलार्थी के पक्ष में अन्तरित करा सके । प्रत्यर्थी को दोषपूर्ण तरीके से निरुद्ध किया गया और तारीख 13 सितम्बर, 2003 को छोड़ा गया । अपीलार्थी ने तारीख 13 सितम्बर, 2003 को अपने पति का गृह छोड़ दिया और वह तब तक वापस नहीं आई जब तक कि ऐसा करने के लिए उससे निवेदन नहीं किया गया । अपीलार्थी ने अपनी गलतियों को छिपाने के लिए प्रत्यर्थी के विरुद्ध मिथ्या और तुच्छ शिकायतें भी दर्ज कराईं । पक्षकारों का विवाह असुधार्य रूप से विखंडित हो गया था । प्रत्यर्थी के अनुसार, वह क्रूरता और अभित्यजन के आधारों पर विवाह का विखंडन कराने का हकदार है । अपीलार्थी, जो नीचे प्रत्यर्थी है, ने आरम्भिक आक्षेप, वाद कायम रखने के आधार पर अर्जी का विरोध किया । गुणागुणों पर पैराओं का उत्तर देते हुए, अपीलार्थी ने तारीख 29 जून, 2002 को शिमला में प्रत्यर्थी के साथ अपना विवाह होना स्वीकार किया है । विवाह के पश्चात्, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के गृह में उसके साथ रही थी और पक्षकारों के बीच पूर्णता प्राप्त हुई थी । अपीलार्थी ने अपनी मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से इनकार किया है । अपने पति के साथ 1-1/2 माह रहने के पश्चात् अपीलार्थी अपने माता-पिता के पास चली गई थी । वह वहां कुछ समय रहने के पश्चात् अपने वैवाहिक गृह वापस लौट आई थी । प्रत्यर्थी शराब के नशे में अपीलार्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता था । अपीलार्थी उसके इस क्रूरता को इस उम्मीद के साथ बरदाश्त करती थी कि उसके पति के आचरण में सुधार आ जाएगा । प्रत्यर्थी और उसकी माता उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थी । अपीलार्थी ने तारीख 12 सितम्बर, 2003 को घनहटी में अपने जीजा श्री कमलेश्वर ठाकुर के साथ संदेहपूर्ण स्थिति में पाए जाने से इनकार किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी का अभित्यजन कर दिया था और उसे अपने माता-पिता के पास जाने के लिए बाध्य कर दिया था । अपीलार्थी ने प्राधिकारियों के समक्ष प्रत्यर्थी और उसकी बहन के विरुद्ध शिकायत करने के लिए बाध्य कर दिया था । प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन भरणपोषण का संदाय करने की अवहेलना और इनकार कर दिया था । अपीलार्थी ने इस बात से इनकार किया कि उसने किसी भी प्रक्रम पर प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया । प्रत्यर्थी ने तात्विक तथ्यों को छिपाया है और वह

अपीलार्थी की नपुंसकता के आधार पर उसके विवाह को अकृत कराने का हकदार नहीं है । साक्ष्य अभिलिखित करने और उसका मूल्यांकन करने के पश्चात्, विद्वान् निचले न्यायालय ने अर्जी मंजूर कर ली थी और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 12(1)(क) के अधीन अपीलार्थी की नपुंसकता के आधार पर विवाह अकृत कर दिया था और यह घोषित किया था कि इसमें के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है और उसे अर्जी संस्थित करने के दो वर्ष पूर्व से भी अधिक समय से अभित्यक्त कर दिया था । इसलिए, अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) और (ikh) के अधीन विवाह विघटित कर दिया था । विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी ने वर्तमान अपील फाइल की, इस आधार पर कि विद्वान् निचले न्यायालय ने विधि के उपबंधों के साथ ही मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन नहीं किया है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रथम और महत्वपूर्ण प्रश्न, जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है, वह यह है कि क्या अपीलार्थी नपुंसक थी या नपुंसकता से ग्रसित थी । शब्द "नपुंसकता" को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में परिभाषित किया गया है, किन्तु, यह विवाह से इनकार करने का एक आधार है यदि यह सिद्ध कर दिया जाता है कि विवाह के समय पर पति या पत्नी दोनों में से कोई व्यवहार्य पूर्ण लैंगिक संभोग करने में शारीरिक रूप से अक्षम हैं या अन्य कुछ कारणों से अक्षम हैं । नपुंसकता साबित करने का भार उस विरोधी पक्षकार पर होता है जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12(1)(क) के अधीन परिगणित रूप में नपुंसकता के आधार पर विवाह की अकृतता की डिक्री पाने के लिए ऐसे आरोप लगाते हैं । प्रत्यर्थी को यह सिद्ध करना अपेक्षित था कि अपीलार्थी विवाह के समय पर नपुंसक थी और वह तब तक नपुंसक रही जब तक कि कार्यवाहियां संस्थित कर दी गई थीं । तथापि, यह नोटिस किया जाना चाहिए कि जब नपुंसकता, अकृतता के रूप में पक्षकारों के बीच विवाह घोषित करने के आधार के रूप में अभिकथित किया जाता है तो ऐसे अभिकथन करने वाले व्यक्ति द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने होते हैं, विशिष्टतया, विशेषज्ञ चिकित्सीय परिसाक्ष्य के प्ररूप में । नपुंसकता को साधारणतया अक्षमता चाहे शारीरिक या मानसिक हो, के अर्थ में समझा जाता है जिसमें न तो मैथुन न ही प्रजनन की क्षमता होती है । तथापि, मैथुन की क्षमता और प्रजनन की क्षमता, दो

भिन्न क्षमताएं हैं और इनके परिणामस्वरूप अक्षमताएं भी भिन्न हैं । इसलिए, यह कहा जा सकता है कि नपुंसकता का अभिप्राय या तो पति या पत्नी की मैथुन करने की शारीरिक या मानसिक अक्षमता है जो स्थायी या असाध्य हो सकती है । नपुंसकता का एक अन्य पहलू भी है जो नपुंसकता से संबंधित है, जो यह वर्णित करता है कि एक व्यक्ति अपंगता से ग्रसित नहीं है, जो भी हो, वह हमेशा ही विशिष्ट यौन साझेदार के साथ निःसहाय या असमर्थता महसूस करता है । इसलिए, नपुंसकता के मामले पर विचार करते समय मानदंड न केवल शारीरिक अक्षमता, जो न्यायालय के लिए मार्गदर्शक होता है, विचार किया जाना चाहिए, अपितु, एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिसकी भी अवहेलना नहीं की जा सकती है, वह यह है कि विभिन्न अन्य परिस्थितियों के दौरान विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था, जिससे ऐसी स्थिति बनती है जिसके द्वारा दोनों पति या पत्नी की शारीरिक और मानसिक क्षमता सामान्य दर्शित नहीं होती है जो संतुष्टिकारक लैंगिक संबंध बनाने के लिए असम्भाव्य हो जाता है । प्रत्यर्थी ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित है क्योंकि उसने विवाह पूर्णता का प्रयास किया था किन्तु, इसमें कोई सफलता नहीं मिली । दूसरी ओर, अपीलार्थी ने नपुंसकता के आरोपों का खंडन किया है । तारीख 19 नवम्बर, 2007 को इसमें के प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 151 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा उसने अपीलार्थी की चिकित्सीय परीक्षा कराने का निवेदन किया, इस आधार पर कि यह सिद्ध हो गया है कि वह नपुंसक है और उसके साथ विवाह की पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकी है । अपीलार्थी ने अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने का विरोध किया और यह कथन किया कि वह किसी मानसिक या शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित नहीं है और पक्षकारों के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त हो गया है । तथापि, आवेदन मंजूर कर लिया गया था और अपीलार्थी को चिकित्सा बोर्ड द्वारा परीक्षा कराने का आदेश दिया गया । यहां तक कि प्रत्यर्थी को भी चिकित्सीय परीक्षा कराने का निर्देश दिया गया । चिकित्सा अधिकारी ने प्रत्यर्थी को सहवास करने के योग्य पाया और यह निष्कर्ष निकाला कि वह वैवाहिक सहवास को करने के लिए किसी मानसिक या शारीरिक निर्योग्यता से ग्रसित नहीं है । अपीलार्थी तारीख 16 जनवरी, 2008 को चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित हुई । उसी दिन उसने यह दावा किया कि वह रजोधर्म के दौर से गुजर रही है इसलिए उसे तारीख 22 जनवरी, 2008 को अपराह्न 2.00 बजे

चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया । अपीलार्थी तारीख 22 जनवरी, 2008 को भी चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित नहीं हुई और उसके बाद उसे तारीख 23 जनवरी, 2008 को डा. रीता मित्तल के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया । अपनी प्रतिपरीक्षा में, डा. रीता मित्तल ने यह स्पष्टीकृत किया कि नपुंसकता दो प्रकार की होती है (i) शारीरिक (ii) मनोवैज्ञानिक और यह दावा किया कि मनोवैज्ञानिक नपुंसकता को मात्र शारीरिक परीक्षा द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसका इतिहास प्राप्त करने के पश्चात् मरीज का विस्तार से अध्ययन किया जाना अपेक्षित होता है । यह भी दावा किया कि योन्युद्वेष्टन का अभिप्राय अचानक अनैच्छिक योनि मांसपेशियों में सिकुड़न होना । तथापि, उसने यह कथन किया कि अपीलार्थी की शारीरिक परीक्षा करते समय उसमें ऐसे गुण नहीं पाए गए किन्तु, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ऐसी दशा वास्तविक संभोग करने के समय संभाव्य हो सकती है । यह भी स्पष्टीकृत किया कि यदि योन्युद्वेष्टन संभोग क्रिया के दौरान उद्भूत होता है तो यह स्त्री के लिए नितान्त पीड़ायुक्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह लैंगिक संभोग करने से बचना चाहती है । उसने यह स्वीकार किया कि लैंगिक संभोग के अलावा भी कई अन्य ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें योनिच्छद भंग हो सकता है । साक्षी ने यह स्वीकार किया कि वह निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकती है कि अपीलार्थी के मामले में योनिच्छद का भंग पीड़ायुक्त संभोग से या अन्यथा हुआ है । चिकित्साधिकारी के कथन से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी संभाव्य विकृति से ग्रसित है, क्योंकि उसकी योनि का आरम्भ ही अत्यधिक छोटा है जिससे स्वस्थ और पूर्ण लैंगिक संभोग संभव नहीं था और यह कि इसका यह भी कारण हो सकता है कि जिस वजह से वह विवाह की पूर्णता होने से बचती थी । दूसरी ओर, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, प्रत्यर्थी सहवास के लिए चिकित्सीय रूप से योग्य पाया गया है । अभिलेख पर यह भी आया है कि अपीलार्थी को शिमला में और उसके बाद गुवाहाटी में, विवाह की पूर्णता के लिए पर्याप्त समय दिया गया था किन्तु किसी न किसी बहाने से या अन्यथा, अपीलार्थी विवाह की पूर्णता से बचती हुई प्रतीत होती है । (पैरा 19, 20, 21, 27, 28, 29, 30, 31, 32, 33, 34 और 35)

अपीलार्थी द्वारा फाइल उत्तर से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि विवाह, कम-से-कम तारीख 5 दिसम्बर, 2007 को उत्तर फाइल करने की तारीख

तक पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ था अथवा अन्यथा अपीलार्थी भी इस प्रकार के प्रकथन नहीं करती और प्रत्यर्थी की चिकित्सीय परीक्षा कराने के लिए नहीं कहती । इसलिए, इस पृष्ठभूमि में प्रत्यर्थी यह दलील देने में सही है कि अपीलार्थी शारीरिक तौर पर अपने पास आने नहीं दिया और विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है । अभिलेखों से यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी द्वारा लैंगिक संभोग करने के लिए प्रत्यर्थी के प्रयास का भी विरोध किया गया था जो पत्नी की नपुंसकता के कारण भी हो सकता है । पत्नी की ओर से इनकार करना नपुंसकता का निष्कर्ष निकालने को बल देता है जो कई कारणों से जैसे संभोग करने की अनिच्छा के परिणामस्वरूप विवाह की पूर्णता करने में घबराहट, उन्माद या अरुचिकर संभोग आदि हो सकता है । यह भी घटित हो सकता है कि पत्नी मात्र पति के साथ संभोग करने में ही नपुंसक हो सकती है और यह आवश्यक नहीं है कि उसके बाद यह सिद्ध किया जाए कि पत्नी जननिक या शारीरिक तौर पर नपुंसक है क्योंकि यह पर्याप्त होता है कि वह पति के साथ संभोग करने में नपुंसक है । तथापि, नपुंसकता के अभिवाक् को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो इसका कथन करता है किन्तु, उसके बाद जहां वर्तमान मामले का संबंध है, यह साक्ष्य है कि अपीलार्थी पति के साथ लम्बे समय से ऋजुतः लैंगिक संबंध स्थापित करने में उत्सुक नहीं थी । इसलिए, यह उपधारणा की जा सकती है कि विवाह की पूर्णता के लिए पति या पत्नी की इच्छा या अनिच्छा और आशय जिम्मेदार होता है । यह पत्नी की ओर से नपुंसकता के तथ्य को साबित करने का लम्बा तरीका होगा । वस्तुतः, विवाह की पूर्णता प्राप्त करने से इनकार करना भी लैंगिक संभोग करने में अक्षमता के निष्कर्ष को निकालता है । पति-पत्नी की ओर से शारीरिक उदासीनता भी, जैसा कि इस मामले में है, नपुंसकता का प्ररूप हो सकता है । स्वीकृततः, अपीलार्थी ने तारीख 13 सितम्बर, 2003 को प्रत्यर्थी का गृह छोड़ दिया था और इसलिए, तारीख 5 दिसम्बर, 2007 के उत्तर की अन्तर्वस्तुओं को ध्यान में रखते हुए, सुरक्षित तौर पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह अभी तक और काफी लम्बे समय तक प्रत्यर्थी के गृह में रही फिर भी विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है । जहां तक, अभित्यजन का संबंध है, अभिलेख पर यह आया है कि अपीलार्थी तारीख 13 सितम्बर, 2003 को प्रत्यर्थी का गृह छोड़ दिया था और इसके पश्चात्, वापस नहीं लौटी थी । तारीख 17 मई, 2008 को इस मामले को लोक अदालत के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था जहां पर अपीलार्थी ने यह विनिर्दिष्ट कथन किया था कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहने को तैयार नहीं है

और भरणपोषण के एवज में कुल 5,00,000/- रुपए का संदाय करने पर प्रत्यर्थी के साथ आपसी विवाह-विच्छेद करने को तैयार है । यह स्पष्टतः साबित करता है कि अपीलार्थी कभी भी प्रत्यर्थी के साथ रहना नहीं चाहती थी और बिना किसी युक्तियुक्त या विश्वसनीय कारण से दो वर्षों की अवधि से अधिक समय से उसे त्यक्त कर रखा है । उसके बाद, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री वाई. पी. सूद ने यह दलील दी कि क्रूरता के संबंध में, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष प्रतिकूल हैं और इसलिए, अपास्त किए जाने योग्य हैं । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है । इसे विवादित नहीं किया जा सकता है कि पति-पत्नी द्वारा जानबूझकर लैंगिक संबंध बनाने से इनकार करना क्रूरता की कोटि में आता है । (पैरा 37, 38, 39, 40 और 41)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	[2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511 : **समर घोष** बनाम **जया घोष** ;	42
[2006]	(2006) 3 एस. सी. सी. 778 : **विनीता सक्सेना** बनाम **पंकज पंडित** ;	10
[1997]	ए. आई. आर. 1997 मद्रास 242 : **जयराज एंटोनी** बनाम **मैरी सिनियाम्मल** ;	22
[1996]	1996 ए. आई. एच. सी. 1727 : **ए.** बनाम **बी.** ;	43
[1990]	ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 594 : **सनत कुमार अग्रवाल** बनाम **नन्दनी अग्रवाल** ;	46
[1989]	ए. आई. आर. 1989 मध्य प्रदेश 326 : **प्रेम प्रकाश** बनाम **श्रीमती सरला** ;	44
[1988]	(1988) 1 एस. सी. सी. 105 : **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्डी** ;	46
[1981]	ए. आई. आर. 1981 दिल्ली 53 : **शकुन्तला कुमारी** बनाम **ओम प्रकाश घई** ;	45

[1979] ए. आई. आर. 1979 दिल्ली 93 :
मंजूला और एस. देशमुख बनाम **सुरेश देशमुख** ; 24

[1979] 1979 एम. ए. एन. यू. आंध्र प्रदेश 0090 :
श्रीमती सुवर्णा बनाम **जी. एम. आचार्य** ; 25

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534 :
दास्ताने बनाम **दास्ताने** ; 11

[1973] ए. आई. आर. 1973 दिल्ली 200 :
श्रीमती रीता निझावन बनाम **श्री बालकिशन निझावन** ; 9

[1970] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 137 = (1969) 2 एस. सी. सी. 279 :
दिग्विजय सिंह बनाम **प्रताप कुमारी** । 23

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011-सी की एफ. ए. ओ. (एच. एम. ए.) सं. 368.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री वाई. पी. सूद, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अशोक के. सूद, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान – अपीलार्थी, पत्नी है और वह विद्वान् जिला न्यायाधीश, शिमला द्वारा 2007 की एच. एम. ए. सं. 4-एस./ 3 में तारीख 20 अगस्त, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित है जिसमें प्रत्यर्थी द्वारा फाइल विवाह-विच्छेद की अर्जी मंजूर कर ली गई थी और पक्षकारों के बीच विवाह अकृत घोषित करना भी मंजूर कर लिया गया था ।

2. इस अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक तथ्य उल्लिखित किए जा सकते हैं । प्रत्यर्थी ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12(1)(क), 13(1)(iक) और (iख) के अधीन एक अर्जी फाइल की थी । यह प्रकथन किया गया कि इसमें के प्रत्यर्थी ने कुछ समय पहले अपने पिता को खो दिया था जो एच. आर. टी. सी. कार्य कर रहे थे । उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् प्रत्यर्थी ने एच. आर. टी. सी. में अनुकम्पा के आधार पर नियोजन की ईप्सा की । प्रत्यर्थी सातवीं कक्षा तक पढ़ा था और उसे एच. आर. टी. सी. द्वारा हेल्पर/पेन्टर के रूप में नियोजित किया

गया था । श्री कामेश्वर ठाकुर, अपीलार्थी की बहन का पति था जो भी एच. आर. टी. सी. में कारपेन्टर के रूप में कार्य कर रहा है । प्रत्यर्थी सूद समुदाय से है जबकि अपीलार्थी राजपूत जाति की है । प्रत्यर्थी की माता बूढ़ी, अशिक्षित और ग्रामीण महिला है । श्री कामेश्वर ठाकुर ने अपीलार्थी से विवाह करने के लिए प्रत्यर्थी और उसकी माता से अनुरोध किया और उसके अनुरोध पर प्रत्यर्थी और उसकी माता ने विवाह के लिए सहमति दे दी । तारीख 29 जून, 2002 को हिन्दू रीति-रिवाजों के साथ अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच बुटैल धर्मशाला, शिमला में विवाह सम्पन्न हुआ । विवाह के पश्चात् अपीलार्थी प्रत्यर्थी के गृह में रहने के लिए उसके साथ आ गई और लगभग एक माह तक रही । इस अवधि के दौरान अपीलार्थी ने उसे अपने पास आने नहीं दिया । अपीलार्थी वैवाहिक संभोग के लिए सहमत नहीं हुई । कुछ समय के पश्चात्, अपीलार्थी अपने माता-पिता के गृह चली गई और लगभग 45 दिनों तक अपने माता-पिता के पास रही और इसके पश्चात् वह अपने वैवाहिक गृह वापस लौट आई । अपने माता-पिता के आने के पश्चात् भी अपीलार्थी वैवाहिक संभोग के लिए सहमत नहीं हुई और उसने अपने शरीर को छूने के लिए भी प्रत्यर्थी को अनुमति नहीं दी । अपीलार्थी ने पृथक् आवास के लिए जोर दिया । चूंकि अपीलार्थी के आचरण के कारण विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था, इसलिए, प्रत्यर्थी अत्यधिक मानसिक और शारीरिक पीड़ा और आघात से गुजर रहा था । प्रत्यर्थी अवसाद में चला गया था और इस बात को उसकी माता ने महसूस किया । अपीलार्थी की सास ने उसके अप्रायिक आचरण को महसूस किया और उसने उसका मासिक धर्म भी महसूस नहीं किया और जब उसने अपीलार्थी से चिकित्सीय परीक्षण के लिए जाने के बारे में पूछा तो अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी और उसकी माता से झगड़ा करना आरम्भ कर दिया । प्रत्यर्थी की माता, घनहटी ने एक पुराने गृह की कब्जे सहित स्वामी थी और अपीलार्थी के माता-पिता उसी क्षेत्र के पास के रहने वाले थे । अपने विवाह की परेशानियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी ने घनहटी के अपने गृह में अपीलार्थी को अपने माता-पिता को लाने का निर्देश दिया और घनहटी में भी अपीलार्थी ने अपने साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए प्रत्यर्थी को अनुमति नहीं दी ।

3. प्रत्यर्थी के अनुसार, अपीलार्थी ने उसके घर पर अपने माता-पिता, भाइयों, बहनों और भतीजों को बुलाना आरम्भ कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी पृथक् कमरे में सोने को बाध्य हुआ । अपीलार्थी

मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित थी और वह तथा उसके कुटुम्ब के सदस्यों ने ऐसी अशक्तता को विवाह के पूर्व प्रकट नहीं किया था । अपीलार्थी उसके साथ क्रूरता का व्यवहार करती थी । प्रत्यर्थी का उसके साथ विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था यद्यपि, कई बार इस प्रयोजन के लिए अपीलार्थी के साथ कोशिश की । प्रत्यर्थी, अपीलार्थी के कारण मानसिक कष्ट के साथ ही शारीरिक क्रूरता से ग्रसित होने लगा था । यह भी प्रकथन किया गया कि अपीलार्थी तारीख 12 सितम्बर, 2003 को संदेहपूर्ण स्थितियों में अपने जीजा श्री कमलेश्वर ठाकुर के साथ पाई गई थी । यह ऐसे घटित हुआ था कि प्रत्यर्थी तारीख 12 सितम्बर, 2003 को अपनी ड्यूटी समाप्त करने के पश्चात् उसके घर पहुंचा और उसका परिसर अन्दर से बन्द पाया । जब प्रत्यर्थी ने दरवाजा खटखटाया तो अपीलार्थी ने दरवाजा खोला और प्रत्यर्थी ने परिसर में श्री कमलेश्वर ठाकुर को पाया । श्री कमलेश्वर ठाकुर ने प्रत्यर्थी को उपहति कारित की और उसे सादे कागजों पर हस्ताक्षर करने को बाध्य किया ताकि उसकी अचल सम्पत्ति को अपीलार्थी के पक्ष में अन्तरित करा सके । प्रत्यर्थी को दोषपूर्ण तरीके से निरुद्ध किया गया और तारीख 13 सितम्बर, 2003 को छोड़ा गया । अपीलार्थी ने तारीख 13 सितम्बर, 2003 को अपने पति का गृह छोड़ दिया और वह तब तक वापस नहीं आई जब तक कि ऐसा करने के लिए उससे निवेदन नहीं किया गया । अपीलार्थी ने अपनी गलतियों को छिपाने के लिए प्रत्यर्थी के विरुद्ध मिथ्या और तुच्छ शिकायतें भी दर्ज कराईं । पक्षकारों का विवाह असुधार्य रूप से विखंडित हो गया था । प्रत्यर्थी के अनुसार, वह क्रूरता और अभित्यजन के आधारों पर विवाह का विखंडन कराने का हकदार है ।

4. अपीलार्थी, जो नीचे प्रत्यर्थी है, ने आरम्भिक आक्षेप, वाद कायम रखने के आधार पर अर्जी का विरोध किया । गुणागुणों पर पैराओं का उत्तर देते हुए, अपीलार्थी ने तारीख 29 जून, 2002 को शिमला में प्रत्यर्थी के साथ अपना विवाह होना स्वीकार किया है । विवाह के पश्चात्, अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के गृह में उसके साथ रही थी और पक्षकारों के बीच पूर्णता प्राप्त हुई थी । अपीलार्थी ने अपनी मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से इनकार किया है । अपने पति के साथ 1-1/2 माह रहने के पश्चात् अपीलार्थी अपने माता-पिता के पास चली गई थी । वह वहां कुछ समय रहने के पश्चात् अपने वैवाहिक गृह वापस लौट आई थी । प्रत्यर्थी शराब के नशे में अपीलार्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता था । अपीलार्थी उसके इस

क्रूरता को इस उम्मीद के साथ बरदाश्त करती थी कि उसके पति के आचरण में सुधार आ जाएगा । प्रत्यर्थी और उसकी माता उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती थी । अपीलार्थी ने तारीख 12 सितम्बर, 2003 को घनहटी में अपने जीजा श्री कमलेश्वर ठाकुर के साथ संदेहपूर्ण स्थिति में पाए जाने से इनकार किया । प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी का अभित्यजन कर दिया था और उसे अपने माता-पिता के पास जाने के लिए बाध्य कर दिया था । अपीलार्थी ने प्राधिकारियों के समक्ष प्रत्यर्थी और उसकी बहन के विरुद्ध शिकायत करने के लिए बाध्य कर दिया था । प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन भरणपोषण का संदाय करने की अवहेलना और इनकार कर दिया था । अपीलार्थी ने इस बात से इनकार किया कि उसने किसी भी प्रक्रम पर प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया । प्रत्यर्थी ने तात्विक तथ्यों को छिपाया है और वह अपीलार्थी की नपुंसकता के आधार पर उसके विवाह को अकृत कराने का हकदार नहीं है ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

(i) क्या अर्जीदार अधिनियम, 1955 की धारा 12 के अधीन घोषणा की डिक्री पाने का हकदार है, जैसी कि प्रार्थना की गई है ?

(ii) यदि विवाद्यक सं. (i) का उत्तर सकारात्मक नहीं होता है तो क्या यह अभिलेख पर साबित है कि प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण के अपने पति का अभित्यजन कर दिया है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(iii) यदि विवाद्यक सं. (i) का उत्तर सकारात्मक नहीं होता है तो क्या यह अभिलेख पर साबित है कि प्रत्यर्थी/पत्नी ने अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(iv) क्या अर्जी, वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(v) क्या अर्जीदार ने न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छिपाया है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(vi) अनुतोष ।

6. साक्ष्य अभिलिखित करने और उसका मूल्यांकन करने के पश्चात्,

विद्वान् निचले न्यायालय ने अर्जी मंजूर कर ली थी और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (संक्षेप में जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 12(1)(क) के अधीन अपीलार्थी की नपुंसकता के आधार पर विवाह अकृत कर दिया था और यह घोषित किया था कि इसमें के अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है और उसे अर्जी संस्थित करने के दो वर्ष पूर्व से भी अधिक समय से अभित्यक्त कर दिया था । इसलिए, अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(iक) और (iख) के अधीन विवाह विघटित कर दिया था ।

7. विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी ने वर्तमान अपील फाइल की, इस आधार पर कि विद्वान् निचले न्यायालय ने विधि के उपबंधों के साथ ही मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों का सही तौर पर मूल्यांकन नहीं किया है । श्री वाई. पी. सूद, अधिवक्ता ने यह दलील दी कि अपीलार्थी की नपुंसकता के बारे में निष्कर्ष, अभिलेख पर उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य के प्रतिकूल है । यह अभिकथन किया गया कि अभित्यजन के विवाद्यक पर, अभिलेख पर के साक्ष्यों और अभिवचनों को निर्दिष्ट किए बिना सरसरी तरीके से विचार किया गया है । यह भी दलील दी गई कि क्रूरता के अभिकथनों पर भी विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अत्यधिक असामान्य तरीके से विचार किया गया है । यह दावा किया गया कि विद्वान् निचला न्यायालय यह विचार करने में असफल रहा है कि इसमें के प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध मिथ्या आधारहीन अभिकथन अभिरोपित किए हैं, न केवल उसकी नपुंसकता के बारे में अपितु उसका अपने जीजा के साथ अवैध संबंध के बारे में भी, जो उसके चरित्र हनन की कोटि में आता है । अंततः, यह दावा किया गया कि विद्वान् निचला न्यायालय इसमें के प्रत्यर्थी की प्रेरणा पर अर्जी फाइल करने में असम्यक् विलम्ब पर विचार करने में असफल रहा और इसलिए, आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

8. दूसरी ओर, श्री अशोक के. सूद, अधिवक्ता ने यह दलील दी कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश विधि के अनुसरण में है और वस्तुतः, विद्वान् निचले न्यायालय ने अभिवचनों के साथ ही मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर इसके सही परिप्रेक्ष्य में चर्चा की है और उनका मूल्यांकन करने और विधि को लागू करने के पश्चात् सही निष्कर्ष अभिलिखित किए हैं जिसमें हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है ।

9. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल के विरोधी निवेदनों पर विचार

किया और मामले के अभिलेखों का भी परिशीलन किया । यह विवादित नहीं किया जा सकता है कि संभोग, विवाह के प्रयोजनों में से एक है । विवाह की संस्था उसकी पूर्णता में विश्वास करती हैं । सहवास एक परिणाम है । विवाह अनुष्ठापित होने के पश्चात् जब दोनों में से कोई भी पक्ष यह घोषित करता है कि विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है और सहवास नहीं किया गया है तो विवाह का आधार ही विखंडित हो जाता है । **श्रीमती रीता निझावन** बनाम **श्री बालकिशन निझावन**[1] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा सक्रिय लैंगिक जीवन की महत्ता के बारे में उल्लिखित किया है, जो इस प्रकार है :–

> "वर्तमान मामले में, विवाह वर्ष 1954 में हुआ था । वर्ष 1958 में गर्भावस्था के दौरान, जो अपीलार्थी के अनुसार वर्ष 1964 तक विवाह के दिनों से भागतः सही सुधार का परिणाम था, के अलावा कभी भी सामान्य लैंगिक जीवन नहीं रहा और प्रत्यर्थी लैंगिक संतुष्टि देने में असफल रहा । विवाह वस्तुतः दुःख और दिखावे में बदल गया था और अपीलार्थी दुःख और कुंठा से ग्रसित हो गई थी । इन दिनों में अकल्पनीय प्रास्थिति के बारे में यह सुझाव होता कि पत्नी लैंगिक जीवन में सक्रिय भागीदार नहीं थी और इसलिए पति की लैंगिक कमजोरी, जो पत्नी की सामान्य लैंगिक संतुष्टि देने से इनकार करता था, का कोई परिणाम नहीं होता और इसलिए यह क्रूरता की कोटि में नहीं आ सकता है । संभोग के बिना विवाह एक अभिशाप होता है । संभोग विवाह का आधार होता है और प्रबल तथा मैत्रीपूर्ण सक्रिय लैंगिक संभोग के बिना कोई भी विवाह लम्बे समय तक निरन्तर बने रहना संभव नहीं होता है । इस बात का इनकार नहीं किया जा सकता है कि विवाह में सक्रिय लैंगिक संभोग पत्नी के विवेक और शरीर पर अत्यधिक सकारात्मक प्रभाव डालते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि यदि उसे समुचित लैंगिक संतुष्टि नहीं हो पाती है तो वह निराशा और अवसाद में चली जाती है । यह कहा गया है कि लैंगिक संबंध जब खुशहाल और मैत्रीपूर्ण होते हैं तो इससे स्त्री का मस्तिष्क, उसके चरित्र और उसके जीने की शक्ति का अत्यधिक प्रबल विकास हो जाता है । यह मान्यताप्राप्त है कि विवाह के लिए लैंगिक संभोग की निराशा से अधिक कोई भी चीज अत्यधिक घातक नहीं हो सकती है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1973 दिल्ली 200.

अपीलार्थी एक प्यासी ही स्त्री है । इस जीवन के लिए उसकी निराशा और असंतुष्ट लैंगिक जीवन ही जिम्मेदार है जिससे अनिवार्य रूप से दोनों मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की क्षति कुछ नहीं है अपितु, क्रूरता है .....।"

10. **निझावन** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियां, **विनीता सक्सेना** बनाम **पंकज पंडित**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत की गई हैं ।

11. मेरे विवेक में यह उद्भूत हो रहा है कि सामान्य और स्वस्थ लैंगिक संबंध खुशहाल और मैत्रीपूर्ण वैवाहिक जीवन के आधारभूत अवयवों में से एक है । वैवाहिक जीवन में संभोग के महत्व को माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **दास्ताने** बनाम **दास्ताने**[2] वाले मामले में अत्यधिक जोर दिया गया है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि संभोग, वैवाहिक जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और इसे उन अन्य कारकों से पृथक् नहीं किया जा सकता है जो विवाह की सफलता और पूर्णता के लिए महत्वपूर्ण होते हैं ।

12. मामले के तथ्यों की पृष्ठभूमि में आने पर, यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने अपने दावे के समर्थन में 8 साक्षियों की परीक्षा की थी । अभि. सा. 1 राधिका, राज्य महिला आयोग की एक कर्मचारी थी और उसने अभिलेख पर प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी प्रस्तुत किया था । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए एक समन था जिसे प्रत्यर्थी की माता द्वारा दर्ज शिकायत पर जारी किया गया था जबकि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/बी एक शिकायत है और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी एक सूचना पत्र है ।

13. अभि. सा. 2 घनश्याम, विद्वान् अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, शिमला के न्यायालय से दांडिक अहलमद है जिसने साक्ष्य प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 2/ए प्रस्तुत की थी जो 2005 की वाद फाइल सं. 47-4 से श्रीमती शांति देवी (प्रत्यर्थी की माता) के कथन हैं । अभि. सा. 3 राजकुमार, प्रत्यर्थी का एक मित्र है और पक्षकारों के विवाह में सम्मिलित हुआ था और यह कथन किया है कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी अपने माता-पिता के साथ रहने लगी थी । तथापि, इसके पश्चात् उसने यह दावा

---

[1] (2006) 3 एस. सी. सी. 778.

[2] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534.

किया है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के बारे में यह शिकायत करना आरम्भ कर दिया था कि वह अपने शरीर को छूने नहीं देती है, ताकि विवाह पूर्णता को प्राप्त हो सके और जिसके कारण प्रत्यर्थी अत्यधिक मानसिक तनाव और पीड़ा में रहने लगा था ।

14. अभि. सा. 4 रेखा, पड़ोसी है, जिसकी घनहटी में प्रत्यर्थी के गृह के पास भूमि संपत्ति है और उसने यह दावा किया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी एक साथ नहीं रहते थे और निरन्तर एक-दूसरे से लड़ते रहते थे । कतिपय, घटनाओं के बारे में विनिर्दिष्ट निर्देश किए गए हैं जो तारीख 12 सितम्बर और 13 सितम्बर, 2003 को घटित हुए थे, जिस तारीख को यह दावा किया गया है कि अपीलार्थी के जीजा ने प्रत्यर्थी को पीटा था । प्रत्यर्थी ने अभि. सा. 4 से अपनी माता को भेजने का निवेदन किया और इसी बीच में, अपीलार्थी का जीजा भी गृह छोड़ गया ।

15. अभि. सा. 5 हरभजन सिंह, जो कृष्णा नगर, शिमला में प्रत्यर्थी का पड़ोसी होना कथित है, ने यह दावा किया है कि पक्षकारों के विवाह के पश्चात् उसने यह नोटिस किया कि अपीलार्थी अपने पति के साथ 1-1/2 माह रही थी और उसके पश्चात् अपीलार्थी प्रत्यर्थी के साथ नहीं रही । अभि. सा. 6 अमर सिंह भी कृष्णा नगर में प्रत्यर्थी का एक पड़ोसी है, जिसने यह दावा किया है कि उसने यह नोटिस किया कि प्रत्यर्थी अवसाद में रह रहा है और यह भी दावा किया कि प्रत्यर्थी कभी भी इस तथ्य के बारे में उससे शिकायत नहीं की और उसे यह भी बताया कि उनके बीच वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है । इसके पश्चात्, पक्षकार घनहटी में अपने गृह में रहने लगे थे और वहां भी पक्षकार सही तौर से नहीं रह रहे थे ।

16. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी, अभि. सा. 7 के रूप में उपस्थित हुआ और अपने दावे का समर्थन किया जिसे उसने सविस्तार शपथपत्र फाइल करते हुए याचिका में उद्भूत किया है । इसी प्रभाव का कथन प्रत्यर्थी की बहन ने भी किया है । श्रीमती कमलेशवर ठाकुर, जो अभि. सा. 8 के रूप में उपस्थित हुई । प्रत्यर्थी ने, अपनी माता के साथ स्थानीय ग्राम पंचायत द्वारा दर्ज शिकायत प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/सी को अभिलेख पर साबित किया है जिसे प्रत्यर्थी की माता श्रीमती शांति देवी ने राज्य महिला आयोग को निर्देश के लिए भेजा था जबकि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/ई, उप-जिलाधिकारी द्वारा पारित तारीख 17 जून, 2005 के आदेश की प्रति है । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 7/एफ, विद्वान् जे. एम. आई. सी. (1), शिमला द्वारा अभिलिखित

अपीलार्थी के कथन की प्रति है । प्रदर्श पी. एक्स.-1, पुलिस थाना, शिमला (पूर्व) में अपीलार्थी द्वारा संस्थित तारीख 6 जून, 2003 के शिकायत की प्रति है । प्रदर्श पी. एक्स.-2, पुलिस थाना, शिमला (पूर्व) में अपीलार्थी द्वारा संस्थित एक अन्य शिकायत की प्रति है । अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी पर क्रूरता का आरोप लगाया है । प्रदर्श पी. एक्स., दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 में कार्यवाहियों में विद्वान् जे. एम. आई. सी. (2) द्वारा अभिलिखित तारीख 6 जून, 2002 का कथन है । अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी ने उसकी अवहेलना की और उसका भरणपोषण करने से इनकार कर दिया था ।

17. प्रत्यर्थी के साक्ष्य के विरुद्ध, अपीलार्थी ने स्वयं को सम्मिलित करते हुए, तीन साक्षियों की परीक्षा की । वह प्रत्यर्थी साक्षी 1 के रूप में उपस्थित हुई और यह कथन किया कि उसने +2 परीक्षा उत्तीर्ण की है, जबकि अर्जीदार कक्षा 8 में था । उसने अपने विवाह के तथ्य से इनकार नहीं किया । अपीलार्थी ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी उसकी अवहेलना करता था और उसका भरणपोषण करने से इनकार करता था । उसने यह भी कथन किया कि पक्षकारों के बीच विवाह हुआ था । यह दावा किया गया कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ क्रूरता का व्यवहार करता था और उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया था । अपीलार्थी विवाह-विघटन के लिए तैयार नहीं थी ।

18. प्रतिवादी साक्षी 2, कांता और प्रतिवादी साक्षी 3, राम रतन, अपीलार्थी द्वारा परीक्षित अन्य साक्षी हैं, जिन्होंने यह कथन किया कि विवाह के पश्चात् अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के साथ रही थी और अपीलार्थी ने अपने साथ होने वाली क्रूरता के संबंध में शिकायत की थी ।

यही पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य है ।

19. अब, प्रथम और महत्वपूर्ण प्रश्न, जिस पर विचार किया जाना अपेक्षित है, वह यह है कि क्या अपीलार्थी नपुंसक थी या नपुंसकता से ग्रसित थी ।

20. शब्द "नपुंसकता" को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में परिभाषित किया गया है, किन्तु, यह विवाह से इनकार करने का एक आधार है यदि यह सिद्ध कर दिया जाता है कि विवाह के समय पर पति या पत्नी दोनों में से कोई व्यवहार्य पूर्ण लैंगिक संभोग करने में शारीरिक रूप से अक्षम हैं या अन्य कुछ कारणों से अक्षम हैं । नपुंसकता साबित करने का

भार उस विरोधी पक्षकार पर होता है जो हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12(1)(क) के अधीन परिगणित रूप में नपुंसकता के आधार पर विवाह की अकृतता की डिक्री पाने के लिए ऐसे आरोप लगाते हैं । प्रत्यर्थी को यह सिद्ध करना अपेक्षित था कि अपीलार्थी विवाह के समय पर नपुंसक थी और वह तब तक नपुंसक रही जब तक कि कार्यवाहियां संस्थित कर दी गई थीं । तथापि, यह नोटिस किया जाना चाहिए कि जब नपुंसकता, अकृतता के रूप में पक्षकारों के बीच विवाह घोषित करने के आधार के रूप में अभिकथित किया जाता है तो ऐसे अभिकथन करने वाले व्यक्ति द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किए जाने होते हैं, विशिष्टतया, विशेषज्ञ चिकित्सीय परिसाक्ष्य के प्ररूप में ।

21. नपुंसकता को साधारणतया अक्षमता चाहे शारीरिक या मानसिक हो, के अर्थ में समझा जाता है जिसमें न तो मैथुन न ही प्रजनन की क्षमता होती है । तथापि, मैथुन की क्षमता और प्रजनन की क्षमता, दो भिन्न क्षमताएं हैं और इनके परिणामस्वरूप अक्षमताएं भी भिन्न हैं । इसलिए, यह कहा जा सकता है कि नपुंसकता का अभिप्राय या तो पति या पत्नी की मैथुन करने की शारीरिक या मानसिक अक्षमता है जो स्थायी या असाध्य हो सकती है ।

22. **जयराज एंटोनी** बनाम **मैरी सिनियाम्मल**[1] वाले मामले में, पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि नपुंसकता विवाह पूर्ण करने की अक्षमता के रूप में होती है जो शारीरिक या मनोवैज्ञानिक हो सकती है ।

23. **दिग्विजय सिंह** बनाम **प्रताप कुमारी**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "एक पक्षकार नपुंसक है यदि उसकी मानसिक या शारीरिक दशा विवाह की पूर्णता को व्यवहारिक तौर पर असंभाव्य बना देता है । संविधि के अनुसार, ऐसी दशा विवाह के समय मौजूद होनी चाहिए और कार्यवाहियां संस्थित किए जाने तक बनी रहनी चाहिए ।"

24. इसी प्रकार, **मंजूला और एस. देशमुख** बनाम **सुरेश देशमुख**[3] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने असमर्थता पर चर्चा करते हुए, वैवाहिक निर्देश में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1997 मद्रास 242.

[2] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 137 = (1969) 2 एस. सी. सी. 279.

[3] ए. आई. आर. 1979 दिल्ली 93.

"19. नपुंसकता, विवाह पूर्ण करने में असमर्थता है और यह अकृतता के लिए आधार होती है, किन्तु, असमर्थता विवाह के समय मौजूद होनी चाहिए और वाद संस्थित किए जाने तक निरन्तर बनी रहनी चाहिए । इस प्रयोजन के लिए लैंगिक संभोग को साधारण और पूर्ण संभोग के रूप में परिभाषित किया गया है न कि भागतः और अपूर्ण संभोग के रूप में परिभाषित किया है । यदि स्वाभाविक रूप में यह अपर्याप्त रूप में अनिश्चित होता है तो यह किसी भी प्रकार से संभोग नहीं हो सकता है किन्तु, नवीनतम मामलों में यह सुझाव दिया गया है कि आधुनिक शल्य-चिकित्सा से इस आवश्यकता को पूर्ण किया जा सकता है जिसकी संवीक्षा की जा सकती है । यद्यपि, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कम-से-कम एक अवसर पर बिना स्खलन के पूर्ण प्रवेशन विवाह पूर्णता की कोटि में आता है किन्तु, अत्यधिक नवीनतम एक अन्य मामले में यह विनिश्चय किया गया है कि बिना किसी स्खलन के संक्षिप्त समय के लिए प्रवेशन विवाह पूर्णता की कोटि में नहीं आता है । (देखें – आर. **बनाम** आर. (अन्यथा एफ.) (1952) 1 इलाहाबाद ई. आर. 1194 और डब्ल्यू. (ओरसे के.) **बनाम** डब्ल्यू. (1967) 1 डब्ल्यू. एल. आर. 1554, देखें – लेटे आन डाइओर्स (1973) 15वां संस्करण, पृष्ठ 225) ।

20. नपुंसकता का अभिप्राय पूर्णता में असमर्थता है, उसका विवाह हुआ है और वह मात्र प्रजनन के लिए असमर्थ है । संभोग और क्षमता का परीक्षण विवाह की पूर्णता है ।"

25. **श्रीमती सुवर्णा** बनाम **जी. एम. आचार्य**[1] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विशिष्ट मामले में, पति-पत्नी की नपुंसकता अन्य पति-पत्नी के बराबर होना पर्याप्त है । सम्पूर्ण नपुंसकता साबित किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

26. मेडिकल ज्यूरिसप्रूडेन्स एण्ड टैक्सीकोलाजी पर मोदी की टेक्सबुक, 21वां संस्करण में नपुंसकता के बारे में निम्नलिखित प्रकार से विचार किया गया है :–

"नपुंसकता को मैथुन क्रिया को पूरा करने की शारीरिक अक्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है जबकि बांझपन का अभिप्राय बच्चे का प्रजनन करने में असमर्थता है । पुरुषों में

[1] 1979 एम. ए. एन. यू. आंध्र प्रदेश, 0090.

नपुंसकता, संभोग करने की उत्तेजना और स्खलन करने में स्थायी असमर्थता या प्रवेशन क्रिया को करने में स्थायी असमर्थता से है । यह स्मरण रखना चाहिए कि न्यायालयिक चिकित्सा-शास्त्र में नपुंसकता या संभोग में असमर्थता, संभोग क्रिया करने में शारीरिक असमर्थता की ओर संकेत किया गया है ।

नपुंसकता को हाल्सबरी की ला आफ इंग्लैंड में ऐसे मानसिक या शारीरिक दशा के रूप में वर्णित किया गया है जो विवाह की पूर्णता को व्यवहारिक तौर पर असंभाव्य बना देता है ।

नपुंसकता में वैयक्तिक तौर पर आवश्यक रूप से बांझपन होने की आवश्यकता नहीं है न ही वैयक्तिक तौर पर नपुंसकता बांझपन होता है, यद्यपि, दोनों दशाएं संयुक्त रूप में कभी-कभी एक ही व्यक्ति में हो सकती हैं ।"

27. नपुंसकता का एक अन्य पहलू भी है जो नपुंसकता से संबंधित है, जो यह वर्णित करता है कि एक व्यक्ति अपंगता से ग्रसित नहीं है, जो भी हो, वह हमेशा ही विशिष्ट यौन साझेदार के साथ निःसहाय या असमर्थता महसूस करता है ।

28. इसलिए, नपुंसकता के मामले पर विचार करते समय मानदंड न केवल शारीरिक अक्षमता, जो न्यायालय के लिए मार्गदर्शक होता है, विचार किया जाना चाहिए, अपितु, एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिसकी भी अवहेलना नहीं की जा सकती है, वह यह है कि विभिन्न अन्य परिस्थितियों के दौरान विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका था, जिससे ऐसी स्थिति बनती है जिसके द्वारा दोनों पति या पत्नी की शारीरिक और मानसिक क्षमता सामान्य दर्शित नहीं होती है जो संतुष्टिकारक लैंगिक संबंध बनाने के लिए असम्भाव्य हो जाता है ।

29. प्रत्यर्थी ने यह कथन किया है कि अपीलार्थी मानसिक और शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित है क्योंकि उसने विवाह पूर्णता का प्रयास किया था किन्तु, इसमें कोई सफलता नहीं मिली । दूसरी ओर, अपीलार्थी ने नपुंसकता के आरोपों का खंडन किया है ।

30. तारीख 19 नवम्बर, 2007 को इसमें के प्रत्यर्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 151 के अधीन एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसके द्वारा उसने अपीलार्थी की चिकित्सीय परीक्षा कराने का निवेदन किया, इस आधार पर कि यह सिद्ध हो गया है कि वह नपुंसक है और उसके साथ

विवाह की पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकी है । अपीलार्थी ने अपनी चिकित्सीय परीक्षा कराने का विरोध किया और यह कथन किया कि वह किसी मानसिक या शारीरिक नपुंसकता से ग्रसित नहीं है और पक्षकारों के बीच विवाह पूर्णता को प्राप्त हो गया है ।

31. तथापि, आवेदन मंजूर कर लिया गया था और अपीलार्थी को चिकित्सा बोर्ड द्वारा परीक्षा कराने का आदेश दिया गया । यहां तक कि प्रत्यर्थी को भी चिकित्सीय परीक्षा कराने का निर्देश दिया गया । चिकित्सा अधिकारी ने प्रत्यर्थी को सहवास करने के योग्य पाया और यह निष्कर्ष निकाला कि वह वैवाहिक सहवास को करने के लिए किसी मानसिक या शारीरिक निर्योग्यता से ग्रसित नहीं है ।

32. अपीलार्थी तारीख 16 जनवरी, 2008 को चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित हुई । उसी दिन उसने यह दावा किया कि वह रजोधर्म के दौर से गुजर रही है इसलिए उसे तारीख 22 जनवरी, 2008 को अपराह्न 2.00 बजे चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया । अपीलार्थी तारीख 22 जनवरी, 2008 को भी चिकित्सा बोर्ड के समक्ष उपस्थित नहीं हुई और उसके बाद उसे तारीख 23 जनवरी, 2008 को डा. रीता मित्तल के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया । डा. रीता मित्तल ने ए. डब्ल्यू. 1 के रूप में अपने कथन में निम्नलिखित कथन किया :–

> "..... उसके द्वारा दिए गए पूर्व-वृत्तांत के अनुसार, उसका विवाह 5 वर्ष पूर्व हुआ था और उक्त अवधि के दौरान उसे कोई बच्चा उत्पन्न नहीं हुआ । उसने यह भी प्रकट किया कि उसका मैथुनकृच्छ कष्ट संभोग) का कोई इतिहास नहीं रहा है । उसने यह भी प्रकट किया कि उसका कष्ट संभोग का भी कोई इतिहास नहीं रहा है । उसके द्वारा यह भी प्रकट किया गया कि 15 वर्ष की आयु में उसका रजोधर्म चक्र आरम्भ हो गया था, उसका रजोधर्म चक्र 30 दिनों के अन्तराल में 4 से 5 दिन तक नियमित रहता है । उसका अंतिम रजोधर्म चक्र तारीख 30 जनवरी, 2008 को हुआ था ।
>
> उक्त वृत्तांत इतिहास प्राप्त करने के पश्चात्, हमने श्रीमती मंजू ठाकुर द्वारा की गई चिकित्सीय परीक्षा पर विचार किया । उनकी चिकित्सीय परीक्षा से हमारा यह निष्कर्ष निकलता है कि वह दृश्यप्रपंच वाली स्त्री है । वह औसत दर्जे की बनी है । हमने उसकी

शारीरिक परीक्षा में कोई असमान्यता नोटिस नहीं की ।

द्वितीयतः, यौन चरित्र

उसका स्तन अच्छी तरह विकसित है ।

कक्षीय और जघन के बाल सामान्य तौर पर मौजूद हैं । उसका बाह्य जननांग अच्छी तरह विकसित है । उसका योनिच्छद भंग पाया गया, योनिच्छद मांसांकुर भी मौजूद है ।

योनिच्छद पर श्लेष्मा के लटकन (जो उच्छेदन योग्य था) मौजूद हैं ।

मात्र एक अंगुली ही प्रविष्ट हो सकती है, (वीक्षण-यंत्र) प्रविष्ट नहीं हो सकता है ।

योनि परीक्षा के अनुसार, हमारा यह मत है कि गर्भाशय पश्चनत है, सामान्य आकार, फर्म, चलिष्णु और कुमारीगमन स्पष्ट हैं ..... ।"

33. अपनी प्रतिपरीक्षा में, डा. रीता मित्तल ने यह स्पष्टीकृत किया कि नपुंसकता दो प्रकार की होती है (i) शारीरिक, (ii) मनोवैज्ञानिक और यह दावा किया कि मनोवैज्ञानिक नपुंसकता को मात्र शारीरिक परीक्षा द्वारा विनिश्चित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसका इतिहास प्राप्त करने के पश्चात् मरीज का विस्तार से अध्ययन किया जाना अपेक्षित होता है । यह भी दावा किया कि योन्युद्वेष्टन का अभिप्राय अचानक अनैच्छिक योनि मांसपेशियों में सिकुड़न होना । तथापि, उसने यह कथन किया कि अपीलार्थी की शारीरिक परीक्षा करते समय उसमें ऐसे गुण नहीं पाए गए किन्तु, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ऐसी दशा वास्तविक संभोग करने के समय संभाव्य हो सकती है । यह भी स्पष्टीकृत किया कि यदि योन्युद्वेष्टन संभोग क्रिया के दौरान उद्भूत होता है तो यह स्त्री के लिए नितांत पीड़ायुक्त हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह लैंगिक संभोग करने से बचना चाहती है । उसने यह स्वीकार किया कि लैंगिक संभोग के अलावा भी कई अन्य ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें योनिच्छद भंग हो सकता है । साक्षी ने यह स्वीकार किया कि वह निश्चित तौर पर यह नहीं कह सकती हैं कि अपीलार्थी के मामले में योनिच्छद का भंग पीड़ायुक्त संभोग से या अन्यथा हुआ है ।

34. चिकित्साधिकारी के कथन से यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थी संभाव्य विकृति से ग्रसित है, क्योंकि उसकी योनि का आरम्भ ही अत्यधिक

छोटा है जिससे स्वस्थ और पूर्ण लैंगिक संभोग संभव नहीं था और यह कि इसका यह भी कारण हो सकता है कि जिस वजह से वह विवाह की पूर्णता होने से बचती थी । दूसरी ओर, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, प्रत्यर्थी सहवास के लिए चिकित्सीय रूप से योग्य पाया गया है ।

35. अभिलेख पर यह भी आया है कि अपीलार्थी को शिमला में और उसके बाद गुवाहाटी में, विवाह की पूर्णता के लिए पर्याप्त समय दिया गया था किन्तु किसी न किसी बहाने से या अन्यथा, अपीलार्थी विवाह की पूर्णता से बचती हुई प्रतीत होती है ।

36. उल्लेखनीय तौर पर, यह प्रत्यर्थी ही था जिसने अपीलार्थी की चिकित्सीय परीक्षा कराने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया था, तद्द्वारा, उसे भी इसी प्रकार के प्रति-आरोपों का जोखिम उठाना पड़ा । इस मामले में, यथार्थतः क्या घटित हुआ, क्योंकि इस आवेदन के उत्तर में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी की निम्नलिखित चिकित्सीय परीक्षा के दावे का विरोध करते हुए निम्नलिखित कथन किया है :–

> "तथापि, यदि यह विद्वान् न्यायालय यह निष्कर्ष निकालता है कि चिकित्सीय परीक्षा, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 12 और 13 के अधीन अर्जी के गुणागुण का अवधारण करने के लिए आवश्यक है तो प्रत्यर्थी को किसी भी परीक्षा के लिए इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करना होगा, परन्तु, आवेदक/अर्जीदार को प्रथमदृष्ट्या ही स्वयं को चिकित्सीय रूप से योग्य होने के बारे में न्यायालय का समाधान करना होगा ।"

इस उत्तर के आधार पर ही दोनों पक्षकारों को चिकित्सीय परीक्षा कराने के निर्देश दिए गए थे ।

37. अपीलार्थी द्वारा फाइल उत्तर से एक तथ्य स्पष्ट होता है कि विवाह, कम-से-कम तारीख 5 दिसम्बर, 2007 को उत्तर फाइल करने की तारीख तक पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ था अथवा अन्यथा अपीलार्थी भी इस प्रकार के प्रकथन नहीं करती और प्रत्यर्थी की चिकित्सीय परीक्षा कराने के लिए नहीं कहती । इसलिए, इस पृष्ठभूमि में प्रत्यर्थी यह दलील देने में सही है कि अपीलार्थी शारीरिक तौर पर अपने पास आने नहीं दिया और विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है ।

38. अभिलेखों से यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी द्वारा लैंगिक संभोग करने के लिए प्रत्यर्थी के प्रयास का भी विरोध किया गया था जो

पत्नी की नपुंसकता के कारण भी हो सकता है । पत्नी की ओर से इनकार करना नपुंसकता का निष्कर्ष निकालने को बल देता है जो कई कारणों से जैसे संभोग करने की अनिच्छा के परिणामस्वरूप विवाह की पूर्णता करने में घबराहट, उन्माद या अरुचिकर संभोग आदि हो सकता है । यह भी घटित हो सकता है कि पत्नी मात्र पति के साथ संभोग करने में ही नपुंसक हो सकती है और यह आवश्यक नहीं है कि उसके बाद यह सिद्ध किया जाए कि पत्नी जननिक या शारीरिक तौर पर नपुंसक है क्योंकि यह पर्याप्त होता है कि वह पति के साथ संभोग करने में नपुंसक है । तथापि, नपुंसकता के अभिवाक् को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो इसका कथन करता है किन्तु, उसके बाद जहां वर्तमान मामले का संबंध है, यह साक्ष्य है कि अपीलार्थी पति के साथ लम्बे समय से ऋजुतः लैंगिक संबंध स्थापित करने में उत्सुक नहीं थी । इसलिए, यह उपधारणा की जा सकती है कि विवाह की पूर्णता के लिए पति या पत्नी की इच्छा या अनिच्छा और आशय जिम्मेदार होता है । यह पत्नी की ओर से नपुंसकता के तथ्य को साबित करने का लम्बा तरीका होगा । वस्तुतः, विवाह की पूर्णता करने से इनकार करना भी लैंगिक संभोग करने में अक्षमता के निष्कर्ष को निकालता है । पति-पत्नी की ओर से शारीरिक उदासीनता भी, जैसा कि इस मामले में है, नपुंसकता का प्ररूप हो सकता है ।

39. स्वीकृततः, अपीलार्थी ने तारीख 13 सितम्बर, 2003 को प्रत्यर्थी का गृह छोड़ दिया था और इसलिए, तारीख 5 दिसम्बर, 2007 के उत्तर (उपर्युक्त) की अन्तर्वस्तुओं को ध्यान में रखते हुए, सुरक्षित तौर पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह अभी तक और काफी लम्बे समय तक प्रत्यर्थी के गृह में रही फिर भी विवाह पूर्णता को प्राप्त नहीं हुआ है ।

40. जहां तक, अभित्यजन का संबंध है, अभिलेख पर यह आया है कि अपीलार्थी तारीख 13 सितम्बर, 2003 को प्रत्यर्थी का गृह छोड़ दिया था और इसके पश्चात्, वापस नहीं लौटी थी । तारीख 17 मई, 2008 को इस मामले को लोक अदालत के समक्ष सूचीबद्ध किया गया था जहां पर अपीलार्थी ने यह विनिर्दिष्ट कथन किया था कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहने को तैयार नहीं है और भरणपोषण के एवज में कुल 5,00,000/- रुपए का संदाय करने पर प्रत्यर्थी के साथ आपसी विवाह-विच्छेद करने को तैयार है । यह स्पष्टतः साबित करता है कि अपीलार्थी कभी भी प्रत्यर्थी के साथ रहना नहीं चाहती थी और बिना किसी युक्तियुक्त या विश्वसनीय कारण से दो वर्षों की अवधि से अधिक समय से उसे त्यक्त कर रखा है ।

41. उसके बाद, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री वाई. पी. सूद ने यह दलील दी कि क्रूरता के संबंध में, विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष प्रतिकूल हैं और इसलिए, अपास्त किए जाने योग्य हैं । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की यह दलील स्वीकार नहीं की जा सकती है । इसे विवादित नहीं किया जा सकता है कि पति-पत्नी द्वारा जानबूझकर लैंगिक संबंध बनाने से इनकार करना क्रूरता की कोटि में आता है । क्रूरता क्या है, इसे माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **विनीता सक्सेना** (उपर्युक्त) वाले मामले में सूक्ष्मता से स्पष्टीकृत किया गया है जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"**क्रूरता के पहलू पर विधिक प्रतिपादना :**

(31) कई विनिश्चयों द्वारा यह सुस्थिर है कि मानसिक क्रूरता से शारीरिक कष्ट के मुकाबले अधिक गंभीर क्षति हो सकती है और क्षतिग्रस्त अपीलार्थी के मस्तिष्क में ऐसी प्रत्याशा सृजित करती है जैसी कि धारा में अनुध्यात है । इसे मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और पति-पत्नी के बीच वैवाहिक संबंधों के आधार पर अवधारित करना होता है । क्रूरता की कोटि में, पक्षकार का ऐसा जानबूझकर व्यवहार आता है जो या तो शरीर या मस्तिष्क को ग्रसित करता है चाहे वास्तविक तथ्य द्वारा या ऐसी प्रत्याशा द्वारा जिसमें पति-पत्नी का एक साथ निरन्तर रहना मामले की परिस्थितियों में कष्टदायक और हानिकर हो जाता है ।

(32) शब्द 'क्रूरता' को परिभाषित नहीं किया गया है और इसे मानवीय आचरण या मानवीय व्यवहार के संबंध में प्रयुक्त किया जाता है । यह वैवाहिक कर्तव्यों और बाध्यताओं के संबंध में अथवा के बारे में आचरण होता है । यह आचरण के दौरान होता है और जो दूसरे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है । क्रूरता, मानसिक या शारीरिक या सआशय या बिना आशय के हो सकता है । ऐसे मामले हो सकते हैं जहां आचरण स्वयं में इतना दूषित हो सकता है और उसी के अनुरूप यह अविधिमान्य या अवैध हो सकता है । उसके बाद, यह दूसरे पक्ष के संघात या हानिकर प्रभाव की जांच करने या विचार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है । ऐसे मामलों में क्रूरता सिद्ध हो जाएगी, यदि स्वयमेव आचरण से ही यह साबित होता है या स्वीकृत होता है ।

(33) अभिकथित क्रूरता पक्षकारों के जीवन के तरीके अर्थात् आदत या उनकी आर्थिक और सामाजिक दशा, उनकी सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों जिनसे वे महत्वपूर्ण रूप से जुड़े होते हैं, पर बड़े पैमाने पर निर्भर करता है । आधुनिक सभ्यता के मानक द्वारा, जो हमारे समाज के सांस्कृतिक परम्पराओं और प्रथाओं की पृष्ठभूमि में समाहित होता है, अवधारित किया जाता है, एक नौजवान और अति शिक्षित स्त्री, जैसी कि इसमें की अपीलार्थी है, से घरेलू जीवन में परेशान होने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती है, चाहे मानसिक, शारीरिक, सआशय या बिना आशय के हों । उसके कथनों का आदर होना चाहिए, उसके समायोजन और आधारभूत आवश्यकताओं के एवज में उसकी महत्वाकांक्षा और अभिलाषा का ध्यान रखना चाहिए, यद्यपि, उसके स्वाभाविक, असामंजस्य से उद्भूत शिकायतें असंगत हो सकती हैं । यह मत, केरल उच्च न्यायालय द्वारा रजनी **बनाम** सुब्रमणियन [ए. आई. आर. 1990 केरल 1 = (1990) 1 डी. एन. सी. 561] में व्यक्त किया गया है ।

(34) एक जर्नल [(1993) 2 हिन्दू एल. आर. 637] में न्यायालय के निम्नलिखित मत भी व्यक्त किए गए हैं –

> 'कभी-कभी छीटा-कसी, क्रोध, मजाकिया जोक्स, व्यंग्यपूर्ण भाषा भी वास्तविक तौर पर पीटने के मुकाबले अधिक क्रूरता हो सकती है ।'

(35) प्रत्येक मामला स्वयं अपने तथ्यों को निर्भर करता है और इन तथ्यों के आधार पर ही उनका न्यायनिर्णयन होना चाहिए । क्रूरता की अवधारणा समय-समय पर, एक स्थान से दूसरे स्थान और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के साथ उस व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और आर्थिक दशा और अन्य मामलों के अनुसार, परिवर्तित हो सकती है । यह प्रश्न कि क्या शिकायती कृत्य, क्रूरता का कृत्य है, इसे सम्पूर्ण तथ्यों और पक्षकारों के बीच वैवाहिक संबंधों के आधार पर अवधारित किया जाना चाहिए । इस संबंध में संस्कृति, स्वभाव और जीवनस्तर और कई अन्य कारक हो सकते हैं, जिन्हें विचार में लिया जाना चाहिए ।

(36) क्रूरता की विधिक अवधारणा, जो प्रास्थिति द्वारा परिभाषित नहीं है, साधारणतया ऐसे चरित्र के आचरण के रूप में वर्णित किया

जाता है जिससे कि जीवन, अंग या स्वास्थ्य (शारीरिक या मानसिक) को खतरा कारित होता है या ऐसे खतरे की युक्तियुक्त आशंका उद्भूत होती है । क्रूरता के सभी प्रश्नों में साधारण नियम यह है कि संपूर्ण वैवाहिक संबंधों पर विचार किया जाना चाहिए, कि नियम, एक विशेष मूल्य का होता है जब क्रूरता में हिंसात्मक कृत्य समाविष्ट नहीं होता है अपितु, हानिकर भर्त्सनाओं, शिकायतों और आरोपों या तानों का समावेश होता है । यह मानसिक हो सकता है, जैसे कि पत्नी से मतभेद और उदासीनता उसके साथ रहने से इनकार करना, पत्नी के साथ विद्वेष या घृणा रखना या शारीरिक जैसे हिंसात्मक कृत्य करना और बिना किसी युक्तियुक्त कारण के लैंगिक संभोग से परहेज करना । यह साबित होना चाहिए कि विवाह का एक पक्षकार ऐसे विवेकहीन तरीके से व्यवहार करता है जिसे दूसरा पक्षकार सहन नहीं कर सकता है और यह कि ऐसे अवचार से स्वास्थ्य को क्षति कारित होती है या ऐसी क्षति कारित होनी की युक्तियुक्त प्रत्याशा होती है । क्रूरता के मामले में, दोनों पक्षों की ओर से विचार होना चाहिए । अपीलार्थी की ओर से, अपीलार्थी से यह कहा जाना चाहिए कि वह ऐसे आचरण को सहन नहीं कर सकता है ? प्रत्यर्थी की ओर से यह क्षमा योग्य आचरण होना चाहिए ? उसके बाद, न्यायालय को यह विनिश्चय करना चाहिए कि क्या ऐसा प्रत्याशित आचरण क्रूरता है । यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्या सम्पूर्ण आचरण पर्याप्त रूप से इतना गंभीर है कि यह कहा जा सके कि एक युक्तियुक्त व्यक्ति से किसी क्षमा की प्रत्याशा नहीं की जा सकती है जो प्रत्यर्थी परिस्थितियों में करता है, ऐसे आचरण को अर्जीदार सहन नहीं कर सकता है ।

(37) उक्त उपबंध के प्रयोजनों के लिए अपेक्षित मानसिक क्रूरता ऐसी घटनाओं की गणितीय गणना या मात्र ऐसे आचरण के निरन्तर बने रहने पर निर्भर नहीं होता अपितु वस्तुतः इसकी प्रबलता, गंभीरता और लांछन के प्रभाव द्वारा गठित होता है जब इसे एक बार भी किया जाता है और यह जब वैवाहिक गृह को बनाए रखने के लिए आवश्यक मानसिक दृष्टिकोण को हानिकर रूप से प्रभावित करता है ।

(38) यदि छीटा-कसी, शिकायतें, भर्त्सनाएं मात्र साधारण प्रकृति की हैं तो शायद ही न्यायालय को आगे इस प्रश्न पर विचार करने की

आवश्यकता होती है कि क्या उनका निरन्तर बने रहना या अधिक समय से दृढ़ रहना या अन्यथा साधारण तौर पर इस प्रकार के हानिकर और कष्टदायक रूप से गंभीर कृत्य नहीं हैं जिससे कि पति-पत्नी एक दूसरे पर सही तौर पर और युक्तियुक्त रूप से यह आरोप लगाने के लिए निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वैवाहिक गृह को बनाए रखना किसी भी प्रकार से संभाव्य नहीं है ।

(39) विधि की दृष्टि में, पति या पत्नी के विरुद्ध क्रूरता के आधुनिक मत को हाल्सबरी के ला आफ इंग्लैंड, खंड 12, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 270-271 में निम्नलिखित रूप में व्याख्या की गई है ।

> 'क्रूरता के सभी प्रश्नों में साधारण नियम यह है कि सम्पूर्ण वैवाहिक संबंधों पर विचार किया जाना चाहिए और यह कि विशेष मूल्य का नियम, जब क्रूरता हिंसात्मक कृत्य से गठित नहीं होती है अपितु हानिकर भर्त्सनाओं, शिकायतों, आरोपों या छीटा-कसियों से गठित होती हैं । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व, न्यायाधीश को पति-पत्नी द्वारा एक दूसरे के प्रति मस्तिष्क में व्यक्तित्व और आचरण के प्रभाव पर विचार करना चाहिए और पति-पत्नी के बीच सभी घटनाओं और झगड़ों को उस दृष्टिकोण से भार देना चाहिए । क्रूरता अवधारित करने के संबंध में, प्रत्येक विशिष्ट मामले की परिस्थितियों में पक्षकारों की शारीरिक और मानसिक दशा और उनके चरित्र और सामाजिक प्रास्थिति का हमेशा ही ध्यान रखा जाना चाहिए ।'

(40) इस न्यायालय ने एन. जी. दास्ताने (डा.) **बनाम** एस. दास्ताने [(1975) 2 एस. सी. सी. 326 = ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> 'न्यायालय को एक आदर्श और एक आदर्श पत्नी (किसी अस्तित्व की उपधारणा करते हुए) पर विचार नहीं करना चाहिए अपितु उसके समक्ष एक विशिष्ट व्यक्ति और स्त्री होती है । आदर्श पति-पत्नी या आदर्श पति-पत्नी के रूप में संभाव्य को वैवाहिक न्यायालय में जाने का कोई अवसर नहीं होता है । यद्यपि, ऐसा नहीं है कि उनके बीच मतभेद नहीं होते हैं किन्तु वे अपने आदर्श दृष्टिकोण की सहायता से आपसी गलती और विफलता का समाधान स्वयं ही ढूंढ लेते हैं ।'''

42. **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न देशों में क्रूरता के दृष्टिकोण की परीक्षा करने के पश्चात् और उनके न्यायिक झुकाव पर विचार करने के पश्चात्, क्रूरता के विषय पर व्यवस्था दी है और व्यापक मानक भी अभिकथित किए हैं, जो मानसिक क्रूरता के मामले पर विचार करने के लिए सुसंगत हो सकते हैं और विस्तृत दृष्टांत यह है कि निम्नलिखित तरीके से मानसिक क्रूरता गठित हो सकती है :–

> "101. मार्गदर्शन के लिए कभी भी कोई एकरूपीय कसौटी अधिकथित नहीं की जा सकती है । तब भी हम मानवीय आचरण के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करना उपयुक्त समझते हैं जो मानवीय क्रूरता के मामले पर चर्चा करते समय सुसंगत हो सकते हैं । निम्न पैराओं में इंगित किए गए उदाहरण केवल दृष्टांतस्वरूप हैं और न कि निःशेषकारा –
>
> (i) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने पर अत्यंत मानसिक पीड़ा, दुःख और वेदना, जिसके कारण पक्षकारों का एक दूसरे के साथ रहना संभव नहीं हो पाएगा । यह मानसिक क्रूरता की व्यापक परिधि के भीतर आएगा ।
>
> (ii) पक्षकारों के सम्पूर्ण वैवाहिक जीवन का व्यापक रूप से मूल्यांकन करने पर यदि यह प्रचुर रूप से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिति ऐसी है कि दुःखी किए गए पक्षकार से अन्य पक्षकार के ऐसे आचरण को सहने के लिए और उसके साथ सतत रूप से जीवनयापन करने के लिए नहीं कहा जा सकता है ।
>
> (iii) मात्र ठंडापन या प्यार की कमी से क्रूरता गठित नहीं हो सकती । भाषा में प्रायः रूखापन/कठोरता, विरत भाव दर्शित करना, टीका-टिप्पणी करना, एक ऐसी कोटि के हो सकते हैं जिनके कारण अन्य पक्षकार (पति/पत्नी) के लिए वैवाहिक जीवन पूर्णरूप से असहनीय बन जाए ।
>
> (iv) मानसिक क्रूरता चित्त की एक स्थिति है । गहन वेदना, असंतोष, अन्य पति/पत्नी के आचरण से दूसरे पक्षकार को नैराश्य जो लंबी अवधि तक हो, की भावना मानसिक क्रूरता

[1] [2008] 3 उम. नि. प. 10 = (2007) 4 एस. सी. सी. 511.

गठित करती है ।

(v) गाली-गलौज और अपमानकारी व्यवहार का अनवरत रूप से जारी रहना जिससे अन्य पक्षकार को यंत्रणा/असंतोष या जीवन दुःखदपूर्ण हो जाए, यह भी मानसिक क्रूरता गठित करता है ।

(vi) पति/पत्नी का अनवरत अनुचित आचरण और व्यवहार जो वस्तुतः अन्य पक्षकार के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता हो । परिवाद किए गए व्यवहार और उसके परिणामस्वरूप पहुंचा खतरा या आशंका अत्यंत ही घोर और प्रबल होनी चाहिए ।

(vii) अनवरत भयाक्रांत आचरण, नितांत अनदेखी करना या वैवाहिक दयालुता के सामान्य स्तर से पूर्णतया विचलन करना जिसके कारण दूसरे पक्षकार के मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचती हो या उससे त्रुटि करने वाले पक्षकार को अत्यधिक आत्मिक सुख मिलता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित करते हैं ।

(viii) आचरण ऐसा होना चाहिए जो ईर्ष्या, स्वार्थता आधिपत्यता से अत्यंत अधिक हो अन्यथा दुःख, असंतोष और भावनात्मक रूप से चोट पहुंचाना मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद प्रदान किए जाने के लिए आधार नहीं हो सकते ।

(ix) मात्र छोटी-मोटी कहा-सुनी, झगड़े वैवाहिक जीवन के सामान्य झगड़े जो दिन-प्रतिदिन के जीवन में घटित होते हैं, मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद किए जाने के लिए पर्याप्त नहीं होंगे ।

(x) सम्पूर्ण वैवाहिक जीनव का पुनर्विलोकन किया जाना चाहिए और अनेक वर्षों के दौरान के कुछ एकल उदाहरण क्रूरता गठित नहीं कर सकेंगे । दुर्व्यवहार ऋजुतापूर्वक एक लंबी अवधि तक जारी रहना चाहिए, जिसके दौरान उनके (पति/पत्नी) संबंध इस सीमा तक खराब हो गए हों कि एक पति/पत्नी के कृत्यों और आचरण के कारण व्यथित पक्षकार उसके साथ और अधिक रहना अत्यंत ही कठिन पाता हो, यह मानसिक क्रूरता गठित कर सकेगा ।

(xi) यदि पति बिना किसी चिकित्सीय कारण के और अपनी पत्नी की सम्मति या उसकी जानकारी के बिना अपना नसबंदी का आपरेशन कराता है और यदि पत्नी बिना किसी चिकित्सीय कारण के या अपनी पति की सम्मति या जानकारी के बिना गर्भपात या नसबंदी कराती है तब पति/पत्नी का यह कृत्य मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xii) पति/पत्नी का एकपक्षीय रूप से बिना किसी शारीरिक अक्षमता या विधिमान्य कारण के एक पर्याप्त अवधि तक दूसरे पक्षकार के साथ संभोग करने से इनकार करने का एकपक्षीय विनिश्चय भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiii) पति या पत्नी का विवाह के पश्चात् यह एकपक्षीय विनिश्चय करना कि वह विवाहोपरान्त कोई बच्चा पैदा नहीं करेगा यह भी मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।

(xiv) जहां एक लंबी सतत् अवधि तक पति/पत्नी अलग रह रहे हैं वहां यह ऋजुतापूर्वक निष्कर्ष निकाला जा सकेगा कि उनके बीच वैवाहिक संबंध सुधार के परे हैं । विवाह नाममात्र का रह जाता है यद्यपि यह विधिक बंधन के अधीन रहता है । ऐसे मामले में विधि द्वारा ऐसे बंधन को तोड़ने से इनकार करने से विवाह का कोई प्रयोजन पूरा नहीं होता । इसके प्रतिकूल यह पक्षकारों की भावनाओं के प्रति अत्यंत ही अनादर दर्शित करता है । ऐसी समरूप स्थितियों में यह मानसिक क्रूरता गठित करेगा ।"

43. **ए.** बनाम **बी.**[1] वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि पति या पत्नी की ओर से सामान्य लैंगिक संभोग से इनकार करना क्रूरता की कोटि में आता है ।

44. **प्रेम प्रकाश** बनाम **श्रीमती सरला**[2] वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि संभोग वैवाहिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और सफल वैवाहिक जीवन के लिए अन्य कारकों से इसे पृथक् नहीं किया जा सकता है । इसलिए,

---

[1] 1996 ए. आई. एच. सी. 1727.

[2] ए. आई. आर. 1989 मध्य प्रदेश 326.

पति या पत्नी का आचरण जो सहवास की निरन्तरता बनाए रखता है और दाम्पत्य कर्तव्यों के अनुपालन को असम्भाव्य बनाना भी ऐसी क्रूरता की कोटि में आता है ।

45. **शकुन्तला कुमारी** बनाम **ओम प्रकाश घई**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सामान्य और स्वस्थ लैंगिक संबंध, खुशी और खुशहाल वैवाहिक जीवन के आधारभूत अवयवों में से एक है । यदि यह पति-पत्नी में से किसी के भी ओर से अस्वास्थ्य के कारण संभव नहीं होता है तो यह क्रूरता की कोटि में आ सकता है अथवा नहीं भी आ सकता है, यह मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है । किन्तु, जानबूझकर पति या पत्नी द्वारा लैंगिक संबंध बनाने से इनकार करना जबकि अन्य पति या पत्नी इसके लिए उत्सुक है, तो यह क्रूरता की कोटि में आएगा, विनिर्दिष्टतया तब, जब पक्षकार नौजवान और नवविवाहिता हैं ।

46. मामले के तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अभिलेख पर यह सम्यक् रूप से साबित कर दिया गया है कि प्रत्यर्थी की पहल पर भी अपीलार्थी कोई ध्यान नहीं देती थी जिससे प्रत्यर्थी तीव्र शारीरिक और मानसिक पीड़ा, आघात से ग्रसित रहता था । वस्तुतः, अपीलार्थी द्वारा लैंगिक संभोग से हमेशा ही इनकार करना, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) के निबंधनों में मानसिक क्रूरता की कोटि में आता है । ऐसा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्डी**[2] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया था जिसे **सनत कुमार अग्रवाल** बनाम **नन्दनी अग्रवाल**[3] वाले में भी दोहराया गया था ।

47. इसलिए, उपर्युक्त चर्चा किए गए सभी कारणों से, मैं अपील में कोई गुणागुण नहीं पाता हूं और इसे खारिज करता हूं, पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

क.

---

[1] ए. आई. आर. 1981 दिल्ली 53.

[2] (1988) 1 एस. सी. सी. 105.

[3] ए. आई. आर. 1990 एस. सी. 594.

दयाल सिंह और एक अन्य

बनाम

भिन्दर कौर

तारीख 12 अगस्त, 2014

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 115 [सपठित भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 66] – पुनरीक्षण – विल – निष्पादन – उत्तराधिकार – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि विवादित संपत्ति का विल निष्पादन अकृत, शून्य और अविधिमान्य है तो वह संपत्ति स्वाभाविक तौर पर उसके नैसर्गिक उत्तराधिकारी को प्राप्त हो जाएगी ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी ने याचियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष की घोषणा या वैकल्पिक रूप में राम स्वरूप के उत्तराधिकारियों से स्वयं को दावा करते हुए कब्जे की घोषणा के लिए 1995/91 की सिविल वाद सं. 16/1 संस्थित की थी । आवेदकों द्वारा वाद का विरोध इस आधार पर किया गया कि राम स्वरूप ने उनके पक्ष में एक विधिमान्य "विल" निष्पादित की है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 1997 को वाद खारिज कर दिया था । प्रत्यर्थी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, सोलन के न्यायालय में 1997 की अपील सं. 34-एन. एल./13 द्वारा एक अपील फाइल की । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 19 अगस्त, 1998 को अपील मंजूर कर ली थी । आवेदकों ने तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 394 फाइल की । जिसे इस न्यायालय ने तारीख 22 दिसम्बर, 2008 को खारिज कर दिया था । यह विवादित नहीं है कि 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 394 में पारित तारीख 22 दिसम्बर, 2008 के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई थी । प्रत्यर्थी ने निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए एक निष्पादन आवेदन फाइल किया था । आवेदकों ने उसके विरुद्ध आक्षेप फाइल किए थे । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) ने आक्षेप खारिज कर दिए थे और तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश द्वारा तारीख 17 दिसम्बर, 2011 के

लिए कब्जा वारंट जारी किया था । आवेदकों ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, सोलन के समक्ष 2011 की सिविल अपील सं. 42-एन. एल./13 के द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश के विरुद्ध एक अपील फाइल की जिसे उन्होंने तारीख 23 जून, 2012 को खारिज कर दिया था । अतएव, वर्तमान आवेदन फाइल किया गया । न्यायालय द्वारा आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायालय ने आवेदकों के पक्ष में श्री राम स्वरूप द्वारा निष्पादित तारीख 4 अगस्त, 1973 के विल को ध्यान में रखते हुए, वाद को खारिज कर दिया था । तथापि, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 14 अगस्त, 1997 और तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत अपील मंजूर कर ली थी । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी राम स्वरूप की पुत्री होने के नाते नैसर्गिक उत्तराधिकारी है और उसकी संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है । राम स्वरूप ने आवेदकों के पक्ष में विधिमान्य विल निष्पादित करना साबित नहीं किया और विल के आधार पर उनके पक्ष में मंजूर तारीख 24 अगस्त, 1991 के उत्तराधिकार नामांतरण को अवैध, अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया था । प्रत्यर्थी का वाद डिक्री कर दिया गया था, यह घोषित करते हुए कि उसने स्वामी के रूप में वाद संपत्ति के बराबर श्री राम स्वरूप की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है और वह हक के आधार पर वाद संपत्ति पर कब्जा रखने की हकदार थी । विचारण न्यायालय का निर्णय अपास्त कर दिया गया था । वह उसका कब्जा रखने की हकदार अभिनिर्धारित की गई थी । तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय को इस न्यायालय द्वारा 1998 के नियमित द्वितीय अपील सं. 394 में कायम रखा गया था । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि विचारण न्यायालय को विवाद्यक विरचित करने चाहिए थे और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए थी । पक्षकारों के अधिकारों का मुख्य वाद में पहले ही न्यायनिर्णयन हो चुका है । पक्षकारों को निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान सम्पूर्ण मामले को पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा बंधक के मोचन के बारे में विवाद्यक पहले ही विरचित किया जा चुका है । इस विवाद्यक को आवेदकों के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था । आवेदकों ने विवाद्यक सं. 3 और 7 पर निकाले गए निष्कर्ष के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की थी । यह प्रत्यर्थी ही था जिसने एक अपील फाइल की थी और विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष

एक ही विवाद्यक यह था कि क्या प्रत्यर्थियों के पक्ष में श्री राम स्वरूप द्वारा निष्पादित तारीख 4 अगस्त, 1973 के विल की विधिमान्यता का निष्कर्ष निकालते हुए विचारण न्यायालय का निष्कर्ष विधि और तथ्य के विरुद्ध है और अपील स्वीकार करने के पश्चात् उलटे जाने योग्य है । जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 4 अगस्त, 1973 का विल विधिमान्य तौर पर निष्पादित नहीं हुआ था । वाद का 17 वर्षों तक विरोध किया गया और अब पक्षकारों को उसे पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । जहां तक बंधक मोचन के अभिवाक् का संबंध है, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, उसे सिविल वाद में विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया गया था । विचारण न्यायालय ने इस प्रभाव का विवाद्यक सं. 7 विरचित किया था और आवेदकों के विरुद्ध निष्कर्ष अभिलिखित किया था । यह अभिनिर्धारित किया था कि आवेदक समय बीतने के साथ वाद संपत्ति के स्वामी नहीं हुए थे । दोनों निचले न्यायालयों ने यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि उसी अभिवाक् को पुनः उठाने और वाद संपत्ति का कब्जा परिदान करने में विलम्ब के अभिवाक् को पुनः उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । आवेदकों के अनुसार, तारीख 17 जनवरी, 1964 को राम स्वरूप ने 542/- रुपए ऋण लिया था । राम स्वरूप के विरुद्ध सिविल वाद फाइल किया गया था । वाद डिक्री हुआ था और निष्पादन कार्यवाहियों में याचियों ने अद्यतन ब्याज सहित डिक्री रकम संदत्त किया था । इस अभिवाक् को विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल लिखित कथन में कभी भी उद्भूत नहीं किया गया था । इस अभिवाक् को सर्वप्रथम निष्पादन कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान उद्भूत किया गया था । रकम को तारीख 24 अगस्त, 1991 को संदत्त किया जाना कथित है । वर्तमान वाद तारीख 10 मई, 1995 को फाइल हुआ था । याचियों के लिए यह खुला था कि वे लिखित कथन में इस अभिवाक् को उद्भूत करते । न्यायालय के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद द्वारा किए गए इस अंतिम निवेदन का उल्लेख करता है कि डिक्री अस्पष्ट है और इसमें विशिष्ट तत्वों का अभाव है । प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वाद, स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ घोषणा करने या वैकल्पिक रूप में वाद भूमि के कब्जे की ईप्सा करने के लिए था । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 14 अगस्त, 1997 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और प्रत्यर्थी के वाद को डिक्री कर दिया, यह घोषणा करते हुए वह श्री राम स्वरूप की पुत्री होने के नाते उसकी सम्पत्ति की

उत्तराधिकारी है और वाद सम्पत्ति का कब्जा रखने की हकदार है । डिक्री विनिर्दिष्ट है और प्रत्यर्थियों को वाद सम्पत्ति का कब्जा लेने का आदेश दिया जाता है । निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन आवेदन में आवेदकों द्वारा प्रस्तुत आक्षेपों पर सही ही न्यायनिर्णयन किया है । पृथक् तौर पर कोई विवाद्यक विरचित किया जाना अपेक्षित नहीं है क्योंकि संबंधित पक्षकार अपने मामले को जानते हैं । डिक्री विनिर्दिष्ट थी और निष्पादन किए जाने योग्य थी । निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में न तो कोई प्रतिकूलता है न ही कोई अवैधता है । (पैरा 7, 8, 9, 11, 12 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2003] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3789 :
रफीक बीबी (मृत) मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **सैय्यद वलीउद्दीन (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** ; 13

[1998] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1754 :
सिल्वरलाईन फोरम प्रा. लिमिटेड बनाम **राजीव ट्रस्ट और एक अन्य** । 10

पुनरीक्षण (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल पुनरीक्षण सं. 78.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदकों की ओर से सर्वश्री के. डी. सूद, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ संजीव सूद, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अरविन्द शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह पुनरीक्षण आवेदन जिला न्यायाधीश, सोलन द्वारा 2011 की सिविल अपील सं. 42-एन. एल./13 में पारित तारीख 23 जून, 2012 के निर्णय के विरुद्ध निदेशित है ।

2. इस रिट आवेदन का न्यायनिर्णयन करने के लिए मुख्य तथ्य यह हैं कि प्रत्यर्थी ने याचियों के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष की घोषणा या वैकल्पिक रूप में राम स्वरूप के उत्तराधिकारियों से स्वयं को दावा करते हुए कब्जे की घोषणा के लिए 1995/91 की सिविल वाद

सं. 16/1 संस्थित की थी । आवेदकों द्वारा वाद का विरोध इस आधार पर किया गया कि राम स्वरूप ने उनके पक्ष में एक विधिमान्य "विल" निष्पादित की है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 1997 को वाद खारिज कर दिया था । प्रत्यर्थी ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, सोलन के न्यायालय में 1997 की अपील सं. 34-एन. एल./13 द्वारा एक अपील फाइल की । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 19 अगस्त, 1998 को अपील मंजूर कर ली थी । आवेदकों ने तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 394 फाइल की । जिसे इस न्यायालय ने तारीख 22 दिसम्बर, 2008 को खारिज कर दिया था । यह विवादित नहीं है कि 1998 की नियमित द्वितीय अपील सं. 394 में पारित तारीख 22 दिसम्बर, 2008 के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई थी । प्रत्यर्थी ने निर्णय और डिक्री के निष्पादन के लिए एक निष्पादन आवेदन फाइल किया था । आवेदकों ने उसके विरुद्ध आक्षेप फाइल किए थे । विद्वान् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड) ने आक्षेप खारिज कर दिए थे और तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश द्वारा तारीख 17 दिसम्बर, 2011 के लिए कब्जा वारंट जारी किया था । आवेदकों ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, सोलन के समक्ष 2011 की सिविल अपील सं. 42-एन. एल./13 के द्वारा तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश के विरुद्ध एक अपील फाइल की जिसे उन्होंने तारीख 23 जून, 2012 को खारिज कर दिया था । अतएव, वर्तमान आवेदन फाइल किया गया ।

3. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद ने यह जोरदार तर्क दिया कि निष्पादन न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ पठित आदेश 21, नियम 97 और 98 के अधीन प्रस्तुत आक्षेपों को खारिज करने के पूर्व विवाद्यक विरचित नहीं किए थे । उसके बाद, उन्होंने यह दलील दी कि डिक्री अस्पष्ट और उसमें विशिष्ट तथ्यों का अभाव था । संपत्ति का वर्णन नहीं दिया गया था । उन्होंने यह भी दलील दी कि आवेदक ने तारीख 21 सितम्बर, 1967 को राम स्वरूप से वाद भूमि उन्मोचित करा लिया था और उसके मुवक्किल राम स्वरूप के बंधकदार हो गए थे । उन्होंने यह भी दलील दी कि तारीख 17 जनवरी, 1964 को राम स्वरूप ने सुरेन्द्र से ऋण के रूप में 542/- रुपए लिए थे । उसने एक प्रोनोट निष्पादित किया था । सुरेन्द्र द्वारा 735.25 रुपए की डिक्री के लिए एक वाद फाइल किया गया था । वाद, तारीख 15 नवम्बर, 1967 को डिक्री हो गया था । निष्पादन कार्यवाहियों में आवेदक ने राम स्वरूप की

सहमति और जानकारी से डिक्री रकम के साथ तत्समय ब्याज के रूप में 935/- रुपए संदत्त किया था ।

4. श्री अरविन्द शर्मा ने तारीख 23 जून, 2012 के निर्णय और तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश का समर्थन किया ।

5. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिवचनों तथा तारीख 23 जून, 2012 के निर्णय और तारीख 17 नवम्बर, 2011 के आदेश का परिशीलन किया ।

6. प्रत्यर्थी ने स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ घोषणा करने या वैकल्पिक रूप में राम स्वरूप के उत्तराधिकारियों से स्वयं का दावा करते हुए, कब्जे के लिए 1995/1991 की सिविल वाद सं. 16/1 फाइल की । विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

1. क्या स्वर्गीय श्री स्वरूप, वाद संपत्ति का कब्जे सहित स्वामी था, जैसा कि अभिकथित है ?

2. क्या वादी, मृतक स्वरूप की एक मात्र पुत्री है, जैसा कि अभिकथित है ?

3. यदि विवाद्यक सं. 1 और 2, सकारात्मक साबित किए जाते हैं तो क्या वादी वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी हो गया है, जैसा कि अभिकथित है ?

3(क). क्या वैकल्पिक रूप में वादी कब्जे की डिक्री पाने का हकदार है ?

4. क्या वादी को वर्तमान वाद फाइल करने के लिए सुने जाने का अधिकार नहीं है ?

5. क्या मृतक स्वरूप ने स्वस्थचित्त दशा में तारीख 4 अगस्त, 1973 को एक वैध और विधिमान्य विल निष्पादित की थी, जैसा कि अभिकथित है ?

6. क्या वाद भूमि, प्रतिवादी और मृतक स्वरूप की सह-दायिकी संपत्ति है । यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

7. क्या प्रतिवादी वाद भूमि के भाग का स्वामी हो गया है, क्योंकि उसे अनुध्यात अवधि के भीतर स्वर्गीय श्री स्वरूप द्वारा उन्मोचित नहीं कराया गया है, जैसा कि अभिकथित है ?

8. क्या वाद का न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोग के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकन नहीं किया गया है । यदि ऐसा है तो सही मूल्यांकन क्या है ?

9. अनुतोष ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 और 2 को सकारात्मक विनिश्चित किया और विवाद्यक सं. 3 और 3-क को नकारात्मक विनिश्चित किया । विवाद्यक सं. 4 और 6 से 8 को आवेदकों के विरुद्ध अभिनिर्धारित किया किन्तु विवाद्यक सं. 5 को आवेदकों के पक्ष में विनिश्चित किया । आवेदकों के पक्ष में श्री राम स्वरूप द्वारा निष्पादित तारीख 4 अगस्त, 1973 के विल को ध्यान में रखते हुए, वाद को खारिज कर दिया था । तथापि, विद्वान् जिला न्यायाधीश ने तारीख 14 अगस्त, 1997 और तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध प्रस्तुत अपील मंजूर कर ली थी । मुद्दा, जिसे प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अवधारण के लिए विरचित किया गया था, निम्नलिखित है :–

"क्या, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष में श्री स्वरूप द्वारा निष्पादित तारीख 4 अगस्त, 1973 के विल की विधिमान्यता का निष्कर्ष विधि और तथ्य के विरुद्ध है तथा अपील स्वीकार करने के पश्चात् उलटे जाने योग्य है ?"

8. विद्वान् जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी राम स्वरूप की पुत्री होने के नाते नैसर्गिक उत्तराधिकारी है और उसकी संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है । राम स्वरूप ने आवेदकों के पक्ष में विधिमान्य विल निष्पादित करना साबित नहीं किया और विल के आधार पर उनके पक्ष में मंजूर तारीख 24 अगस्त, 1991 के उत्तराधिकार नामांतरण को अवैध, अकृत और शून्य घोषित कर दिया गया था । प्रत्यर्थी का वाद डिक्री कर दिया गया था, यह घोषित करते हुए कि उसने स्वामी के रूप में वाद संपत्ति के बराबर श्री राम स्वरूप की संपत्ति को उत्तराधिकार में प्राप्त किया है और वह हक के आधार पर वाद संपत्ति पर कब्जा रखने की हकदार थी । विचारण न्यायालय का निर्णय अपास्त कर दिया गया था । वह उसका कब्जा रखने की हकदार अभिनिर्धारित की गई थी । तारीख 19 अगस्त, 1998 के निर्णय को इस न्यायालय द्वारा 1998 के नियमित द्वितीय अपील सं. 394 में कायम रखा गया था ।

9. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद की इस दलील में कोई गुणागुण नहीं है कि विचारण न्यायालय को विवाद्यक विरचित करने चाहिए

थे और पक्षकारों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए थी । पक्षकारों के अधिकारों का मुख्य वाद में पहले ही न्यायनिर्णयन हो चुका है । पक्षकारों को निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान सम्पूर्ण मामले को पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा बंधक के मोचन के बारे में विवाद्यक पहले ही विरचित किया जा चुका है । इस विवाद्यक को आवेदकों के विरुद्ध विनिश्चित किया गया था । आवेदकों ने विवाद्यक सं. 3 और 7 पर निकाले गए निष्कर्ष के विरुद्ध कोई अपील प्रस्तुत नहीं की थी । यह प्रत्यर्थी ही था जिसने एक अपील फाइल की थी और विद्वान् जिला न्यायाधीश के समक्ष एक ही विवाद्यक यह था कि क्या प्रत्यर्थियों के पक्ष में श्री राम स्वरूप द्वारा निष्पादित तारीख 4 अगस्त, 1973 के विल की विधिमान्यता का निष्कर्ष निकालते हुए विचारण न्यायालय का निष्कर्ष विधि और तथ्य के विरुद्ध है और अपील स्वीकार करने के पश्चात् उलटे जाने योग्य है । जिला न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि तारीख 4 अगस्त, 1973 का विल विधिमान्य तौर पर निष्पादित नहीं हुआ था । वाद का 17 वर्षों तक विरोध किया गया और अब पक्षकारों को उसे पुनः खोलने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

10. **सिल्वरलाईन फोरम प्रा. लिमिटेड** बनाम **राजीव ट्रस्ट और एक अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "(10). यह सत्य है कि आदेश 21 का नियम 99 किसी व्यक्ति को तब तक उपलब्ध नहीं होता है जब तक कि उसे डिक्रीधारक द्वारा अचल संपत्ति से बेकब्जा नहीं कर दिया जाता है । नियम 101 में यह अनुध्यात है कि नियम 97 या नियम 99 के अधीन किसी आवेदन पर किसी कार्यवाही के पक्षकारों के बीच उद्‌भूत सभी प्रश्न निष्पादन न्यायालय द्वारा अवधारित किए जाएंगे, यदि ऐसे प्रश्न आवेदन का न्यायनिर्णयन करने के लिए सुसंगत हैं । डिक्री का तृतीय पक्षकार, जो प्रतिरोध करता है वह इस प्रकार नियम 101 की परिधि के भीतर आता है यदि डिक्री के निष्पादन में उसके द्वारा किए गए प्रतिरोध या बाधा के परिणामस्वरूप न्यायनिर्णयन करना अपेक्षित हो । निस्संदेह, यदि ऐसा प्रतिरोध निर्णीत ऋणी के वादकालीन अन्तरिती द्वारा किया गया है तो न्यायनिर्णयन का क्षेत्र इस प्रश्न तक ही सीमित होगा कि क्या वह ऐसा अन्तरिती है और उस मुद्‌दे के बारे में सकारात्मक

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1754.

निष्कर्ष निकालते हुए, निष्पादन न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि उसे नियम 102 में अन्तर्विष्ट स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए ऐसा प्रतिरोध करने का कोई अधिकार नहीं है । ऐसे अन्तरिती द्वारा आगे दलीलें उद्भूत करने का अपवर्जन, सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 52 में अन्तर्निहित हितकारी सिद्धांत पर आधारित है ।

जब, एक डिक्रीधारक, डिक्री के निष्पादन में प्रतिरोध की शिकायत करता है तो निष्पादन न्यायालय को इस पर न्यायनिर्णयन करना होता है । किन्तु, न्यायनिर्णयन करते समय न्यायालय ऐसे प्रश्न को ही अवधारित करने के लिए आबद्ध है जो ऐसी शिकायत पर कार्यवाही के पक्षकारों के बीच उद्भूत हुए हैं और ऐसे प्रश्नों को शिकायत का न्यायनिर्णय करने के लिए सुसंगत होना चाहिए ।

शब्द नियम 97 के अधीन आवेदन पर कार्यवाही में पक्षकारों के बीच उद्भूत होने वाले सभी प्रश्नों में मात्र ऐसे ही प्रश्न अंतर्वलित हैं जो उन पक्षकारों के बीच अवधारित करने के लिए वैध रूप से उद्भूत होते हैं । दूसरे शब्दों में, न्यायालय मात्र इस कारण से ही उस प्रश्न को अवधारित करने के लिए आबद्ध नहीं है कि ऐसा प्रश्न प्रतिरोधकर्ता द्वारा उद्भूत किए गए हैं । प्रश्न, जिसे निष्पादन न्यायालय अवधारित करने के लिए नियम 101 के अधीन आबद्ध है, दो शर्तें पूरी होनी चाहिए । प्रथमतः, यह है कि ऐसे प्रश्न पक्षकारों के बीच वैध रूप से उद्भूत होने चाहिए और द्वितीयतः, यह है कि ऐसे प्रश्न पक्षकारों के बीच विचार और अवधारित करने के लिए सुसंगत होने चाहिएं अर्थात् यदि बाधाकर्ता यह स्वीकार करता है कि वह वादकालीन अन्तरिती है तो उसके द्वारा उद्भूत प्रश्न अवधारित करने आवश्यक नहीं हैं । क्योंकि, वह मुकदमेबाजी से अनभिज्ञ था जबकि उसने संपत्ति क्रय की थी । इसी प्रकार, तृतीय पक्षकार, जो एक समनुदेशिती को डिक्रीधारक द्वारा किए गए अंतरण की वैधता को प्रश्नगत करता है, वह दावा नहीं कर सकता है कि वैधता के बारे में प्रश्न निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान विनिश्चित होने चाहिए । अतएव, यह आवश्यक है कि प्रतिरोधकर्ता या बाधाकर्ता द्वारा उद्भूत प्रश्न उनके और डिक्रीधारक के बीच वैध रूप से उद्भूत होने चाहिएं । संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 97(2) परिकल्पित न्यायनिर्णयन प्रक्रिया में, निष्पादन न्यायालय यह विनिश्चित कर सकता है कि क्या प्रतिरोधकर्ता या बाधाकर्ता द्वारा उद्भूत प्रश्न

पक्षकारों के बीच वैध रूप से उद्भूत हुए हैं । उक्त प्रश्न का उत्तर भी उपधारा में अनुध्यात न्यायनिर्णयन का परिणाम होता है ।

(12-13). यह स्पष्ट है कि निष्पादन न्यायालय यह विनिश्चित कर सकता है कि क्या प्रतिरोधकर्ता या बाधाकर्ता, डिक्री द्वारा आबद्ध व्यक्ति है और उसने संपत्ति खाली करने से इनकार कर दिया है । यह प्रश्न भी सभी प्रकार से संहिता, 1908 के आदेश 21 के नियम 97(2) में अनुध्यात न्यायनिर्णयन प्रक्रिया के भीतर आता है । इसमें उल्लिखित न्यायनिर्णयन में सविस्तार जांच या साक्ष्यों को एकत्रित करना आवश्यक रूप से अनिवार्य नहीं है । न्यायालय स्वीकृत तथ्यों पर या प्रतिरोधकर्ता द्वारा किए गए कथनों पर ही न्यायनिर्णयन कर सकता है । निस्संदेह, न्यायालय ऐसे अवधारण के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु पक्षकारों को निर्देश दे सकता है, यदि न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है ।"

11. अब, जहां तक बंधक मोचन के अभिवाक् का संबंध है, जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित है, उसे सिविल वाद में विचारण न्यायालय के समक्ष उठाया गया था । विचारण न्यायालय ने इस प्रभाव का विवाद्यक सं. 7 विरचित किया था और आवेदकों के विरुद्ध निष्कर्ष अभिलिखित किया था । यह अभिनिर्धारित किया था कि आवेदक समय बीतने के साथ वाद संपत्ति के स्वामी नहीं हुए थे । दोनों निचले न्यायालयों ने यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि उसी अभिवाक् को पुनः उठाने और वाद संपत्ति का कब्जा परिदान करने में विलम्ब के अभिवाक् को पुनः उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

12. आवेदकों के अनुसार, तारीख 17 जनवरी, 1964 को राम स्वरूप ने 542/- रुपए ऋण लिया था । राम स्वरूप के विरुद्ध सिविल वाद फाइल किया गया था । वाद डिक्री हुआ था और निष्पादन कार्यवाहियों में याचियों ने अद्यतन ब्याज सहित डिक्री रकम संदत्त किया था । इस अभिवाक् को विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल लिखित कथन में कभी भी उद्भूत नहीं किया गया था । इस अभिवाक् को सर्वप्रथम निष्पादन कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान उद्भूत किया गया था । रकम को तारीख 24 अगस्त, 1991 को संदत्त किया जाना कथित है । वर्तमान वाद तारीख 10 मई, 1995 को फाइल हुआ था । याचियों के लिए यह खुला था कि वे लिखित कथन में इस अभिवाक् को उद्भूत करते ।

13. **रफीक बीबी (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **सैय्यद वलीउद्दीन (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अभिवाक् जिसे डिक्री पारित करने के पूर्व उद्भूत नहीं किया गया है, उसे निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "10. निर्णीत ऋणी-अपीलार्थियों का यह अभिवाक् नहीं है कि न्यायालय, जिसने डिक्री पारित की है, को ऐसा करने की अधिकारिता नहीं थी । उनका यह पक्षकथन भी नहीं है कि किराएदारों की बेदखली के लिए मकान मालिक-प्रत्यर्थियों को दिल्ली एण्ड अजमेर अधिनियम या उत्तराधिकार राजस्थान अधिनियम के अर्थान्तर्गत बकाया किराए के संदाय में व्यतिक्रम का आधार उपलब्ध नहीं था । मात्र यह निवेदन किया गया है कि डिक्री पारित करने के पूर्व न्यायालय द्वारा किराएदार को बकाया किराया जमा करने का अवसर दिया जाना चाहिए था, जिसे नहीं दिया गया था । प्रथमतः, हम प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल के इस निवेदन में गुणागुण पाते हैं कि यह किराएदारों के लिए था कि वे इस बारे में आवेदन करते हुए, न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते ताकि वे अपने व्यतिक्रम के प्रभाव को समाप्त करते हुए, अवसर का लाभ उठाते जो प्रतिवादियों को वाद लम्बित रहने के दौरान किराया जमा करते हुए वाद हेतुक उद्भूत करता । ऐसा नहीं किया गया, किराएदार-अपीलार्थियों को डिक्री में कमी के बारे में कोई तर्क नहीं सुना जा सकता है । द्वितीयतः, इस महत्वपूर्ण अभिवाक् को स्वीकार करते हुए विधि की दृष्टि में, प्रक्रियात्मक अनियमितता को उजागर करने की ईप्सा करते हुए चुनौती दी जा सकती है जिसका बेहतर प्रभाव यह हो सकता था कि जिसके परिणामस्वरूप अवैध डिक्री पारित हो जाती किन्तु, यह स्वयमेव में ही बिना अधिकारिता या अकृतता के रूप में डिक्री की कोटि में नहीं आता है । अभिवाक्, जिसे निष्पादन कार्यवाहियों में तर्क देने की ईप्सा की गई है, डिक्री के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष किराएदारों द्वारा उद्भूत करना उपलब्ध था । ऐसा अभिवाक् डिक्री पारित करने के पूर्व उद्भूत नहीं किया गया और अब इसे

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 3789.

निष्पादन कार्यवाहियों के दौरान उद्भूत करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि वाद में पारित बेदखली की डिक्री का आरम्भ वर्ष 1956 में हुई थी और समेकित अंतिम डिक्री वर्ष 1986 में पारित हुई थी जो निष्पादन के लिए अभी तक लम्बित है ।"

14. अब, न्यायालय विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद द्वारा किए गए इस अंतिम निवेदन का उल्लेख करता है कि डिक्री अस्पष्ट है और इसमें विशिष्ट तत्वों का अभाव है । प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किया गया वाद, स्थायी व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ घोषणा करने या वैकल्पिक रूप में वाद भूमि के कब्जे की ईप्सा करने के लिए था । विद्वान् जिला न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 14 अगस्त, 1997 के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और प्रत्यर्थी के वाद को डिक्री कर दिया, यह घोषणा करते हुए वह श्री राम स्वरूप की पुत्री होने के नाते उसकी सम्पत्ति की उत्तराधिकारी है और वाद सम्पत्ति का कब्जा रखने की हकदार है । डिक्री विनिर्दिष्ट है और प्रत्यर्थियों को वाद सम्पत्ति का कब्जा लेने का आदेश दिया जाता है । निष्पादन न्यायालय ने निष्पादन आवेदन में आवेदकों द्वारा प्रस्तुत आक्षेपों पर सही ही न्यायनिर्णयन किया है । पृथक् तौर पर कोई विवाद्यक विरचित किया जाना अपेक्षित नहीं है क्योंकि संबंधित पक्षकार अपने मामले को जानते हैं । डिक्री विनिर्दिष्ट थी और निष्पादन किए जाने योग्य थी । निचले न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों में न तो कोई प्रतिकूलता है न ही कोई अवैधता है ।

15. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त विश्लेषणों और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, आवेदन में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

16. अभिलेखों को तुरन्त विचारण न्यायालय के पास वापस भेजा जाए । बिना विलम्ब किए पक्षकारों को अपने काउंसेल के माध्यम से तारीख 22 अगस्त, 2014 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

क.

नन्द लाल और एक अन्य

बनाम

मीना देवी और अन्य

तारीख 22 अगस्त, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 173 – यान दुर्घटना – दुर्घटना में यान में यात्रा करने वाले यात्री की मृत्यु होना – यात्री का मुफ्त यात्री होना साबित नहीं होना – दुर्घटना चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण कारित होना – दुर्घटना के समय चालक के पास वैध और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति होना – यान बीमाकृत होना – बीमा कम्पनी का प्रतिकर संदाय करने का दायित्व – यदि अभिलेख पर यह साबित कर दिया जाता है कि यान दुर्घटना, चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई है और यान में यात्रा कर रहा मृतक मुफ्त यात्री नहीं था तथा चालक के पास यान चलाते समय वैध और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी तो यान का बीमा करने वाली बीमा कम्पनी प्रतिकर संदाय करने के दायित्व से बच नहीं सकती है ।

वर्तमान मामले में, दावेदारों ने यानीय दुर्घटना के आहत होने के नाते, जो अभिकथित तौर पर चालक अर्थात् मेहर चन्द द्वारा अपराध करने वाले यान, रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी 31 बी 0298 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण तारीख 4 फरवरी, 2006 को गालू, पोस्ट आफिस चोरहट, तहसील सुन्दर नगर, जिला मंडी के निकट घटित हुई थी, दावा याचिका में दिए गए विवरणों के अनुसार, 25,00,000/- रुपए प्रतिकर मंजूर करने के लिए दावा याचिका फाइल की थी । स्वामी-चालक और बीमाकर्ता ने पृथक् उत्तर फाइल करते हुए दावा याचिका का विरोध किया । अधिकरण ने साक्ष्यों की संवीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदारों ने साक्ष्यों से यह साबित कर दिया है कि दुर्भाग्यपूर्ण रूप से, अपराध करने वाले यान से दुर्घटना घटित हुई थी जो इसके चालक अर्थात् मेहर चन्द के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण हुई थी ।

मृतक को क्षतियां कारित हुई थीं और जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । तद्नुसार, अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1 और 2 को दावेदारों के पक्ष में विनिश्चित किया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दावेदार 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर के साथ 7,85,000/- रुपए का प्रतिकर पाने के हकदार हैं और इसका दायित्व स्वामी और चालक पर डाला तथा बीमाकर्ता अर्थात् द न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी को दोषमुक्त कर दिया । विवाद्यक सं. 3 चालक के पक्ष में और बीमाकर्ता के विरुद्ध विनिश्चित किया तथा विवाद्यक सं. 4 बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि मृतक, मुफ्त यात्री के रूप में अपराध करने वाले यान में यात्रा कर रहा था । यह बीमाकर्ता के लिए था कि वह इसका अभिवाक् करता और यह साबित करता कि मृतक, मुफ्त यात्री के रूप में अपराध करने वाले यान में यात्रा कर रहा था जो ऐसा करने में असफल रहा । मामले के तथ्य यह हैं कि मृतक ने माल क्रय करने के अनुक्रम में एक दिन के लिए यान किराए पर लिया किन्तु इसके पूर्व कि वह माल क्रय कर पाता यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और मृतक की मृत्यु हो गई । स्वीकृततः, वह माल के स्वामी के रूप में यान में यात्रा कर रहा था न कि मुफ्त यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था । न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि मृतक, अप्राधिकृत/मुफ्त यात्री नहीं था । बीमा पालिसी की ऐसी कोई शर्तें साबित नहीं की गई हैं कि माल के स्वामी की जोखिम बीमा पालिसी में नहीं आती है और इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्भूत अभिवाक् में कोई सार नहीं है, जिसे तद्नुसार, नामंजूर किया जाता है । आक्षेपित अधिनिर्णय, जहां तक कि यह स्वामी और चालक पर दायित्व डालने से संबंधित है, अपास्त किया जाता है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बीमाकृत/ स्वामी और चालक ने जानबूझकर कोई भंग कारित नहीं किया है । बीमाकर्ता पर दायित्व डाला जाता है और उसे यह निर्देश दिया जाता है कि वह इस न्यायालय की रजिस्ट्री में आज से छह सप्ताह के भीतर अधिनिर्णीत रकम जमा करे । (पैरा 8, 9, 10 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] 2012 की एफ. ए. ओ. सं. 197 :
यूनाईटेड इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बनाम
कमला देवी और अन्य ; 8

[2011] 2011 ए. सी. जे. 1550 :
नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बनाम **कमला देवी और अन्य** । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की एफ. ए. ओ. सं. 63.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री अजय शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से श्री एच. एस. रांगणा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 5 की ओर से श्री प्रणीत गुप्ता, अधिवक्ता

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – यह अपील, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण-II, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा 2006 की एम. ए. सी. टी. सं. 56, शीर्षक श्रीमती मीना देवी और अन्य बनाम नन्द लाल और अन्य वाले मामले में पारित तारीख 17 नवम्बर, 2011 के अधिनिर्णय के विरुद्ध निदेशित है, जिसके द्वारा उन्होंने दावेदारों के पक्ष में और स्वामी तथा चालक के विरुद्ध प्रतिकर के रूप में 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज के साथ 7,85,000/- रुपए की रकम अधिनिर्णीत की थी (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "आक्षेपित अधिनिर्णय" कहा गया है) ।

2. बीमाकृत-स्वामी और चालक अर्थात् क्रमशः नन्द लाल और मेहर चन्द ने अपील ज्ञापन में लिए गए आधारों पर आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत किया । बीमाकर्ता अर्थात् द न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड ने किसी भी आधार पर आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत नहीं किया । इस प्रकार, बीमाकर्ता के बारे में यह अंतिम हो गया था ।

3. दावेदारों ने यानीय दुर्घटना के आहत होने के नाते, जो अभिकथित तौर पर चालक अर्थात् मेहर चन्द द्वारा अपराध करने वाले यान, रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी 31 बी 0298 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण तारीख 4 फरवरी, 2006 को गालू, पोस्ट आफिस चोरहट, तहसील सुन्दर नगर, जिला मंडी के निकट घटित हुई थी, दावा याचिका में दिए गए विवरणों के अनुसार, 25,00,000/- रुपए प्रतिकर मंजूर करने के लिए दावा याचिका फाइल की थी ।

4. स्वामी-चालक और बीमाकर्ता ने पृथक् उत्तर फाइल करते हुए दावा याचिका का विरोध किया ।

5. दावा याचिका में तारीख 17 जनवरी, 2008 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

(1) क्या मृतक नरसिंग की मृत्यु प्रत्यर्थी सं. 2 के द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण हुई थी, जैसा कि अभिकथित है ?

(2) यदि विवाद्यक सं. 1 को सकारात्मक रूप में साबित कर दिया जाता है तो क्या याची प्रतिकर पाने के हकदार हैं, यदि ऐसा है तो कितनी रकम और किससे ?

(3) क्या यान के चालक के पास दुर्घटना के समय पर विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी ?

(4) क्या प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के उल्लंघन में नहीं चलाई जा रही थी ?

(5) अनुतोष ।

6. पक्षकारों ने साक्ष्य प्रस्तुत किया । अधिकरण ने साक्ष्यों की संवीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदारों ने साक्ष्यों से यह साबित कर दिया है कि दुर्भाग्यपूर्ण रूप से, अपराध करने वाले यान से दुर्घटना घटित हुई थी जो इसके चालक अर्थात् मेहर चन्द के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के कारण हुई थी । मृतक को क्षतियां कारित हुई थीं और जिसके कारण उसकी मृत्यु हो गई थी । तद्नुसार, अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1 और 2 को दावेदारों के पक्ष में विनिश्चित किया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दावेदार 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर के साथ 7,85,000/- रुपए का प्रतिकर पाने के हकदार हैं और इसका दायित्व स्वामी और चालक पर डाला तथा बीमाकर्ता अर्थात् द न्यू इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी को दोषमुक्त कर दिया । विवाद्यक सं. 3 चालक के पक्ष में और बीमाकर्ता के विरुद्ध विनिश्चित किया तथा विवाद्यक सं. 4 बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया ।

7. बीमाकर्ता और दावेदारों ने विवाद्यक सं. 2 और 3 पर निकाले गए निष्कर्ष को प्रश्नगत नहीं किया है । इस प्रकार, इन विवाद्यकों पर अधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्ष कायम रखे जाते हैं और प्रतिकर की पर्याप्तता को भी विवादित नहीं किया गया है । तद्नुसार, अधिनिर्णीत रकम को भी पर्याप्त होना अभिनिर्धारित किया जाता है ।

8. विवाद्यक, मात्र विवाद्यक सं. 4 के बारे में है । अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि मृतक, मुफ्त यात्री के रूप में अपराध करने वाले यान में यात्रा कर रहा था । यह बीमाकर्ता के लिए था कि वह इसका अभिवाक् करता और यह साबित करता कि मृतक, मुफ्त यात्री के रूप में अपराध करने वाले यान में यात्रा कर रहा था जो ऐसा करने में असफल रहा । इस न्यायालय ने 2012 की एफ. ए. ओ. सं. 197 और इससे संबंधित मामले शीर्षक **यूनाईटेड इंडिया एश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **कमला देवी और अन्य**[1] वाले मामले में तारीख 1 अगस्त, 2014 के विनिश्चय में इसी सिद्धांत को अधिकथित किया है ।

9. मामले के तथ्य ये हैं कि मृतक ने माल क्रय करने के अनुक्रम में एक दिन के लिए यान किराए पर लिया किन्तु इसके पूर्व कि वह माल क्रय कर पाता यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और मृतक की मृत्यु हो गई । स्वीकृततः, वह माल के स्वामी के रूप में यान में यात्रा कर रहा था न कि मुफ्त यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था ।

10. इस न्यायालय के समक्ष इसी प्रकृति का एक मामला **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **कमला देवी और अन्य**[2] विचार के लिए आया और बीमाकर्ता की अपील को खारिज करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया कि बीमाकर्ता प्रतिकर संदाय करने के लिए दायी है । इस निर्णय के पैरा 8, 9, 10 और 11 यहां नीचे प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा :–

> "8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा लिया गया द्वितीय अभिवाक् यह है कि मृतक एक मुफ्त यात्री था, प्रत्यर्थी सं. 2/ इंश्योरेन्स कम्पनी द्वारा फाइल उत्तर का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि उन्होंने मात्र यह अभिवाक् किया था कि मृतक, स्वीकृततः बीमाकृत का कर्मचारी नहीं था और ट्रक में एक मुफ्त यात्री के रूप में यात्रा कर रहा था । इस प्रकार, यह निवेदन किया गया कि बीमा कम्पनी दायी नहीं थी । नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड **बनाम** चोलेटी भारतम्मा और अन्य (2008) 1 एस. सी. सी. 423 वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का भी अवलंब लिया गया, जिसमें यह अभिवाक् लिया गया था कि स्वामी स्वयं यान के केबिन में यात्रा कर रहा था न कि माल के साथ, ताकि धारा 147 के अधीन

---

[1] 2012 की एफ. ए. ओ. सं. 197.

[2] 2011 ए. सी. जे. 1550.

आ सके । तथापि, यदि चालक टूल बाक्स में एक यात्री को यात्रा करने देता है तो वह इस दायित्व से नहीं बच सकता है कि वह यान चलाने में उपेक्षा की थी और इसके अतिरिक्त, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क के अधीन याचिका में उतावलेपन या उपेक्षापूर्वक चलाना साबित नहीं हो सका है और इसलिए, यह विनिश्चय अपीलार्थी की कोई सहायता नहीं करता है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड **बनाम** माधी राम और अन्य (नवीनतम एच. एल. जे. 2009 (एच. पी.) 532) वाले मामले का भी अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया कि बीमा कम्पनी किसी भी व्यक्ति जिसमें माल का स्वामी या यान में माल ढोने के लिए उसका प्राधिकृत प्रतिनिधि सम्मिलित है, की मृत्यु या शारीरिक क्षति के संबंध में दायी होती है । यह मत व्यक्त किया कि यह प्रकट होता है कि दुर्घटना के समय पर साधारणतया यान में माल ढोया जा रहा था ।

10. याचियों द्वारा याचिका के साथ ही साक्ष्यों में यह अभिकथन किए गए हैं कि मृतक ट्रक को किराए पर लेने के पश्चात् अपनी सब्जियों के साथ उसमें गया था और उसी यान से वापस आ रहा था जब दुर्घटना घटित हुई थी । दावेदारों/प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 के विद्वान् काउंसेल ने नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड **बनाम** उर्मिला और अन्य (2008 ए. सी. जे. 1381) वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिया, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि एक यात्री अपने माल का विक्रय करने के पश्चात् वापस लौट रहा था जब यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण उलट गया था । बीमा कम्पनी इस आधार पर अपने दायित्व से बचने की ईप्सा की थी कि मृतक कभी भी माल का स्वामी नहीं था क्योंकि उसने माल का विक्रय कर दिया था । यह मत व्यक्त किया गया कि मृतक ने अपने जानवरों का विक्रय करने हेतु ले जाने के लिए यान किराए पर लिया था और उनका विक्रय करने के पश्चात् उसी यान से वापस लौट रहा था । यह अभिनिर्धारित किया गया कि मृतक तब तक यान में अप्राधिकृत/मुफ्त यात्री नहीं होता है जब तक कि वह उस स्थान पर नहीं पहुंच जाता है जहां से कि उसने यान को किराए पर लेता है ।

11. उपर्युक्त विनिश्चय स्पष्ट तौर पर, वर्तमान तथ्यों को लागू होते हैं जो मामले के तथ्यों के समान है और तद्नुसार, मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि मृतक, अप्राधिकृत/मुफ्त यात्री नहीं था । बीमा पालिसी की ऐसी कोई शर्तें साबित नहीं की गई हैं कि माल के स्वामी की जोखिम बीमा पालिसी में नहीं आती है और इस प्रकार, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा उद्भूत अभिवाक् में कोई सार नहीं है, जिसे तद्नुसार, नामंजूर किया जाता है ।"

11. यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अधिकरण ने उस निर्णय (उपर्युक्त) का उल्लेख नहीं किया है जिसे तारीख 6 अगस्त, 2009 को दिया गया था । इस प्रकार, आक्षेपित अधिनिर्णय, कमला (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के अनुसरण में नहीं है जो बाद का है ।

12. ऐसा कथित करते हुए, आक्षेपित अधिनिर्णय, जहां तक कि यह स्वामी और चालक पर दायित्व डालने से संबंधित है, अपास्त किया जाता है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बीमाकृत/स्वामी और चालक ने जानबूझकर कोई भंग कारित नहीं किया है । बीमाकर्ता पर दायित्व डाला जाता है और उसे यह निर्देश दिया जाता है कि वह इस न्यायालय की रजिस्ट्री में आज से छह सप्ताह के भीतर अधिनिर्णीत रकम जमा करे ।

13. रजिस्ट्री को यह निर्देश दिया जाता है कि वह अपीलार्थियों द्वारा जमा रकम को उनके पक्ष में अवमुक्त करे और बीमाकर्ता द्वारा जमा किए जाने वाले रकम को अदाता चैक के माध्यम से दावेदारों के पक्ष में समुचित शनाख्त करने के पश्चात् अवमुक्त करें ।

14. आक्षेपित अधिनिर्णय उपर्युक्त उपदर्शित रूप में उपांतरित किए जाते हैं और अपील, लम्बित आवेदनों, यदि कोई हों, के साथ निपटाई जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

———————

विपन कुमार

बनाम

श्रीमती देवकी देवी और अन्य

तारीख 17 अक्तूबर, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 और 173 – दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा अपने दायित्व से इनकार – बीमा कंपनी बीमाकृत व्यक्ति के किसी दोष के कारण अपने दायित्व से भले ही इनकार करे तथापि, वह प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायित्वाधीन है – तथापि, वह पालिसी की शर्तों के भंग के आधार पर बीमाकृत से ऐसी धनराशि वसूल सकती है ।

बीमाकृत-स्वामी ने देवकी देवी और अन्य बनाम विपन कुमार के रूप में शीर्षक वाली मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 9/2004 आर. बी. टी., 25.5.2004 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, फास्ट ट्रेक न्यायालय, ऊना, जिला ऊना, हिमाचल प्रदेश द्वारा दिए गए तारीख 21 अगस्त, 2009 के अधिनिर्णय पर प्रश्न उठाया है जिसके द्वारा दावा याचिका फाइल करने की तारीख से 7.5 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 3,30,000/- रुपए की राशि के प्रतिकर प्राप्त होने तक दावेदारों-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के पक्ष में अधिनिर्णय किया जाना था, जिससे व्यथित होकर अपील फाइल की गई है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्तमान मामले में इस न्यायालय ने इसी सिद्धांत पर बहुत से निर्णय भी सुनाए हैं । बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि राम पाल स्वामी का अटर्नी धारक था । इस प्रकार, उसका अभिकथन विचार में नहीं लिया जा सकता है । विद्वान् काउंसेल का तर्क कारण के लिए किसी भी प्रकार से बल रहित है कि अधिकरणों को किसी दावा को सरसरी तौर पर जितना संभव हो सके शीघ्र विनिश्चय करना होता है और प्रक्रियात्मक लड़ाई और उलझन तथा रहस्यवादी की, को भूमिका नहीं होती है । अधिकरणों का यह भी कर्तव्य है कि दावेदारों को सामाजिक बुराई अर्थात् गरीबी और अन्य बुराई से उनको बचाने के उद्देश्य से अनुतोष दिया जाए जो दुर्घटना के कारण अभागी और मजबूर हो गए हैं । तथापि, मैंने दावा याचिका के पृष्ठ 119 पर जनरल पावर ऑफ अटर्नी प्रदर्श आर.

डब्ल्यू. 2/ए का परिशीलन किया है जिसका खुलासा किया है कि अटर्नी धारक श्री राम पाल स्वामी की ओर से सभी कार्य और कर्तव्य करने के लिए प्राधिकृत था जिसे विधि के अनुसार उसे ऐसा करने के लिए माना जाता है । जैसा ऊपर कहा गया है कि अधिकरण ने बीमाकर्ता-बीमा कंपनी को वसूली का अधिकार देने में गलती की है । तद्नुसार, यह अभिनिर्धारित किया है कि बीमाकर्ता को क्षतिपूर्ति करनी है । इस प्रक्रम पर, श्री पवन गौतम, अधिवक्ता ने यह अभिकथन किया है कि दावेदारों की अपील लंबित रहने के कारण मृत्यु हो गई है और दावेदारों के पक्ष में जमा की गई धनराशि मौजूद है । यह समुचित उपचार मांगना दावेदारों के विधि प्रतिनिधियों/विधिक उत्तराधिकारियों के लिए है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित अधिनिर्णय को संशोधित किया जाता है जैसा ऊपर निर्देशित किया गया है । अपील का निपटारा किया जाता है । (पैरा 18, 19, 20, 21, 22, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013] (2013) 10 एस. सी. सी. 217 :
पेप्सू सड़क परिवहन निगम बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी** ; 17

[2004] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 :
नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य** । 16

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की एफ. ए. ओ. (एम. वी. ए.) सं. 470.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री ओंकार जयस्थ

प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 से (जो अब मृत है) की ओर श्री पवन गौतम

प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से एकपक्षीय

प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से श्री प्रनीत गुप्ता

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – बीमाकृत-स्वामी ने देवकी देवी

और अन्य बनाम विपन कुमार के रूप में शीर्षक वाली मोटर दुर्घटना दावा याचिका संख्या 9/2004 आर. बी. टी. तारीख 25.5.2004 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, त्वरित निपटान न्यायालय, उना, जिला उना, हिमाचल प्रदेश (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा दिए गए तारीख 21 अगस्त, 2009 के अधिनिर्णय पर प्रश्न उठाया है, 3,30,000/- रुपए की राशि के प्रति का जिसके द्वारा दावा याचिका फाइल करने की तारीख से प्रतिकर की प्राप्ति तक 7.5 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज सहित दावेदारों-प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के पक्ष में अधिनिर्णय किया गया था, (जिसे इसमें "आक्षेपित अधिनिर्णय" कहा गया है) ।

2. बीमाकर्ता-स्वामी ने इस आधार पर आक्षेपित अधिनिर्णय पर प्रश्न किया है कि उसने जानबूझकर कोई उल्लंघन नहीं किया है । चूंकि उसने सभी सावधानियां बरतने के बाद चालक को नियोजित किया था । इस प्रकार, अधिकरण ने इसमें बीमाकृत-प्रत्यर्थी सं. 4 को वसूली का अधिकार प्रदान करने में गलती की है ।

3. दावेदारों, चालक और बीमाकर्ता ने आक्षेपित निर्णय पर किसी प्रकार का प्रश्न नहीं किया है, इस प्रकार, जहां तक इनका संबंध अधिनिर्णय से है, वह अन्तिम हो गया है ।

4. इस अपील में, निर्धारित किए जाने वाला प्रश्न केवल यह है कि क्या अधिकरण ने इसमें बीमाकर्ता-प्रत्यर्थी सं. 4 को वसूली करने का अधिकार देकर सही किया है । इसका उत्तर निम्नलिखित कारणों के लिए नकारात्मक है :–

5. दावेदारों ने दावा याचिका में दिए गए ब्रेकअप्स के अनुसार 80,00,000/- रुपए की राशि के प्रतिकर को मंजूर करने के लिए अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल की थी ।

6. स्वामी और चालक अर्थात् विपन कुमार और रंजीत सिंह ने आपत्तियों के अपने ज्ञापन में लिए गए आधारों पर दावा याचिका का विरोध किया था । उनके अनुसार, चालक के पास दुर्घटना के समय विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति थी और यान बीमाकर्ता-बीमा कंपनी से विधिवत रूप से बीमाकृत था ।

7. बीमाकर्ता ने उस आधार पर दावा याचिका का विरोध किया है कि स्वामी ने ऐसे चालक को नियोजित करके, जिसके पास विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी, जानबूझकर उल्लंघन किया है ।

8. अधिकरण ने निम्नलिखित विवाद्यकों को विरचित किया है :–

"1. क्या मृतक धर्म पाल की मृत्यु, जैसा अभिकथित किया गया है कि गांव गलोग, तहसील और जिला सोलन में तारीख 19 सितम्बर, 2003 को लगभग 8 बजे प्रातः प्रत्यर्थी सं. 2 रंजीत सिंह द्वारा ट्रक संख्या एच.पी.-20ए-3465 को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी?.... ओ.पी.पी.

2. यदि विवाद्यक संख्या 1 सकारात्मक में साबित हो जाता है कि क्या याची प्रतिकर के लिए हकदार हैं, यदि हां, तो कितना और किस किस से ? ....ओ.पी.पी.

3. क्या दावा याचिका अधूरी, अस्पष्ट है और अधिकथित रूप से किसी वाद हेतुक को प्रकट नहीं करती, यदि ऐसा है तो उसके क्या प्रभाव हैं ? .... ओ.पी.आर 3

4. क्या उल्लंघन करने वाले चालक के पास अधिकथित प्रश्नगत दुर्घटना के समय विधिमान्य और प्रभावी अनुज्ञप्ति नहीं थी, तो उसके क्या प्रभाव हैं? ... ओ.आर.पी. 3

5. क्या प्रश्नगत यान के पास अधिकथित रूप से रूट परमिट और फिटनस प्रमाणपत्र नहीं था, यदि ऐसा है तो उसके क्या प्रभाव हैं ?..... ओ.आर.पी. 3

6. क्या याचिका अधिकथित रूप से आवश्यक पक्षकारों के कुसंयोजन से दूषित है ? ओ.आर.पी. 3

7. क्या मृतक अधिकथित रूप से दुर्घटना के समय प्रश्नगत यान में मुफ्त यात्री था, यदि हां तो इसके क्या प्रभाव हैं ?.... ओ.आर.पी. 3

8. अनुतोष ।"

9. दावेदारों ने हेड कांस्टेबल सुनील कुमार (पी. डब्ल्यू. 1), श्रीमती उर्मिला नड्डा (पी. डब्ल्यू. 2) और श्री प्रीतम कुमार (पी. डब्ल्यू. 4) की परीक्षा की थी । दावेदारों में से एक अर्थात् श्रीमती देवकी देवी पी. डब्ल्यू. 2 के रूप में साक्षी बाक्स में पेश हुई थी । बीमाकर्ता ने अनुज्ञापन प्राधिकारी के करने वाले अधिकारी अर्थात् आर. डब्ल्यू. 1 संपूर्ण सिंह और आर. डब्ल्यू. 3 श्रीमती अमरजीत कौर की परीक्षा की थी । स्वामी ने आर. डब्ल्यू. 2 के रूप में अपने अटर्नी धारक श्री रामपाल की परीक्षा कराई थी ।

10. इसमें विवाद्यक संख्या 1 से 3 और 5 से 7 के संबंध में कोई विवाद नहीं है । तद्नुसार, इन विवाद्यकों पर अधिकरण द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को बरकरार रखा है ।

11. विवाद विवाद्यक संख्या 4 के रूप में उस सीमा तक है कि प्रतिकर की राशि किससे वसूल की जानी है ।

12. बीमाकर्ता-बीमा कंपनी ने अपने साक्षियों अर्थात् आर. डब्ल्यू. 1 संपूर्ण सिंह और आर. डब्ल्यू. 3 श्रीमती अमरजीत कौर की परीक्षा की है जिन्होंने यह अभिकथन किया है कि चालन अनुज्ञप्ति का चालक रंजीत सिंह के नाम में नवीकरण हुआ था और वह आर. डब्ल्यू. 2/बी के रूप में प्रदर्शित है ।

13. आर. डब्ल्यू. 2, रामपाल स्वामी के जनरल पावर ऑफ अटर्नी ने अभिसाक्ष्य दिया है कि उसने रंजीत सिंह की चालन अनुज्ञप्ति की परीक्षा की थी, उसने यह सुनिश्चित करने के लिए सभी कदम उठाए थे कि क्या वह चालन के लिए सक्षम था और उसके पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति थी और सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए संतुष्ट हो जाने के पश्चात् रंजीत सिंह को चालक के रूप नियोजित किया था । दुर्भाग्यवश, अधिकरण ने इस तथ्य पर बहस नहीं की है । इस प्रकार आक्षेपित अधिनिर्णय अवगुण से पीड़ित है और विधिविरुद्ध है ।

14. स्वामी और चालक द्वारा फाइल किए गए उत्तर के पैरा 7 का परिशीलन करते हुए, एक अपरिहार्य यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वामी और उसके अटर्नी धारक ने ऐसे सभी कदम उठाए थे जो किसी चालक को नियोजित करते समय उठाए जाने अपेक्षित थे ।

15. बीमाकर्ता ने इस आशय का कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है कि स्वामी ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के आदेश के निबंधनों का कोई जानबूझकर उल्लंघन किया है ।

16. यह अभिवाक् और साबित करने का दायित्व बीमाकर्ता का था कि चालक अपराध करने वाले यान को चलाने के लिए सक्षम नहीं था । इसके अन्यथा भी, यदि बीमाकर्ता ने अपने इस दायित्व का निर्वहन किया होता तो भी उसे आगे यह भी साबित करना पड़ता कि स्वामी ने जानबूझकर उल्लंघन किया है, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531.

अभिनिर्धारित किया गया है । निर्णय के पैरा 105 का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

"105. .....

(i).....

(ii) .....

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए बीमाकृत व्यक्ति द्वारा पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को साबित किया जाना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समय पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा था ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व से बचने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को भी सिद्ध करना चाहिए ; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) .....

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है वहां उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व से बचने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि जिनके कारण दुर्घटना हुई है । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(2) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित "मूल भंग" की संकल्पना और "मुख्य प्रयोजन के नियम" को

लागू करेंगे ।

17. इसमें **पेप्सू सड़क परिवहन निगम** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी**[1] वाले मामले में उच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय के पैरा 10 को प्रस्तुत करना भी लाभदायक है, जो इस प्रकार है :–

> "10. प्रतिकर के किसी दावे में, बीमाकर्ता के पास प्रतिरक्षा धारा 149(2)(क)(ii) के अधीन यह प्रतिरक्षा लेने का विकल्प निश्चित रूप से खुला है कि दुर्घटना में शामिल यान के चालक के पास सम्यक् अनुज्ञप्ति नहीं थी । एक बार ऐसी प्रतिरक्षा ले ली जाती है तो उसका भार बीमाकर्ता पर होता है । किन्तु यदि उसके बाद यह साबित हो जाता है कि चालक के पास जाली अनुज्ञप्ति थी तो वहां यह प्रश्न कि क्या बीमाकर्ता का दायित्व है, यह अनुत्तरित प्रश्न है । जहां तक यान के स्वामी का संबंध है जब वह चालक को रखता है तो उसे यह जांच करनी होती है कि क्या चालक के पास विधिमान्य अनुज्ञप्ति है । तत्पश्चात् उसे स्वयं को चालक की क्षमता से संतुष्ट करना होता है । यदि वह इस संबंध में संतुष्ट हो गया है तो यह कहा जा सकता है कि स्वामी ने व्यक्ति को नियोजित करने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है जो यान चलाने के लिए अर्हित और सक्षम है । स्वामी से उस चालक की सेवाएं किराए पर लेने से पूर्व इससे अधिक यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह अनुज्ञप्ति प्राधिकारी से चालन अनुज्ञप्ति की सत्यता का सत्यापन करवाए । तथापि, स्थिति उस समय भिन्न हो जाएगी यदि यान के बीमा के समय पर या तत्पश्चात् बीमा कंपनी यान के स्वामी की ज्ञापन प्राधिकारी से चालन अनुज्ञप्ति की विधिवत् जांच चाहती है या यदि यान के स्वामी का ध्यान ऐसे अन्य आरोप के लिए आकर्षित किया जाता है कि उसके द्वारा नियोजित चालक को जारी की गई अनुज्ञप्ति जाली है और फिर भी स्वामी ने अनुज्ञापन प्राधिकारी से अनुज्ञप्ति की सत्यता के संबंध में मामले की जांच के लिए उचित कार्रवाई नहीं की है । इसकी व्याख्या स्वर्ण सिंह वाले मामले में की गई है । यदि स्वामी के पास ऐसी जानकारी होने के बावजूद कि उसके चालक द्वारा रखी गई अनुज्ञप्ति जाली है तो उचित जांच के लिए बीमाकृत व्यक्ति द्वारा कोई कार्रवाई नहीं हुई है तो तत्पश्चात् यह बीमाकृत की गलती होगी, ऐसी परिस्थितियों में, बीमा कंपनी प्रतिकर के लिए दायी नहीं है ।"

---

[1] (2013) 10 एस. सी. सी. 217.

18. इस न्यायालय ने इसी सिद्धांत पर बहुत से निर्णय भी सुनाए हैं ।

19. बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया है कि राम पाल, स्वामी का अटर्नी धारक था इसलिए, उसका अभिकथन विचार में नहीं लिया जा सकता है ।

20. विद्वान् काउंसेल का तर्क इस कारण के लिए किसी भी प्रकार से बल रहित है कि अधिकरणों को किसी दावा याचिका का विनिश्चय संक्षिप्त रूप से यथासंभव शीघ्र करना होता है और प्रक्रियात्मक लड़ाई और उलझन तथा रहस्यमयी संभावनाओं की कोई भूमिका नहीं होती है । अधिकरणों का यह भी कर्तव्य है कि वे दावेदारों को सामाजिक बुराई अर्थात् गरीबी और अन्य बुराई से उनको बचाने के उद्देश्य से अनुतोष दिया जाए जो दुर्घटना के कारण असहाय और मजबूर हो गए हैं ।

21. तथापि, मैंने दावा याचिका के पृष्ठ 119 पर जनरल पावर आफ अटार्नी प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/ए का परिशीलन किया है जो यह प्रकट करती कि अटर्नी धारक श्री राम पाल स्वामी की ओर से सभी कार्य और कर्तव्य करने के लिए प्राधिकृत था, जिन्हें विधि के अनुसार उसके द्वारा किया जाना चाहिए ।

22. जैसा ऊपर कहा गया है कि अधिकरण ने बीमाकर्ता-बीमा कंपनी को वसूली का अधिकार देने में गलती की है । तद्नुसार, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि बीमाकर्ता को क्षतिपूर्ति करनी होगी ।

23. इस प्रक्रम पर, श्री पवन गौतम, अधिवक्ता ने यह अभिकथन किया है कि दावेदारों की अपील लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है और दावेदारों के पक्ष में धनराशि जमा की गई है । अब समुचित उपचार मांगना दावेदारों के विधिक प्रतिनिधियों/विधिक उत्तराधिकारियों का उत्तरदायित्व है ।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित अधिनिर्णय को संशोधित किया जाता है जैसा ऊपर निर्देशित किया गया है । अपील का निपटारा किया जाता है ।

25. निर्णय की प्रति को अभिलेख पर रखने के पश्चात् अभिलेख को वापस भेजा जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./पु.

संजय मदान और एक अन्य

बनाम

नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी

तारीख 29 दिसम्बर, 2014

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा और न्यायमूर्ति सुरेश्वर ठाकुर

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 (1940 का 10) – धारा 39 – अपील – आग लगने से प्रश्नगत सम्पत्ति का नष्ट होना – प्रश्नगत सम्पत्ति का बीमाकृत होना – बीमा कम्पनी द्वारा मान्य एवं विधिपूर्ण तरीके से नष्ट सम्पत्ति का आकलित क्षतिपूर्ति का एक समझौते के अधीन संदाय करना – प्रभावित व्यक्तियों द्वारा क्षतिपूर्ति धनराशि प्राप्त करना – समझौते को कपट या प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के आधार पर चुनौती देना – चुनौती नामंजूर करना – यदि बीमा कम्पनी द्वारा आग से नष्ट हुई सम्पत्ति का मान्य एवं विधिपूर्ण तरीके से आकलित क्षतिपूर्ति की धनराशि का एक समझौते के अधीन संदाय कर दिया जाता है और प्रभावित व्यक्ति उक्त समझौते के अधीन धनराशि प्राप्त कर लेते हैं तो बाद में कपट या प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या दुर्व्यपदेशन के आधार पर उक्त प्राप्ति को चुनौती नहीं दे सकते हैं जब तक कि अन्यथा साबित नहीं कर दिया जाता है क्योंकि उक्त समझौता पूर्ण और अंतिम समझा जाएगा ।

वर्तमान मामले में, आवश्यक तथ्य यह है कि तारीख 21 फरवरी, 1992 की रात्रि में, जब बीमा पालिसी प्रवर्तन में थी तो अपीलार्थियों के बीमाकृत गृह में आग लग गई थी । गृह आग से पूरी तरह जल गया था जिसमें जुड़ी हुई, संबद्ध वस्तुएं इत्यादि भी मौजूद थीं । प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी के विरुद्ध प्रतिकर के लिए 36,00,000/- रुपए का दावा किया गया । बीमा कम्पनी द्वारा पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया था । पर्यवेक्षक ने तारीख 18 अगस्त, 1992 की अपनी रिपोर्ट द्वारा 26,09,668/- रुपए का दावा निर्धारित किया । अपीलार्थियों को तारीख 18 फरवरी, 1993 की प्राप्ति रसीद द्वारा 10,00,000/- रुपए संदत्त किए गए और एक अन्य तारीख 23 अगस्त, 1993 की प्राप्ति रसीद द्वारा 16,09,666/- रुपए संदत्त किए गए । अपीलार्थियों ने दावाकृत शेष बीमा रकम के रूप में 9,30,332/- रुपए का दावा करते हुए बीमा कम्पनी के ऊपर तारीख 5 सितम्बर, 1993 को

एक नोटिस प्रदर्श सी. आर. 1 तामील किया । अपीलार्थियों ने माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिया और 2 मध्यस्थों में से एक दावेदारों द्वारा और एक बीमा कम्पनी द्वारा नियुक्त किया गया । अपीलार्थियों ने मध्यस्थ के रूप में श्री आर. एल. सूद को नियुक्त किया जबकि बीमा कम्पनी ने महाराज बख्श सिंह को नियुक्त किया । श्री महाराज बख्श सिंह ने तारीख 24 जुलाई, 2003 को अपना एक पृथक् अधिनिर्णय दिया । इसके पश्चात् श्री आर. एल. सूद ने तारीख 28 अप्रैल, 2004 को अपना अधिनिर्णय दिया । श्री महाराज बख्श सिंह ने अपीलार्थियों को कोई रकम अधिनिर्णीत नहीं की । श्री आर. एल. सूद ने दावेदारों द्वारा दावा किए गए अन्तर को, अर्थात् 9,30,332/- रुपए आग लगने की घटना के तुरन्त पश्चात् अधिनिर्णीत किया और बीमा कम्पनी द्वारा पर्यवेक्षक की रिपोर्ट के आधार पर रकम संदत्त की गई । चूंकि मध्यस्थ एक मत नहीं थे, इसलिए, मामले को निर्णायक को निर्दिष्ट किया गया । निर्णायक ने तारीख 12 दिसम्बर, 2004 के अधिनिर्णय द्वारा श्री आर. एल. सूद के अधिनिर्णय से सहमति जताई और श्री आर. एल. सूद द्वारा अधिनिर्णीत रकम को ब्याज और खर्चे सहित अधिनिर्णीत किया । बीमा कम्पनी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल किया गया । न्यायालय ने तारीख 23 दिसम्बर, 2005 के आदेश द्वारा आक्षेपों को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन आक्षेप कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि, पुराने अधिनियम अर्थात् माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंध इस मामले में लागू नहीं होते हैं । श्री आर. एल. सूद ने मध्यस्थों में से एक होने के नाते माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 14 के अधीन इस न्यायालय में अधिनिर्णय फाइल किया । न्यायालय द्वारा दोनों पक्षकारों को नोटिसें जारी की गईं । अपीलार्थियों ने न्यायालय नियम के अधीन निर्णायक के अधिनिर्णय को लागू करने के लिए आवेदन किया जबकि बीमा कम्पनी ने आक्षेप फाइल किया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बीमा कम्पनी द्वारा फाइल आक्षेपों को स्वीकार कर लिया और अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया । इन परिस्थितियों में, तारीख 15 सितम्बर, 2010 के निर्णय के विरुद्ध माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 39 के अधीन वर्तमान अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि आग, तारीख 21 फरवरी, 1992 की रात्रि में लगी थी । बीमाकृत गृह आग से जल गया

था । 36,00,000/- रुपए का दावा प्रस्तुत किया गया था । पर्यवेक्षक ने तारीख 18 अगस्त, 1993 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी । उसने 26,09,668/- रुपए का दावा अभिनिर्धारित किया था । अपीलार्थियों ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्राप्ति के माध्यम से 16,09,668/- रुपए संदत्त कर दिए थे और तारीख 18 फरवरी, 1993 को एक अन्य प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/डी, प्राप्ति के माध्यम से 10,00,000/- रुपए भी संदत्त कर दिए थे । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्राप्ति की अन्तर्वस्तुओं से यह सुस्पष्ट होता है कि रकम को उस दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में स्वीकार किया गया था, जो तारीख 21 फरवरी, 1992 को लगी आग की दुर्घटना से उद्‌भूत हुए थे । न्यायालय ने तारीख 5 सितम्बर, 1993 के नोटिस, प्रदर्श सी. आर. 1, जिसे अभिलेख पुस्तिका के खंड III के पृष्ठ 289 पर दिया गया है, का परिशीलन किया । यद्यपि, नोटिस में यह उल्लिखित है कि प्रतिकर की रकम, अपीलार्थियों द्वारा अपने अधिकारों की प्रतिकूलता के बिना और प्रतिरक्षण के अधीन स्वीकार किया गया है तथापि, नोटिस प्रदर्श सी. आर. 1 में यह कथित नहीं है कि अपीलार्थियों ने प्राप्ति अर्थात् प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी को देने में प्रपीड़न किया था । न्यायालय ने तारीख 5 सितम्बर, 1993 के नोटिस प्रदर्श सी. आर. 2 का भी परिशीलन किया जिसके द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए निवेदन किया गया था । इस नोटिस में भी प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्राप्ति को प्राप्त करने में बीमा कम्पनी द्वारा कहीं भी प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या कपट या दुर्व्यपदेशन करने का उल्लेख नहीं किया गया है । न्यायालय ने तारीख 14 फरवरी, 1993 को मध्यस्थों के समक्ष फाइल दावे के कथन और तारीख 24 फरवरी, 1994 को बीमा कम्पनी द्वारा फाइल लिखित कथन का भी परिशीलन किया । दावा याचिका में ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया है कि बीमा कम्पनी ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्राप्ति को जारी करते समय असम्यक् प्रभाव, प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रयोग किया है । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री के. डी. सूद ने न्यायालय का ध्यान प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 4/ए की ओर दिलाया है, यह साबित करने के लिए कि बीमा कम्पनी ने असम्यक् प्रभाव, प्रपीड़न, कपट और दुर्व्यपदेशन का प्रयोग किया है । ए. डब्ल्यू. 4 संजय कुमार द्वारा फाइल शपथपत्र, अभिलेख पुस्तिका के खंड II के पृष्ठ 86 पर है । शपथपत्र में ऐसा कोई प्रकथन नहीं है कि बीमा कम्पनी ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्राप्ति प्राप्त करते समय असम्यक् प्रभाव का प्रयोग किया है । संजय कुमार ने प्रतिवादी साक्षी 4 के रूप में उपस्थित होते हुए यह

विनिर्दिष्टतया अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके शपथपत्र का मुख्य परीक्षा में परिशीलन किया जा सकता था, जो अभिलेख पुस्तिका के खंड II के पृष्ठ 116 पर है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि 16,09,668/- रुपए की द्वितीय अदायगी की प्राप्ति के पश्चात् उसने, उसे संदत्त प्रतिकर के बारे में बीमा कम्पनी/उच्चतर प्राधिकारियों के समक्ष कोई विरोध लिखित कथन दर्ज नहीं कराया था न ही उसने उनसे सम्पर्क स्थापित किया था । उसने सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि प्राप्ति जारी करने के समय पर उसे उनके द्वारा कोई धमकी नहीं दी गई थी । स्वैच्छिक रूप से, उन्होंने उसे यह बताया था कि वे संदाय तभी करेंगे यदि उनके द्वारा प्ररूप प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी पर हस्ताक्षर किए जाएंगे । उसने रकम प्राप्त करने से कभी भी इनकार नहीं किया । उसके अनुसार, उसने सादे कागज पर हस्ताक्षर किए थे । उसकी अर्हता बी. काम है और वह सादे कागजों पर हस्ताक्षर करने का परिणाम जानता है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि दावा याचिका में यह अभिवाक् नहीं किया गया था कि प्ररूप प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी को उनसे हस्ताक्षरित प्राप्त किया गया था । जैसा कि इसमें उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, दावा याचिका में प्रदर्श सी. आर. 1 और प्रदर्श सी. आर. 2 में कोई आक्षेप नहीं किए गए हैं और दावा याचिका के साथ फाइल शपथपत्र में भी कोई आक्षेप नहीं किए गए हैं । अपीलार्थी संजय मदान बी. काम, स्नातक है । उससे यह प्रत्याशा नहीं थी कि एक स्नातक व्यक्ति सादे कागजों पर हस्ताक्षर करेगा । उसने यह स्वीकार किया है कि उसे संदाय प्राप्ति के समय पर कोई धमकी नहीं दी गई थी न ही उन्होंने उच्चतर प्राधिकारियों के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी । इस प्रकार, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्रपीड़न, कपट और दुर्व्यपदेशन का परिणाम नहीं था । अपीलार्थी संजय मदान ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी में एक शब्द भी फेरफार नहीं किया है, जिसे ए. डब्ल्यू. 4 के रूप में उपस्थित होते हुए प्रपीड़न का परिणाम कहा था । न्यायालय ने यह भी उल्लिखित किया है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार, अपीलार्थियों ने तारीख 21 फरवरी, 1992 की आग की दुर्घटना से उद्भूत अपने दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में धन प्राप्त कर लिया था । इस प्रकार, उन्होंने बीमा पालिसी के दायित्व के बारे में प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी को पूर्णतया उन्मोचित कर दिया है । एक बार जब बीमा कम्पनी को पूर्णतया उन्मोचित कर दिया जाता है, जैसा कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा प्राप्ति प्रदर्श पी.

डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार उल्लिखित किया गया है तो कोई विवाद शेष नहीं बचता है जिसे कि बीमा पालिसी के अधीन मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना अपेक्षित था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही ही मूल्यांकन किया है और यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि मध्यस्थ ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्रपीड़न का परिणाम है । विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद ने यह जोरदार तर्क दिया कि दावेदारों ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार, विरोध के अधीन संदाय प्राप्त किया है । मात्र शब्द "डब्ल्यू. पी." लिख देने से ही अपीलार्थी दावे को पुनः उठाने के हकदार नहीं हो जाते जबकि उन्होंने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी निष्पादित किया था जिसमें यह स्पष्टतः और विनिर्दिष्टतः लिखित है कि धन को बीमा पालिसी के अधीन दुर्घटना से उद्भूत अपने दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में प्राप्त किया गया है । वर्तमान मामले में, जैसा कि न्यायालय पहले ही चर्चा कर चुका है, अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि प्राप्ति को उन परिस्थितियों के अधीन प्राप्त किया गया था जो असम्यक् प्रभाव, कपट या मिथ्याव्यपदेशन के रूप में समझा जा सकता है । (पैरा 9, 10, 11, 12 और 18)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	2010 (10) स्केल 205 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **हरि सिंह** ;	19
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 170 : **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **मैसर्स भोगरा पालीफैब प्रा. लिमिटेड** ;	21
[2008]	(2008) 5 एस. सी. सी. 400 : **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **सेहतिया सूज** ;	17
[1999]	(1999) 6 एस. सी. सी. 400 : **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स** बनाम **अजमेर सिंह काटन एण्ड जनरल मिल्स और अन्य** ;	16

[1999] ए. आई. आर. 1999 दिल्ली 105 :
मैसर्स बैश ब्रदर्स एण्ड कम्पनी बनाम **भारत संघ और एक अन्य ;** 20

[1995] (1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 324 :
नथनी स्टील लिमिटेड बनाम **एसोशिएटेड कान्सट्रक्शन्स ;** 15

[1994] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 83 :
महाराष्ट्र राज्य बनाम **नव भारत बिल्डर्स ;** 13

[1994] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 126 :
मैसर्स पी. के. रमैया एण्ड कम्पनी बनाम **चेयरमैन एण्ड मैनेजिंग डायरेक्टर, नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन** । 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की माध्यस्थम् अपील सं. 14.

माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 39 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री के. डी. सूद, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ नरेश कुमार शर्मा, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अश्वनी कुमार, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजीव शर्मा ने दिया ।

न्या. शर्मा – यह अपील, माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 39 के अधीन विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा 2006 की माध्यस्थम् वाद सं. 16 में पारित तारीख 15 सितम्बर, 2010 के निर्णय के विरुद्ध संस्थित की गई है ।

2. इस अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक तथ्य यह हैं कि तारीख 21 फरवरी, 1992 की रात्रि में, जब बीमा पालिसी प्रवर्तन में थी तो अपीलार्थियों के बीमाकृत गृह में आग लग गई थी । गृह आग से पूरी तरह जल गया था जिसमें जुड़ी हुई, संबद्ध वस्तुएं इत्यादि भी मौजूद थीं । प्रत्यर्थी-बीमा कम्पनी के विरुद्ध प्रतिकर के लिए 36,00,000/- रुपए का दावा किया गया । बीमा कम्पनी द्वारा पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया था । पर्यवेक्षक ने तारीख 18 अगस्त, 1992 की अपने रिपोर्ट द्वारा 26,09,668/- रुपए का दावा निर्धारित किया । अपीलार्थियों को तारीख 18

फरवरी, 1993 की प्राप्ति रसीद द्वारा 10,00,000/- रुपए संदत्त किए गए और एक अन्य तारीख 23 अगस्त, 1993 की प्राप्ति रसीद द्वारा 16,09,666/- रुपए संदत्त किए गए । अपीलार्थियों ने दावाकृत शेष बीमा रकम के रूप में 9,30,332/- रुपए का दावा करते हुए बीमा कम्पनी के ऊपर तारीख 5 सितम्बर, 1993 को एक नोटिस प्रदर्श सी. आर. 1 तामील किया । अपीलार्थियों ने माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिया और 2 मध्यस्थों में से एक दावेदारों द्वारा और एक बीमा कम्पनी द्वारा नियुक्त किया गया । अपीलार्थियों ने मध्यस्थ के रूप में श्री आर. एल. सूद को नियुक्त किया जबकि बीमा कम्पनी ने महाराज बख्श सिंह को नियुक्त किया । श्री महाराज बख्श सिंह ने तारीख 24 जुलाई, 2003 को अपना एक पृथक् अधिनिर्णय दिया । इसके पश्चात् श्री आर. एल. सूद ने तारीख 28 अप्रैल, 2004 को अपना अधिनिर्णय दिया । श्री महाराज बख्श सिंह ने अपीलार्थियों को कोई रकम अधिनिर्णीत नहीं की । श्री आर. एल. सूद ने दावेदारों द्वारा दावा किए गए अन्तर को, अर्थात् 9,30,332/- रुपए आग लगने की घटना के तुरन्त पश्चात् अधिनिर्णीत किया और बीमा कम्पनी द्वारा पर्यवेक्षक की रिपोर्ट के आधार पर रकम संदत्त की गई । चूंकि मध्यस्थ एक मत नहीं थे, इसलिए, मामले को निर्णायक को निर्दिष्ट किया गया । निर्णायक ने तारीख 12 दिसम्बर, 2004 के अधिनिर्णय द्वारा श्री आर. एल. सूद के अधिनिर्णय से सहमति जताई और श्री आर. एल. सूद द्वारा अधिनिर्णीत रकम को ब्याज और खर्चे सहित अधिनिर्णीत किया ।

3. बीमा कम्पनी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल किया गया । न्यायालय ने तारीख 23 दिसम्बर, 2005 के आदेश द्वारा आक्षेपों को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अधीन आक्षेप कायम रखे जाने योग्य नहीं है क्योंकि, पुराने अधिनियम अर्थात् माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के उपबंध इस मामले में लागू नहीं होते हैं ।

4. श्री आर. एल. सूद ने मध्यस्थों में से एक होने के नाते माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 14 के अधीन इस न्यायालय में अधिनिर्णय फाइल किया । न्यायालय द्वारा दोनों पक्षकारों को नोटिसें जारी की गईं । अपीलार्थियों ने न्यायालय नियम के अधीन निर्णायक के अधिनिर्णय को लागू करने के लिए आवेदन किया जबकि बीमा कम्पनी ने आक्षेप फाइल

किया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या मध्यस्थ और निर्णायक पृथक् अधिनिर्णय फाइल करने के हकदार थे, जैसा कि अधिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

2. क्या मध्यस्थों ने माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 42 के अनुसार अधिनिर्णय फाइल नहीं किए हैं ?

3. क्या मध्यस्थ का अधिनिर्णय परिसीमा अवधि के परे फाइल किया गया था, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

4. क्या आक्षेप, परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किए गए हैं, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

5. क्या मध्यस्थ ने अपने क्षेत्राधिकार के परे कार्य किया है, जैसा कि अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

6. क्या मामले को गलत तौर पर मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया गया है और उसे उसका विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

7. अनुतोष ।"

5. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने बीमा कम्पनी द्वारा फाइल आक्षेपों को स्वीकार कर लिया और अधिनिर्णय को अपास्त कर दिया । इन परिस्थितियों में, तारीख 15 सितम्बर, 2010 के निर्णय के विरुद्ध माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 39 के अधीन वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

6. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद के अनुसार, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अभिलेख पर साबित तथ्यों का गलत परिशीलन किया है और उनसे गलत निष्कर्ष निकाला है । उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्वान् एकल न्यायाधीश के यह निष्कर्ष कि प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन का कोई अभिवाक् नहीं किया गया है, अभिलेखों के प्रतिकूल है । उनके अनुसार, रकम का प्रतिकूलता के बिना विनिर्दिष्ट तौर पर दावा किया गया है और "डब्ल्यू. पी. " लिखा गया है क्योंकि बीमा कम्पनी ने उस रकम का

संदाय नहीं किया है और निर्मुक्त नहीं किया है ।

7. श्री अश्वनी के. शर्मा ने तारीख 15 सितम्बर, 2010 के निर्णय का समर्थन किया है ।

8. हमने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना व अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया ।

9. इसमें उपर्युक्त वर्णित तथ्यों से यह प्रकट होता है कि आग, तारीख 21 फरवरी, 1992 की रात्रि में लगी थी । बीमाकृत गृह आग से जल गया था । 36,00,000/- रुपए का दावा प्रस्तुत किया गया था । पर्यवेक्षक ने तारीख 18 अगस्त, 1993 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी । उसने 26,09,668/- रुपए का दावा अभिनिर्धारित किया था । अपीलार्थियों ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्राप्ति के माध्यम से 16,09,668/- रुपए संदत्त कर दिए थे और तारीख 18 फरवरी, 1993 को एक अन्य प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/डी, प्राप्ति के माध्यम से 10,00,000/- रुपए भी संदत्त कर दिए थे । प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्राप्ति की अन्तर्वस्तुओं से यह सुस्पष्ट होता है कि रकम को उस दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में स्वीकार किया गया था, जो तारीख 21 फरवरी, 1992 को लगी आग की दुर्घटना से उद्भूत हुए थे ।

10. हमने, तारीख 5 सितम्बर, 1993 के नोटिस, प्रदर्श सी. आर. 1, जिसे अभिलेख पुस्तिका के खंड III के पृष्ठ 289 पर दिया गया है, का परिशीलन किया । यद्यपि, नोटिस में यह उल्लिखित है कि प्रतिकर की रकम, अपीलार्थियों द्वारा अपने अधिकारों की प्रतिकूलता के बिना और प्रतिरक्षण के अधीन स्वीकार किया गया है तथापि, नोटिस प्रदर्श सी. आर. 1 में यह कथित नहीं है कि अपीलार्थियों ने प्राप्ति अर्थात् प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी को देने में प्रपीड़न किया था । हमने, तारीख 5 सितम्बर, 1993 के नोटिस प्रदर्श सी. आर.-2 का भी परिशीलन किया जिसके द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए निवेदन किया गया था । इस नोटिस में भी प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्राप्ति को प्राप्त करने में बीमा कम्पनी द्वारा कहीं भी प्रपीड़न या असम्यक् प्रभाव या कपट या दुर्व्यपदेशन करने का उल्लेख नहीं किया गया है । हमने, तारीख 14 फरवरी, 1993 को मध्यस्थों के समक्ष फाइल दावे के कथन और तारीख 24 फरवरी, 1994 को बीमा कम्पनी द्वारा फाइल लिखित कथन का भी परिशीलन किया । दावा याचिका में ऐसा कोई अभिकथन नहीं किया गया है कि बीमा कम्पनी ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी

प्राप्ति को जारी करते समय असम्यक् प्रभाव, प्रपीड़न, कपट या दुर्व्यपदेशन का प्रयोग किया है ।

11. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता, श्री के. डी. सूद ने न्यायालय का ध्यान प्रदर्श ए. डब्ल्यू. 4/ए की ओर दिलाया है, यह साबित करने के लिए कि बीमा कम्पनी ने असम्यक् प्रभाव, प्रपीड़न, कपट और दुर्व्यपदेशन का प्रयोग किया है । ए. डब्ल्यू. 4 संजय कुमार द्वारा फाइल शपथपत्र, अभिलेख पुस्तिका के खंड II के पृष्ठ 86 पर है । शपथपत्र में ऐसा कोई प्रकथन नहीं है कि बीमा कम्पनी ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्राप्ति प्राप्त करते समय असम्यक् प्रभाव का प्रयोग किया है । संजय कुमार ने प्रतिवादी साक्षी 4 के रूप में उपस्थित होते हुए यह विनिर्दिष्टतया अभिसाक्ष्य दिया है कि उसके शपथपत्र का मुख्य परीक्षा में परिशीलन किया जा सकता था, जो अभिलेख पुस्तिका के खंड II के पृष्ठ 116 पर है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया है कि 16,09,668/- रुपए की द्वितीय अदायगी की प्राप्ति के पश्चात् उसने, उसे संदत्त प्रतिकर के बारे में बीमा कम्पनी/उच्चतर प्राधिकारियों के समक्ष कोई विरोध लिखित कथन दर्ज नहीं कराया था न ही उसने उनसे सम्पर्क स्थापित किया था । उसने सुस्पष्टतः यह स्वीकार किया है कि प्राप्ति जारी करने के समय पर उसे उनके द्वारा कोई धमकी नहीं दी गई थी । स्वैच्छिक रूप से, उन्होंने उसे यह बताया था कि वे संदाय तभी करेंगे यदि उनके द्वारा प्ररूप प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी पर हस्ताक्षर किए जाएंगे । उसने रकम प्राप्त करने से कभी भी इनकार नहीं किया । उसके अनुसार, उसने सादे कागज पर हस्ताक्षर किए थे । उसकी अर्हता बी. काम है और वह सादे कागजों पर हस्ताक्षर करने का परिणाम जानता है । उसने यह भी स्वीकार किया है कि दावा याचिका में यह अभिवाक् नहीं किया गया था कि प्ररूप प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी को उनसे हस्ताक्षरित प्राप्त किया गया था । जैसा कि इसमें उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, दावा याचिका में प्रदर्श सी. आर. 1 और प्रदर्श सी. आर. 2 में कोई आक्षेप नहीं किए गए हैं और दावा याचिका के साथ फाइल शपथपत्र में भी कोई आक्षेप नहीं किए गए हैं । अपीलार्थी संजय मदान बी. काम, स्नातक है । उससे यह प्रत्याशा नहीं थी कि एक स्नातक व्यक्ति सादे कागजों पर हस्ताक्षर करेगा । उसने यह स्वीकार किया है कि उसे संदाय प्राप्ति के समय पर कोई धमकी नहीं दी गई थी न ही उन्होंने उच्चतर प्राधिकारियों के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी । इस प्रकार, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने

यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी, प्रपीड़न, कपट और दुर्व्यपदेशन का परिणाम नहीं था । अपीलार्थी संजय मदान ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी में एक शब्द भी फेरफार नहीं किया है, जिसे ए. डब्ल्यू. 4 के रूप में उपस्थित होते हुए प्रपीड़न का परिणाम कहा था । हमने यह भी उल्लिखित किया है कि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार, अपीलार्थियों ने तारीख 21 फरवरी, 1992 की आग की दुर्घटना से उद्‌भूत अपने दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में धन प्राप्त कर लिया था । इस प्रकार, उन्होंने बीमा पालिसी के दायित्व के बारे में प्रत्यर्थी बीमा कम्पनी को पूर्णतया उन्मोचित कर दिया है । एक बार जब बीमा कम्पनी को पूर्णतया उन्मोचित कर दिया जाता है, जैसा कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार उल्लिखित किया गया है तो कोई विवाद शेष नहीं बचता है जिसे कि बीमा पालिसी के अधीन मध्यस्थ को निर्दिष्ट किया जाना अपेक्षित था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मौखिक के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्यों का सही ही मूल्यांकन किया है और यह सही ही निष्कर्ष निकाला है कि मध्यस्थ ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी प्रपीड़न का परिणाम है ।

12. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद ने यह जोरदार तर्क दिया कि दावेदारों ने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी के अनुसार, विरोध के अधीन संदाय प्राप्त किया है । मात्र शब्द "डब्ल्यू. पी." लिख देने से ही अपीलार्थी दावे को पुनः उठाने के हकदार नहीं हो जाते जबकि उन्होंने प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी निष्पादित किया था जिसमें यह स्पष्टतः और विनिर्दिष्टतः लिखित है कि धन को बीमा पालिसी के अधीन दुर्घटना से उद्‌भूत अपने दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में प्राप्त किया गया है ।

13. **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **नव भारत बिल्डर्स**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब ठेकेदार को उसे संदत्त रकम की प्राप्ति की अभिस्वीकृति थी और यह कथित था कि उसने श्रम वृद्धि के संबंध में वाद में अपने दावे को बिना शर्त वापस ले लिया था तो यह दावे का पूर्ण और अंतिम समझौता था और तद्‌द्वारा, श्रम वृद्धि के संबंध में कोई माध्यस्थम् विवाद नहीं रह गया था । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 83.

"4. यह प्रतीत होता है कि जहां तक श्रम वृद्धि के दावों का संबंध है, सरकार द्वारा गठित उप-समिति की रिपोर्ट के पैरा 8 में अभिव्यक्त तौर पर निम्नलिखित उल्लिखित है –

'यह विनिश्चय भी निम्नलिखित शर्तों के अध्यधीन है –

(i) ठेकेदार विहित प्ररूप में एक स्वीकृति पत्र सरकार को देगा, इस प्रभाव का कि ठेकेदार उक्त दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में और ठेकेदार और सरकार के बीच आपसी समझौते के माध्यम से इसमें अन्तर्विष्ट निबंधनों और शर्तों के अनुसार उसे प्रस्थापित रकम स्वीकार करने के लिए सहमत है ।

(ii) स्वीकृति पत्र भाग प्ररूप में होगा और इसे हमेशा ही संविदा के भाग प्ररूप में समझा जाएगा ।

(iii) इस तथ्य के होते हुए भी कि क्या ठेकेदार ने सरकार के इस प्रस्थापना को स्वीकार किया है या नहीं, किसी भी दशा में ठेकेदार किसी विवाद में दावा करने या अभिवाक् करने का हकदार नहीं होगा कि ठेकेदार उक्त दावे के संबंध में मध्यस्थ न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष विवाद्यक उठा सकता है, इस प्रभाव का कि इस पत्र के अधीन सरकार द्वारा प्रस्थापित रकम ठेकेदार को सरकार द्वारा संदत्त किए जाने की सहमति बनी है या उक्त मध्यस्थ न्यायालय या ठेकेदार द्वारा दावे के अधिनिर्णयन करने के लिए आधार के रूप में वह रकम समझी जाएगी ।

(iv) प्रस्थापना, ठेकेदार द्वारा स्वीकृति के लिए तारीख 10 मार्च, 1989 तक खुला रहेगा । यदि ठेकेदार लिखित में तारीख 10 मार्च, 1989 तक या उससे पूर्व, सचिव (I), आई. डी. महाराष्ट्र सरकार को उसे प्रस्थापित प्रस्तावना की स्वीकृति या नामंजूर करने की सूचना देने में असफल रहता है तो वह पूर्वोक्त तारीख पर स्वतः ही लोप हो जाएगा और वह इसके पश्चात् सरकार के साथ ही ठेकेदार पर आबद्धकर नहीं होगा ।

(v) ठेकेदार को संदत्त की जानी वाली अंतिम रकम, उपर्युक्त पैरा 7 में परिगणित सिद्धांतों के आधार पर की गई वास्तविक गणना के पश्चात् ही निकाला जाएगा । भविष्य में

ठेकेदार को देय रकम भी तद्नुसार विनियमित होगा ।'

(9) आपसे यह निवेदन किया जाता है कि प्रस्थापना पर विचार करें और इसमें उपाबंध विहित प्ररूप में पूर्वोक्त तारीख को या उसके पूर्व प्रस्थापना की स्वीकृति या अन्यथा के बारे में अपने विनिश्चय को सचिव (I), सिंचाई विभाग, महाराष्ट्र सरकार को संसूचित करें । जैसे ही आपका स्वीकृति पत्र सरकार द्वारा प्राप्त किया जाएगा वैसे ही पूर्वोक्त रूप में दावे की वास्तविक रकम की गणना करने के पश्चात् देय रकम संदत्त कर दी जाएगी ।'

इसमें के पैरा 9 के अनुसरण में, जब प्रस्थापना पर विचार करते हुए प्रत्यर्थी अपना विकल्प देता है और तारीख 3 मार्च, 1989 के अपने पत्र में प्रस्थापना की स्वीकृति या अन्यथा के बारे में अपना विनिश्चय संसूचित करता है तो वह विनिर्दिष्टतया निम्नलिखित कथन करेगा –

> 'मैं, श्रम अवयव के एवज में मूल्य वृद्वि के लिए ऐसी रकम को स्वीकार करने के लिए सहमत हूं जो न्यूनतम मजदूरियों के आधार पर श्रम अवयव के बारे में मूल्य वृद्धि का संदाय करने के लिए मेरे पत्र सं. एन. वी. वी./डिम्भे/1013/322/864, तारीख 18 सितम्बर, 1986 के अधीन मेरे द्वारा प्रस्तुत मेरे दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में पूर्वोक्त सरकारी पत्र के अधीन यथाप्रस्थापित सिद्धांतों के आधार पर निकाला जाएगा ।
>
> इसके पश्चात्, रकम संदत्त कर दी गई थी और उसने रकम की प्राप्ति की अभिस्वीकृति दे दी थी और जैसा कि पूर्व में भी उसने यह कथन किया है कि वह बिना शर्त श्रम वृद्धि के संबंध में वाद में अपने दावे को वापस लेता है । इस प्रकार, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि दावे का पूर्ण और अंतिम समझौता हो गया है और प्रत्यर्थी ने समझौते के अनुरूप और समाधानप्रद रूप में रकम स्वीकार कर ली है और तद्द्वारा श्रम वृद्धि के बारे में कोई माध्यस्थम् विवाद नहीं रह गया है ।'

6. अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री माधव रेड्डी ने यह दलील दी है कि तारीख 3 मार्च, 1989 के पत्र को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी ने मद सं. 1 के संबंध में सम्पूर्ण दावे को वापस लेना स्वीकार कर लिया था और यह कि इसलिए, इस एवज में कोई

माध्यस्थम् विवाद नहीं रह गया था । हम इस दलील में कोई सार नहीं पाते हैं । प्रत्यर्थी के सभी पत्रों में विभिन्न प्रक्रमों पर विनिर्दिष्टतः यह निर्दिष्ट था कि उसकी स्वीकृति मात्र श्रम वृद्धि के संबंध में है । इसलिए, कोई अन्य दावा जिसे प्रत्यर्थी, वाद में करना चाहता है । तो न्यायालय इस बात पर विचार करेगा कि क्या माध्यस्थम् के संदर्भ के लिए संविदा के अधीन कोई माध्यस्थम् विवाद उद्भूत होता है और यदि ऐसा होता है तो क्या प्रत्यर्थी यथादावाकृत कोई रकम पाने का हकदार है । इन मामलों का परिशीलन किया जाना है । तद्नुसार, अपील, पूर्ववर्ती कथित रूप में भागतः मंजूर की जाती है, किन्तु, इन परिस्थितियों में पक्षकारों को अपने खर्चे स्वयं वहन करने का निर्देश दिया जाता है ।"

14. **मैसर्स पी. के. रमैया एण्ड कम्पनी** बनाम **चेयरमैन एण्ड मैनेजिंग डायरेक्टर, नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब संविदा के पूर्ण और अंतिम समझौते में संदाय का स्वैच्छिक और बिना शर्त लिखित स्वीकृति में कर दिया जाता है तो उसी कार्य के संबंध में और रकम के लिए पश्चात्वर्ती दावा माध्यस्थम् विवाद्यक नहीं हो सकता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"6. उपर्युक्त माध्यस्थम् खंड के परिशीलन से यह स्पष्टतः सिद्ध होता है कि इसमें पूर्व उल्लिखित विनिर्देशों, डिजाइनों, रेखाचित्रों और अनुदेशों के अर्थान्वयन से संबंधित सभी प्रश्न और विवाद्यक तथा कार्य में प्रयुक्त कारीगरी और सामग्रियों की गुणवत्ता अथवा संविदा से उद्भूत या संबंधित किसी भी प्रकार के कोई अन्य प्रश्न, दावे, अधिकार, मामला या चीजें, चाहे जो भी हों, डिजाइनों, रेखाचित्रों, विनिर्देशों, आकलनों, निर्देशों, आदेशों या इन शर्तों या कार्य से संबंधित अन्यथा या उसके निष्पादन या उसके निष्पादन में असफलता, चाहे वे कार्य के दौरान उद्भूत हुए हों या उसकी समाप्ति या परित्याग से उद्भूत हुए हों, को एन. टी. पी. सी. लिमिटेड के महाप्रबन्धक के एकमात्र माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया जाएगा । उनकी असमर्थता या अनिच्छा व्यक्त करने पर सी. एम. डी. द्वारा नियुक्त अन्य माध्यस्थम् को विवाद्यक सौंपा जाएगा । इस प्रकार, यह स्पष्ट है

[1] (1994) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 126.

कि यदि कोई माध्यस्थम् विवाद्यक है तो इसे नामित माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया जाएगा । किन्तु, एक अवशिष्ट विवाद्यक मौजूद होना चाहिए । स्वीकृततः, अपीलार्थी को मापन की सत्यता के साथ ही अंतिम समझौते को लिखित में स्वीकार करने की जानकारी थी और उसने रकम स्वीकार की थी । इसलिए, निर्देश के लिए कोई माध्यस्थम् विवाद्यक उद्भूत नहीं होता है ।

8. उन तथ्यों पर, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि, संविदा की अंतिम तुष्टि के रूप में अभिकथित संदाय किया गया था फिर भी, प्रत्यर्थी ने दावे के समझौते को स्वीकार करते हुए, कोई प्राप्ति नहीं दी थी इसलिए, संदाय एकपक्षीय था, इसलिए, विवाद्यक अभी भी विद्यमान है और इसलिए, यह माध्यस्थम् योग्य विवाद्यक है और इसका निर्देश विधिमान्य है । एक (भान प्रकाश वाले) मामले में भी पूर्व और अंतिम समझौता नहीं हुआ था और संदाय की प्राप्ति प्राप्त नहीं की गई थी । एक अन्य (एल. के. आहूजा एण्ड कम्पनी वाले) मामले में, इस न्यायालय ने साधारण विधि अधिकथित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि बिल को विभाग द्वारा तैयार किया गया है तो दावा कमजोर होता है । यह समझौता और तुष्टि का मामला नहीं है अपितु यह दावे को बिना पूर्व नामंजूरी के परिसीमा से वर्जित होने का अभिवाक् है । इसलिए, इसके विनिश्चयाधार संक्षिप्ततः ही सहायता करते हैं । मात्र कलकत्ता उच्च न्यायालय ने ही एल. के. आहूजा एण्ड कम्पनी वाले मामले में अधिकथित विधि की व्यवस्था का अनुसरण किया । हमारे समक्ष यह दर्शित नहीं किया गया है कि मुख्य निर्माण प्रबन्धक माध्यस्थम् के लिए विवाद निर्दिष्ट करने के दायित्व या प्राधिकार के लिए सक्षम था । इसलिए, न तो उसके पत्र प्रत्यर्थी पर आबद्धकर थे न ही यह विबंधन के रूप में प्रवर्तनीय है । स्वीकृतः, पूर्व और अंतिम तुष्टि की लिखित में प्राप्ति द्वारा जानकारी थी और रकम को बिना शर्त स्वीकृत किया गया था । इस प्रकार, दावे की अंतिम समझौते द्वारा समझौता और तुष्टि हो गई थी । प्रपीड़न का पश्चात्वर्ती अभिकथन बाद में सोचे हुए विचार हैं और विवाद्यक के समझौते के ऊपर एक युक्ति देते हैं, संदाय की स्वीकृति और प्राप्ति स्वैच्छिक रूप से दी गई थी । रसेल की माध्यस्थम् पर 19वां संस्करण, पृष्ठ 396 पर यह कथित है कि समझौता और तुष्टि अधिनिर्णय की कार्यवाही में अभिवाचित की जा

सकती है और एक अच्छी प्रतिरक्षा गठित करेगी । तद्नुसार, हम यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अपीलार्थी को समझौते की जानकारी थी और उसने मापन को भी स्वीकार किया था और दावे के पूर्ण और अंतिम समझौते में रकम स्वीकार की थी, इसलिए, समझौते और तुष्टि हुए थे । माध्यस्थम्, को निदेश करने के लिए कोई माध्यस्थम् योग्य विवाद्यक विद्यमान नहीं हैं । इसलिए, उच्च न्यायालय इस एवज में अपने निष्कर्ष निकालने में सही है । अपीलें खारिज की जाती हैं, किन्तु, इन परिस्थितियों में, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

15. **नथनी स्टील लिमिटेड** बनाम **एसोशिएटेड कान्सट्रक्शन्स**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह पुनः दोहराया है कि जब एक बार संविदा में माध्यस्थम् खंड के अधीन आने वाले मामले के बारे में किसी विशिष्ट विवाद्यक या मतभेद के संबंध में पूर्ण और अंतिम समझौता हो जाता है और यह कि पक्षकारों द्वारा और उनके बीच विवाद्यक या मतभेद का अंतिम तौर पर निपटारा हो जाता है तो ऐसा विवाद्यक या मतभेद माध्यस्थम् विवाद्यक के रूप में शेष नहीं रह जाता है और माध्यस्थम् खंड का अवलंब नहीं लिया जा सकता है यद्यपि कतिपय अन्य मामलों के लिए संविदा अस्तित्व में रह सकती है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"3. अपीलार्थी ने हमारा ध्यान इस न्यायालय के दो विनिश्चयों की ओर आकर्षित किया है । प्रथम पी. के. रमैय्या एण्ड कम्पनी बनाम चेयरमैन एण्ड मैनेजिंग डायरेक्टर, नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन, तारीख 1 अक्तूबर, 1993 को विनिश्चित का है और द्वितीय महाराष्ट्र राज्य बनाम नवभारत बिल्डर्स, तारीख 4 फरवरी, 1994 को विनिश्चित का है । प्रथम उल्लिखित मामले में, पक्षकारों ने एक समझौते द्वारा अपने विवाद्यकों और मतभेदों को हल कर लिया था जिसके अनुसरण में संदाय करने की सहमति हुई थी और संविदा के पूर्ण और अंतिम समझौते को स्वीकार कर लिया गया था । इसके पश्चात्, उस समझौते की उपेक्षा करते हुए, माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेने की ईप्सा की गई और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त खंड के अधीन उसमें उल्लिखित कतिपय मामले माध्यस्थम् के माध्यम से निपटाए जा सकते थे किन्तु

[1] (1995) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 324.

जब वे एक बार पक्षकारों द्वारा और उनके बीच आपस में निपटा लिए गए और समझौते के अनुसार पूर्ण और अंतिम संदाय कर दिए गए तो उनके बीच कोई भी माध्यस्थम् विवाद्यक, चाहे जो भी हों, अस्तित्व में नहीं रह गए और इसलिए माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेना खुला नहीं रह गया है । द्वितीय उल्लिखित मामले में, प्रत्यर्थी-ठेकेदार को उसे संदत्त रकम की प्राप्ति की जानकारी थी और यह कथित था कि श्रम वृद्धि के संबंध में वाद में उसका दावा बिना शर्त वापस लिया गया था । इस प्रकार, दावे का पूर्ण और अंतिम समझौता हो गया था और यह दलील दी गई कि उसके संबंध में कोई माध्यस्थम् विवाद्यक शेष नहीं रहा । अन्य दावों, यदि कोई हों, और जो पक्षकारों द्वारा और उनके बीच निपटाए नहीं गए थे, उद्भूत किए जा सकते हैं और इस बात पर विचार किया जा सकता है कि क्या माध्यस्थम् को निर्देश करने के लिए संविदा के अधीन माध्यस्थम् विवाद्यक उद्भूत हुआ है । इस प्रश्न पर विचार करते हुए भी इस न्यायालय ने एक (पी. के. रमैय्या वाले) मामले में दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि शीर्षक 'श्रम वृद्धि' के अधीन दावे के संबंध में कोई माध्यस्थम् विवाद्यक शेष नहीं रहा जिसे कि माध्यस्थम् को निर्दिष्ट किया जा सके । इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि जब एक बार संविदा में माध्यस्थम् खंड के अधीन आने वाले किसी मामले के बारे में किसी विशिष्ट विवाद्यक या मतभेद के संबंध में पूर्ण और अंतिम समझौता हो जाता है और पक्षकारों द्वारा तथा उनके बीच उस विवाद्यक या मतभेद के बारे में अंतिम तौर पर समझौता हो जाता है तो ऐसा विवाद्यक या मतभेद माध्यस्थम् विवाद्यक के रूप में शेष नहीं रह जाता है और माध्यस्थम् खंड का अवलंब नहीं लिया जा सकता है यद्यपि कतिपय अन्य मामलों के लिए संविदा अस्तित्व में रह सकता है । तथापि, प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने एक (दामोदर वैली कारपोरेशन बनाम के. के. कर वाले) मामले में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय, विशेषकर उस निर्णय के पैरा 11 से 13 में व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियों का जोरदार अवलंब लिया । आरम्भ में ही यह इंगित किया जा सकता है कि इसी प्रकार का तर्क एक अन्य (रमैय्या वाले) मामले में भी इस विनिश्चय में की गई मताभिव्यक्तियों पर आधारित तर्क लिया गया था (पैरा 7 के द्वारा) । किन्तु उसे नामंजूर कर दिया गया था, यह अभिनिर्धारित करते हुए कि चूंकि तथ्यों के आधार पर

यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी ने दावे के समझौते को स्वीकार करते हुए कोई प्राप्ति नहीं दी थी इसलिए, दूसरी ओर से किया गया संदाय मात्र एकपक्षीय था और अतएव, संविदा में अवशिष्ट विवाद्यक और माध्यस्थम् खंड का अवलंब लिया जा सकता था । इसलिए, वह विनिश्चय तथ्यों के आधार पर विभेदनीय है । अन्यथा भी, हम यह महसूस करते हैं कि जब एक बार पक्षकार संविदा के अधीन उद्भूत किसी विवाद्यक या मतभेद के बारे में एक समझौता कर लेते हैं और उस विवाद्यक या मतभेद को पक्षकारों द्वारा या उनके बीच अंतिम समझौते के माध्यम से आपस में निपटा लेते हैं तो जब तक कि उस समझौते को समुचित कार्यवाहियों में अपास्त नहीं कर दिया जाता है तब तक पक्षकारों में से कोई भी उस समझौते की अवज्ञा नहीं सकता है, इस आधार पर कि यह एक भूल थी और माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेने के लिए आगे बढ़ता है । यदि संविदा की पवित्रता की अनुज्ञा दी जाती है तो यह समझौता भी एक संविदा होने के नाते पूर्ण रूप से समाप्त हो जाएगा और एक पक्षकार को उस समझौते के अधीन फायदा लेने का अधिकार मिल जाएगा और उसके बाद भूल के आधार पर बिना समझौते को अपास्त किए ऐसा ही प्रश्न उठेगा । इन परिस्थितियों में, हमारा यह विचार है कि चूंकि वर्तमान मामले में विवाद्यक या मतभेद को अंतिम तौर पर निपटा लिया गया था और समझौते के अनुसार, संदाय कर दिए गए थे तो प्रत्यर्थी के लिए यह खुला नहीं रह गया कि वह एकपक्षीय तौर पर समझौते का अस्तित्व में नहीं होना समझ सके और माध्यस्थम् खंड का अवलंब ले सके । इसलिए, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत गलत था ।"

16. **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेन्स** बनाम **अजमेर सिंह काटन एण्ड जनरल मिल्स और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मात्र उन्मोचन वाउचर के निष्पादन से ही उपभोक्ता, दी गई सेवा के व्यतिक्रम में संदत्त रकम से उद्भूत सेवा में कमी या पारिणामिक फायदों के संबंध में दावा प्रस्तुत करने से हमेशा ही वंचित नहीं होता है । उपभोक्ता, उन्मोचन वाउचर का निष्पादन होने के बावजूद, अधिनियम के अधीन अधिकरण या आयोग की

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 400.

यह तुष्टि करने की प्रास्थिति में होता है कि ऐसा उन्मोचन वाउचर या प्राप्ति उसे उन परिस्थितियों के अधीन प्राप्त हुई थी जिसे कपट या असम्यक् प्रभाव या मिथ्याव्यपदेशन या इसी प्रकार की समझी जा सकती है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "6. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया । यह सत्य है कि ब्याज का अधिनिर्णय, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन विनिर्दिष्टतः प्राधिकृत नहीं है । किन्तु, सोविन्टार्ग (इंडिया) लिमिटेड **बनाम** स्टेट बैंक आफ इंडिया (1992 की सिविल अपील सं. 823) विनिश्चय तारीख 11 अगस्त, 1999 (1999 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2878) में हमारे निर्णय को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि समुचित मामलों में अधिनियम के अधीन फोरम या आयोग, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अधीन युक्तियुक्त ब्याज अधिनिर्णीत करने के लिए प्राधिकृत है । मात्र उन्मोचन वाउचर के निष्पादन से ही उपभोक्ता, दी गई सेवा के व्यतिक्रम में संदत्त रकम से उद्भूत सेवा में कमी या पारिणामिक फायदों के संबंध में दावा प्रस्तुत करने से हमेशा ही वंचित नहीं होता है । उपभोक्ता, उन्मोचन वाउचर का निष्पादन होने के बावजूद, अधिनियम के अधीन अधिकरण या आयोग की यह तुष्टि करने की प्रास्थिति में होता है कि ऐसा उन्मोचन वाउचर या प्राप्ति उसे उन परिस्थितियों के अधीन प्राप्त हुई थी जिसे कपट या असम्यक् प्रभाव या मिथ्याव्यपदेशन या इसी प्रकार की समझी जा सकती है । यदि दिए गए मामले में, उपभोक्ता अधिनियम के अधीन प्राधिकारी का यह समाधान कर देता है कि उन्मोचन वाउचर कपट, मिथ्याव्यपदेशन, असम्यक् प्रभाव या इसी प्रकार की परिस्थितियों द्वारा आबद्धकर प्रपीड़क सौदेबाजी द्वारा प्राप्त की गई है तो प्राधिकारी, जिसके समक्ष शिकायत की गई है, द्वारा समुचित अनुतोष मंजूर करना न्यायानुमत होगा । तथापि, जहां ऐसे उन्मोचन वाउचर को इसमें उपर्युक्त उल्लिखित संदेहास्पद परिस्थितियों में से किसी परिस्थिति के अधीन प्राप्त करना साबित कर दिया जाता है तो अधिकरण या आयोग को प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अधीन समुचित अनुतोष मंजूर करना न्यायानुमत होगा । मात्र उन्मोचन वाउचर के निष्पादन और बीमा दावे की स्वीकृति से ही बीमाकृत को

बीमाकर्ता से आगे दावा करने से रोका नहीं जा सकता है अपितु, पूर्ववर्ती उल्लिखित परिस्थितियों के अधीन ही रोका जा सकता है । अधिनियम के अधीन गठित उपभोक्ता विवाद प्रतितोष पीठ और आयोग को भी उन्मोचन वाउचर जारी होने के बावजूद बीमा कम्पनियों के विरुद्ध दायित्व अधिरोपित करने की शक्ति होगी । ऐसा दावा, बीमा पालिसी में परिकल्पित बीमा संविदा के अधीन देय दायित्वों पर बीमा कम्पनियों के विरुद्ध दायित्व अधिरोपित करने के रूप में नहीं समझा जा सकता है । सेवा में कमी के बारे में प्रस्तुत दावा, अधिनियम की धारा 14 के अधीन होने के नाते बीमा पालिसी पर आधारित समझा जाएगा ।"

17. **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **सेहतिया सूज**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिधारित किया है कि समझौते के पश्चात् दावा फाइल करना वर्जित नहीं होता है जबकि रकम दावे के अंतिम समझौते के रूप में स्वीकार कर ली जाती है, किन्तु, यह साबित करना होता है कि विशिष्ट रकम स्वीकार करने का करार प्रपीड़न के कारण हुआ था । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"8. इसलिए, परिवाद फाइल करना वर्जित नहीं है किन्तु, यह साबित करना होता है कि विशिष्ट रकम स्वीकार करने का करार प्रपीड़न के कारण हुआ था । वर्तमान मामले में, इस सुसंगत कारक पर, जिला फोरम, राज्य आयोग और राष्ट्रीय आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट तौर पर विचार नहीं किया गया । यद्यपि, दावेदार-प्रत्यर्थी द्वारा लिए गए प्रपीड़न के अभिवाक् को अपीलार्थी द्वारा खंडन किया गया था । इस बारे में, कोई विवाद नहीं है कि उन्मोचन वाउचर, प्रत्यर्थी द्वारा हस्ताक्षरित था । इस बारे में न्यायनिर्णयन किया जाना था कि क्या उन्मोचन वाउचर स्वैच्छिक तौर पर हस्ताक्षरित किया गया था या प्रपीड़न के अधीन हस्ताक्षरित किया गया था । हम, मामले को नए सिरे से विचार करने के लिए जिला फोरम को वापस भेजते हैं । यह अच्छा होगा कि यथासंभव व्यवहार्य रूप से मामले का निपटारा किया जाए, अधिमानतः सितम्बर, 2008 के अंत तक ।"

---

[1] (2008) 5 एस. सी. सी. 400.

18. वर्तमान मामले में, जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि प्राप्ति को उन परिस्थितियों के अधीन प्राप्त किया गया था जो असम्यक् प्रभाव, कपट या मिथ्याव्यपदेशन के रूप में समझे जा सकते हैं ।

19. **भारत संघ और अन्य** बनाम **हरि सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब पक्षकारों द्वारा अनुपूरक करार के माध्यम से सम्पूर्ण रकम संदाय करने के पश्चात् पूर्ण और अंतिम उन्मोचन प्राप्त कर लिया जाता है जो ठेकेदार के पास बकाया और देय था, तो इसके पश्चात् ठेकेदार द्वारा माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेना न्यायानुमन नहीं होगा क्योंकि, माध्यस्थम् को निर्दिष्ट करने के लिए कोई माध्यस्थम् विवाद्यक नहीं रह जाता है । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "14. इस मामले में, न्यायालय ने इस न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णयों का अवलंब लिया और उन विधिक प्रतिपादनाओं को पुनः दोहराया जिन्हें कई निर्णयों में प्रतिपादित किया गया है जहां संविदा के दोनों पक्षकारों ने उस संविदा की लिखित में पुष्टि करते हुए पक्षकारों द्वारा पूर्ण और अंतिम उन्मोचन किया गया था और कोई भी बकाया दावा या विवाद्यक नहीं रह गया था और इसके पश्चात् मामले को माध्यस्थम् को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता था ।
>
> 15. माध्यस्थम् पर रसेल की विख्यात पुस्तक, 19वां संस्करण, पृष्ठ 396 पर यह कथित है कि समझौता और तुष्टि की अधिनिर्णय पर कार्रवाई में अभिवाक् किया जा सकता है और यह एक अच्छी प्रतिरक्षा गठित करता है ।
>
> 16. हमारे सुविचारित मत में, उपर्युक्त सुस्थिर विधिक प्रतिपादना के आधार पर कि जब पक्षकारों द्वारा अनुपूरक करार के माध्यम से सम्पूर्ण रकम संदाय करने के पश्चात् पूर्व और अंतिम उन्मोचन प्राप्त कर लिया जाता है जो ठेकेदार के पास बकाया और देय था तो उसके पश्चात् ठेकेदार द्वारा माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेना न्यायानुमत नहीं होगा क्योंकि माध्यस्थम् को निर्दिष्ट करने के लिए कोई माध्यस्थम् विवाद्यक नहीं रह जाता है ।"

---

[1] 2010 (10) स्केल 205.

20. **मैसर्स बैश ब्रदर्स एण्ड कम्पनी** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब कोई विवाद्यक अंतिम तौर पर निपटा लिया जाता है तो ऐसे विवाद्यक के संबंध में माध्यस्थम् खंड का अवलंब नहीं लिया जा सकता है, यद्यपि अन्य विवाद्यक अस्तित्व में रहते हैं । माननीय न्यायाधीशों ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "2. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल सुश्री ज्योति सिंह ने प्रथम मुद्दे पर यह दलील दी कि ठेकेदार ने अंतिम बिल पर हस्तक्षार किए हैं और अपने दावे की पूर्ण तुष्टि में संदाय प्राप्त किया है जिसे बाद में विवाद्यक के रूप में उद्भूत नहीं किया जा सकता है । उन्होंने नथनी स्टील लिमिटेड **बनाम** एसोशिएटेड कान्सट्रक्शन्स (1995) अनुपूरक 3 एस. सी. सी. 324, मैसर्स पी. के. रमैया एण्ड कम्पनी **बनाम** चैयरमैन एण्ड मैनेजिंग डायरेक्टर, नेशनल थर्मल पावर कार्पोरेशन 1994 (1) स्केल 1, महाराष्ट्र राज्य **बनाम** नव भारत बिल्डर्स (1994) अनुपूरक 3 एस. सी. सी. 83 का अपनी इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया कि जब एक बार संविदा में माध्यस्थम् खंड के अधीन आने वाले किसी मामले के बारे में किसी विशिष्ट विवाद्यक या मतभेद के संबंध में पूर्ण और अंतिम समझौता हो जाता है और पक्षकारों द्वारा तथा उनके बीच उस विवाद्यक या मतभेद के बारे में अंतिम तौर पर समझौता हो जाता है तो ऐसा विवाद्यक या मतभेद माध्यस्थम् विवाद्यक के रूप में शेष नहीं रह जाता है और माध्यस्थम् खंड का अवलंब नहीं लिया जा सकता है यद्यपि कतिपय अन्य मामलों के लिए संविदा अस्तित्व में रह सकता है । जब एक बार पक्षकार संविदा के अधीन उद्भूत किसी विवाद्यक या मतभेद के बारे में एक समझौता कर लेते हैं और उस विवाद्यक या मतभेद को पक्षकारों द्वारा या उनके बीच अंतिम समझौते के माध्यम से आपस में निपटा लेते हैं तो जब तक कि उस समझौते को समुचित कार्यवाहियों में अपास्त नहीं कर दिया जाता है तब तक पक्षकारों में से कोई भी उस समझौते की अवज्ञा नहीं कर सकता है, इस आधार पर कि यह एक भूल थी और माध्यस्थम् खंड का अवलंब लेने के लिए आगे बढ़ता है । यदि संविदा की पवित्रता की अनुज्ञा दी जाती है तो यह समझौता भी एक संविदा होने के नाते पूर्ण रूप से समाप्त हो जाएगा और एक पक्षकार को

[1] ए. आई. आर. 1999 दिल्ली 105.

उस समझौते के अधीन फायदा लेने का अधिकार मिल जाएगा और उसके बाद भूल के आधार पर बिना समझौते को अपास्त किए ऐसा ही प्रश्न उठेगा ।"

21. विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री के. डी. सूद ने **नेशनल इंश्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड** बनाम **मैसर्स भोगरा पालीफैब प्रा. लिमिटेड**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । इस मामले में, उन्मोचन वाउचर तारीख 21 मार्च, 2006 को प्रत्यर्थी को सौंपा गया था । यह हस्ताक्षरित था और इसके तत्काल पश्चात् अपीलार्थी को सौंपा गया था, यह जानकारी देते हुए कि बीमाकर्ता से पूर्ण और अंतिम समझौते के रूप में 2,33,94,964/- रुपए प्राप्त किया गया है और इस संदाय के प्रतिफल में अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को बीमा पालिसी के अधीन किसी हानि या क्षति से प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः उद्भूत होने वाले वर्तमान और भविष्य के सभी दायित्वों से उन्मुक्त कर दिया है । स्वीकृततः, उस तारीख को जब ऐसे उन्मोचन वाउचर पर हस्ताक्षर किए गए थे और प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए थे, तभी 2,33,94,964/- रुपए का संदाय किया गया था । यह संदाय वाउचर प्राप्त करने के पश्चात् किया गया था ।

22. वर्तमान मामले में, रकम का विनिर्दिष्ट तौर पर प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/सी और प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/डी में उल्लेख किया गया है । इस प्रकार, श्री के. डी. सूद द्वारा अवलंब लिया गया उपर्युक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता है ।

23. तद्नुसार, इसमें उपर्युक्त रूप से विश्लेषण और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस अपील में कोई गुणागुण नहीं है और इसे खारिज किया जाता है । लम्बित आवेदन, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

---

[1] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 170.

अशोक कपूर

बनाम

मुर्तू देवी

तारीख 24 जून, 2015

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 227 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 का नियम 1 और 2 तथा 4] – रिट – व्यादेश – संयुक्त संपत्ति का विभाजन नहीं होना – संयुक्त स्वामियों में एक का सम्पूर्ण संपत्ति पर कब्जा होना – कब्जाधारी स्वामी द्वारा अपने अंश से अधिक भाग पर निर्माण कार्य आरम्भ करना – निर्माण कार्य अन्य सह-स्वामियों की सहमति के बिना और विभाजन करवाए बिना किया जाना – निर्माण कार्य रोकने के लिए अन्य सह-स्वामियों द्वारा व्यादेश के लिए वाद फाइल करना – व्यादेश मंजूर होना – इसके विरुद्ध रिट फाइल होना – रिट नामंजूर होना – यदि संयुक्त स्वामित्व वाली भूमि में से कोई एक सह-अंशधारी द्वारा उसका विभाजन करवाए बिना और अन्य सह-स्वामियों की सहमति लिए बिना अपने अंश से अधिक भूमि पर निर्माण करता है तो वह अवैध और अविधिमान्य होगा और ऐसे निर्माण को रोकने के लिए व्यादेश या आदेश मंजूर करना विधिमान्य और विधिसम्मत होता है ।

वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-वादी ने मुहल परसा फती शालीन कोठी, मनाली, तहसील मनाली, जिला कुल्लू में स्थित वाद भूमि खसरा सं. 877 और 878 में समाविष्ट, खाता सं. 10 के खतौनी सं. 10, माप 0-04-49 हेक्टेयर भूमि और खाता सं. 107 के खतौनी सं. 168 में अन्तर्विष्ट खसरा सं. 876 में समाविष्ट माप 0-02-85 हेक्टेयर भूमि के ऊपर कोई भी निर्माण करने से याची/प्रतिवादी को अवरुद्ध करते हुए, घोषणा और व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था । यह अभिकथित था कि वाद भूमि पहले 1/2 अंश तक दीनू राम और 1/2 अंश तक बराबर हिस्सों में श्री चेतू और धालू के स्वामित्व और कब्जे में थी । यह अभिकथित था कि याची दीनू का उत्तराधिकारी था और उसने राजस्व कर्मचारियों की मिली-भगत से गलत तौर पर वाद भूमि में अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया था । यह कथित था कि वाद भूमि संयुक्त थी और 1/4 अंश तक प्रत्यर्थी के कब्जे में थी

और गलत राजस्व प्रविष्टियों के बहाने याची ने वाद भूमि का विभाजन करवाए बिना जून, 2012 में वाद भूमि पर निर्माण करना आरम्भ कर दिया था, जबकि विभाजन होने तक उक्त निर्माण कराने का उसे कोई अधिकार नहीं था क्योंकि यह राष्ट्रीय राजमार्ग पर वाद भूमि का एक अत्यधिक मूल्यवान भाग था । याची ने उत्तर फाइल करते हुए आवेदन का विरोध किया, जिसमें यह अभिकथित किया कि आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह भी अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी वाद भूमि में कब्जे सहित संयुक्त स्वामी नहीं है और अनन्य कब्जे का दावा किया । यह भी अभिकथित किया कि याची ने फरवरी, 2012 में निर्माण आरम्भ किया था और उसके निर्माण पर 7,00,000/- रुपए से अधिक खर्च कर चुका है । याची ने वाद भूमि पर प्रत्यर्थी के कब्जे से इनकार किया और राजस्व प्रविष्टियों का सही होने का दावा किया । विद्वान् विचारण न्यायालय ने राजस्व अभिलेखों जिससे दीनू, चेतू और धालू का वाद भूमि का स्वामी होना प्रलक्षित होता है, के परिशीलन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि इसमें की प्रत्यर्थी धालू की पुत्री होने के नाते वाद भूमि की सह-स्वामी है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर याची ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, कुल्लू के समक्ष एक अपील फाइल की जिन्होंने विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को पृष्ठांकित किया और अपील खारिज कर दी । इससे व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने जमाबंदी की प्रतिलिपि का परिशीलन किया, निःसंदेह जिससे यह दर्शित होता है कि याची खसरा सं. 876 के ऊपर वाद भूमि के अनन्य कब्जे पर है किन्तु, प्रश्न यह है कि क्या यह इसके अनन्य तौर पर प्रयोग करने का अधिकार देता है, विशिष्टतया, तब जब प्रत्यर्थी/वादी ने स्वयं को वाद भूमि में सह-अंशधारी होने का दावा किया है । वस्तुतः, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्टतया यह मत व्यक्त किया गया है कि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि वाद भूमि पक्षकारों के बीच संयुक्त है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्रत्यर्थी-वादी 1/4 अंश तक सह-स्वामी है जबकि, याची/प्रतिवादी 1/2 अंश तक सह-स्वामी हैं । ये निष्कर्ष, पक्षकारों के अभिवचनों पर विचार करने के पश्चात् और अभिलेख पर उपलब्ध जमाबंदी के आधार पर भी अभिलिखित किए गए हैं । प्रत्यर्थी/वादी ने विनिर्दिष्टतया यह इंगित किया है कि याची/प्रतिवादी वाद भूमि के बेहतर और मूल्यवान भाग के ऊपर निर्माण

करने जा रहा है, जो राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है । चूंकि, पक्षकारों ने प्रथमदृष्ट्या प्रश्नगत वाद भूमि के सह-स्वामी होने को साबित कर दिया है जो इसलिए, इस विचार के अधीन आता है कि क्या याची को संयुक्त भूमि के ऊपर ऐसा कार्य करने के लिए मंजूर किया जा सकता है जिससे अन्य सह-अंशधारियों को सारवान् हानि या क्षति पहुंच सकती है । दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सामान्य संपत्ति चाहे इसकी प्रकृति या उत्पत्ति, जो भी हो, इसे संयुक्त संपत्ति ही कहा जाता है और उसके स्वामी, संयुक्त स्वामी कहे जाते हैं । संयुक्त संपत्ति में समुदाय का हित परिकल्पित होता है और इसका सामान्य कब्जा स्वामियों के सम्पूर्ण निकाय में निहित होता है, जिन्हें सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी कहा जाता है । स्वामियों का यह निकाय संयुक्त होता है, संपत्ति का कब्जा और स्वामित्व दोनों निहित होता है और प्रत्येक सह-अंशधारी संयुक्त संपदा के प्रत्येक इंच का कब्जे सहित स्वामी होगा । सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी के रूप में उसकी प्रास्थिति में अन्तर्निहित और संयुक्त संपत्ति के संयुक्त स्वामी या सह-अंशधारी के रूप में उसकी प्रास्थिति से निकलने वाले हित संयुक्त संपत्ति के प्रत्येक अनिवार्य भाग के संबंध में, स्वामित्व प्रत्याख्यान का अधिकार होता है । सह-अंशधारी के रूप में प्रास्थिति प्रदत्त सांपत्तिक प्रास्थिति के वास्तविक कृत्य द्वारा घटित होता है, चाहे सहदायिकी की सदस्यता के माध्यम द्वारा या हित के न्यायगमन द्वारा, जो उत्तराधिकार के अनुसरण में या विक्रय इत्यादि द्वारा संपत्ति के समनुदेशन द्वारा प्राप्त होता है । एक सह-अंशधारी, संयुक्त हक और कब्जा का भी प्रत्याख्यान करता है, जहां अन्य सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी भूमि के विभिन्न भाग के पृथक् कब्जे में होते हैं और स्वाभाविक परिणामस्वरूप सभी अन्य सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामियों के लिए और की ओर से संपत्ति के संयुक्त संपत्ति कब्जे के संयुक्त क्षेत्र के कब्जे में सह-अंशधारी होते हैं । सह-अंशधारी संयुक्त भूमि के प्रत्येक भाग के पृथक् कब्जा रखते हुए, संयुक्त संपदा के बेहतर प्रबंधन के प्रयोजन के लिए ऐसा कर सकते हैं । यह पृथक् कब्जा तत्समान आशय के बिना संयुक्त स्वामियों के समुदाय की संयुक्त प्रास्थिति उसके पृथक् स्वामित्व के प्रत्याख्यान में पृथक् कब्जा में सह-स्वामी के ऊपर अधिकार प्रदत्त नहीं करता है । इसलिए, एक संयुक्त स्वामी सम्पूर्ण संयुक्त संपत्ति में एक विनिर्दिष्ट अंश का स्वामी होता है किन्तु संयुक्त संपत्ति के किसी विनिर्दिष्ट और विशिष्ट भाग के पृथक् स्वामित्व का दावा करने का हकदार नहीं होता

है तब तक जब तक कि संपत्ति संयुक्त रहती है । संयुक्त स्वामी/सह-स्वामी जो वैयक्तिक स्वामी के रूप में होता है, वह एक सीमा तक संयुक्त संपत्ति का अन्यसंक्रामण करने का अधिकार अन्तर्निहित रखता है और उस अंश को धारित करता है । अपने अंश या उसके भाग का अन्तरण करने के लिए एक सह-अंशधारी मात्र ऐसे ही अधिकार रखता है जो संयुक्त स्वामी के रूप में उसमें निहित होता है, अर्थात् सामान्य कब्जे सहित संयुक्त स्वामी के रूप में अपने विनिर्दिष्ट भाग या उसके भाग का ही अन्तरण करने का अधिकार रखता है । इसलिए, ऐसे संयुक्त स्वामी या सह-अंशधारी से क्रेता ऐसे अन्तरित संपत्ति को उन सभी अधिकारों और दायित्वों के साथ प्राप्त करता है जो कि उसके विक्रेता में निहित होता है अर्थात् सामान्य हित (स्वामित्व) के प्रत्याख्यान का अधिकार और सम्पूर्ण संयुक्त संपदा में सामान्य कब्जे और संपूर्ण संयुक्त/स्वामित्व के निकाय के साथ सामान्य कब्जा प्राप्त करता है । यह निष्कर्ष, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 44 के सार से निकलता है । (पैरा 8, 9, 10 और 11)

यह सुस्थिर है कि एक सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों के लिए मात्र एक सह-स्वामी के रूप में होता है न कि अभिकर्ता के रूप में होता है । विधि की प्रतिपादना, जैसा कि उपर्युक्त निर्दिष्ट विभिन्न निर्णयों में जिसमें इस उच्च न्यायालय के निर्णय भी सम्मिलित हैं, में परिगणित है जहां तक कि यह सह-अंशधारियों के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित है, निम्नलिखित प्रतिपादनाएं उद्भूत की जा सकती हैं – "1. एक सह-स्वामी का सम्पूर्ण संपत्ति में और इसके प्रत्येक भाग में भी हित होता है । एक सह-स्वामी द्वारा संयुक्त संपत्ति का कब्जा, विधि की दृष्टि में, सभी की ओर से कब्जा माना जाता है किन्तु, वस्तुतः एक को छोड़कर सभी कब्जे से बाहर होते हैं । मात्र एक बड़े भाग का अधिभोग या सम्पूर्ण संयुक्त संपत्ति का अधिभोग आवश्यक रूप से बेदखली की कोटि में नहीं आता है, क्योंकि एक का कब्जा सभी की ओर से कब्जा माना जाता है । उपर्युक्त नियम का एक अपवाद स्वीकृत है, जब एक अन्य द्वारा दूसरे सह-स्वामी की बेदखली की जाती है । किन्तु, बेदखली के आधार पर सभी की ओर से संयुक्त कब्जे की उपधारणा के नकारात्मक अनुक्रम में, एक सह-स्वामी का कब्जा न केवल अनन्य होना चाहिए अपितु, सभी की जानकारी में प्रतिकूल भी होना चाहिए क्योंकि जब एक सह-स्वामी खुले तौर पर स्वयं अपने हक का प्रत्याख्यान करता है और अन्यों का इनकार करता है । समय बीतने के साथ उस सह-स्वामी का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता है, जो संयुक्त

संपत्ति के कब्जे से बाहर होता है, सिवाय बेदखली या त्यक्त करने की दशा में । प्रत्येक सह-स्वामी को अपने तरीके से संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार होता है, जो अन्य सह-स्वामियों के इसी प्रकार के अधिकारों से असंगत नहीं होता है । जहां एक सह-स्वामी, अन्य सह-स्वामियों की सहमति से एक व्यवस्थापन के अधीन पृथक्-पृथक् भागों के कब्जे में होता है तो यह किसी भी व्यक्ति के लिए खुला नहीं होता है कि वह अन्यों की सहमति के बिना व्यवस्थापन को विवादित कर सके, सिवाय विभाजन के लिए वाद फाइल करके । एक सह-स्वामी का उपचार कब्जे में नहीं होता है और न ही संयुक्त संपत्ति के एक अंश के कब्जे में होता है, अपितु, यह विभाजन या वस्तुतः संयुक्त कब्जे के लिए वाद के माध्यम से होता है, किन्तु यह बेदखली के लिए वाद के माध्यम से नहीं होता है । इसी प्रकार के मामले होते हैं, जहां एक सह-स्वामी स्वयं में अनन्य हक स्थापित कर सकता है । जहां सह-स्वामियों की सामान्य सहमति से संयुक्त संपत्ति का विभाजन होता है वहां विशिष्ट सामान्य प्रयोजन आरक्षित होता है, तो इसे एक सह-स्वामी द्वारा असंगत उपयोगकर्ता के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो वह बेदखली के लिए दायी होता है और वह विशिष्ट भाग इसके मूल दशा में वापस होने के लिए दायी होता है । ऐसे मामलों में यह दर्शित करना आवश्यक नहीं होता है कि विशेष क्षति कारित हुई है ।' यह भी सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सह-स्वामी विभिन्न और सुभिन्न हकों द्वारा संपत्ति धारित करते हैं किन्तु कब्जे में एकांकी रखते हैं । वास्तविक भौतिक कब्जा अनिवार्य नहीं है, सामान्य संपत्ति में कब्जे का अधिकार होना अपेक्षित है । उपर्युक्त अधिकार के साम्पार्श्विक रूप में, कोई सह-स्वामी प्रतिकूल करार के अभाव में, सामान्य संपत्ति में प्रविष्ट होने और सम्पूर्ण संपत्ति का कब्जा लेने का अधिकार रखता है, किन्तु यह उन अन्य सह-स्वामियों के समान अधिकार के अध्यधीन होता है जिन्हें कब्जा रखने का अधिकार होता है, उसे उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता है । सामान्य संपत्ति में एक सह-स्वामी का कब्जा प्रथमदृष्ट्या अन्य सह-स्वामियों के प्रतिकूल नहीं होता है क्योंकि ऐसा कब्जा सभी सह-स्वामियों की ओर से एक के कब्जे के रूप में विचार किया जाता है, सिवाय जब प्रतिकूल हक की बेदखली या प्रत्याख्यान का स्पष्ट सबूत होता है । क्योंकि प्रत्येक सह-स्वामी, सामान्य संपत्ति के प्रत्येक भाग में कब्जे का हकदार होता है और उसके अंश के अनुसार, उपभोग में कोई निर्बंधन नहीं होता है, जहां तक कि वह अन्य सह-स्वामियों के अधिकारों से इनकार नहीं करता है जो

सामान्य संपत्ति में कब्जे और उपभोग का समान अधिकार रखते हैं, वह ऐसे सह-अंशधारियों को या तो लेखे के लिए या प्रतिकर संदाय करने के लिए किसी बाध्यता के अधीन नहीं होता है । मामला भिन्न होता है, यदि अन्य सह-अंशधारी आक्षेप करते हैं और कोई भी मैत्रीपूर्ण व्यवस्थापन नहीं हुआ हो । वे मामले भी इसी प्रकार के होते हैं जहां अन्य सह-स्वामियों के हक की बेदखली या इनकार होता है और स्वयं को प्रतिकूल हक का प्रत्याख्यान है । विभिन्न न्यायिक उद्घोषणाओं पर विचार करते हुए और सह-अंशधारियों के अधिकारों और दायित्वों तथा अन्यों को अपवर्जित करते हुए, निर्माण करने के उनके अधिकारों पर इन विनिश्चयों में अपनाए गए प्रबल मतों के आधार पर, औपचारिक तौर पर निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किए जा सकते हैं – "(i) एक सह-स्वामी को सामान्य संपत्ति में पूर्णतः और साधारण तौर पर अपने अधिकारों का अतिक्रमण करते हुए अन्य सह-स्वामी को अवरुद्ध करते हुए व्यादेश पाने का हक नहीं होता है क्योंकि वह तब तक एक सह-स्वामी होता है जब तक कि संपत्ति में कब्जाधारी व्यक्ति का कोई कार्य प्रतिकूल बेदखली की कोटि में नहीं आता है या कब्जे से बाहर सह-स्वामी के हित के प्रतिकूल नहीं होता है । (ii) सामान्य संपत्ति में मात्र निर्माण या उसमें सुधार करना बेदखली की कोटि में नहीं आता है । (iii) यदि कब्जे में के सह-स्वामी के किसी कार्य द्वारा संपत्ति के मूल्य या उसकी उपयोगिता में कोई हानि होती है तो कब्जे से बाहर के सह-स्वामी निश्चित तौर पर संपत्ति के मूल्य और उपयोगिता की हानि को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकते हैं । (iv) यदि कब्जे में के सह-स्वामी किसी कार्य द्वारा अन्य सह-स्वामियों के हित को क्षति पहुंचती है तो कब्जे से बाहर के सह-स्वामी ऐसे कार्य को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकते हैं जिससे उसके हित की क्षति होती है । (v) व्यादेश जारी करने के पूर्व, वादी को यह सिद्ध करना होता है कि उसे ऐसे कार्य द्वारा क्षति हुई है, जिसकी वह शिकायत करता है, जो तात्विक रूप से संयुक्त संपत्ति में उसकी प्रास्थिति या उसके उपभोग या अभ्यस्त उपयोगकर्ता को प्रभावित करता है, जिससे असुविधा या हस्तक्षेप होता है । (vi) यह प्रश्न कि सुविधा के संतुलन के आधार पर मौजूद परिस्थितियों में, क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए, यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है और न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते समय न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण द्वारा मार्गदर्शित होता है ।" न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग मात्र तभी कर सकता है जब वादी द्वारा निम्नलिखित अपेक्षाएं पूरी की जाती हों – "(i)

प्रथमदृष्ट्या मामले की मौजूदगी, यथाअभिवाचित, में अस्थायी व्यादेश जारी करते हुए, वादी के अधिकारों की आवश्यक रूप से संरक्षण, (ii) जब वादी के अधिकारों का संरक्षण करने की आवश्यकता को प्रतिवादी के अधिकारों या इसी प्रकार के प्रतिवादी के अधिकारों के अतिलंघन का संरक्षण करने की आवश्यकता के विरुद्ध तुलना या भार दिया जाता है तो सुविधा का संतुलन वादी के पक्ष में होना चाहिए, और (iii) वादी को कारित होने वाले अपूर्णनीय क्षति की स्पष्ट संभाव्यता यदि अस्थायी व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है । इसके अतिरिक्त, सामयिक अनुतोष होने के नाते अस्थायी व्यादेश मंजूर करने का विवेकाधिकार का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब वादी का आचरण दोषमुक्त हो और वह न्यायालय के समक्ष स्वच्छ हाथों से आया हो ।" विद्वान् विचारण न्यायालय के साथ ही अपील न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि दोनों निचले न्यायालयों ने न केवल अभिवचनों पर विचार किया है अपितु इस विषय पर विधि पर भी विचार किया है और इसके पश्चात् व्यादेश मंजूर किया है । यह न्यायालय, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय, निचले न्यायालयों के विवेकाधिकार में साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करेगा और अपना विवेकाधिकार प्रतिस्थापित नहीं करेगा सिवाय जब तक कि निचले न्यायालयों द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार मनमाना, स्वेच्छाचारी या अनुचित दर्शित नहीं होते हैं अथवा जहां कि न्यायालय ने अन्तर्वर्ती व्यादेश मंजूर या इनकार करने में सुस्थिर विधि के सिद्धांतों की अवहेलना की है । यह न्यायालय सामग्रियों का पुनः विवेचन भी नहीं करेगा और निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से भिन्न निष्कर्ष भी नहीं निकालेगा यदि निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष, संभाव्यतः युक्तियुक्त तौर पर उसके समक्ष मौजूद सामग्रियों पर निकाले गए हों । यह न्यायालय साधारण तौर पर एकमात्र इस आधार पर विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं समझता है कि यदि इस मामले पर, विचारण के प्रक्रम पर विचार किया गया होता तो इसमें प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले गए होते । यदि निचले न्यायालयों द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार युक्तियुक्त हैं और न्यायिक तरीके से हैं तो यह न्यायालय निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए मत से भिन्न मत नहीं अपनाएगा और न ही उनके द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करेगा । तथ्यों का उल्लेख करते हुए, यह प्रतीत होता है कि याची ने कब्जे के विशुद्ध बल पर ही वाद भूमि पर निर्माण करने के अधिकार का दावा किया है और वस्तुतः, अपने पक्ष में प्रतिकूल कब्जे का इस आधार पर दावा

किया है कि वह वाद भूमि पर शांतिपूर्ण और निर्बाधित कब्जे में हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 के नियम 1 और 2 के अधीन फाइल उत्तर की भाषा के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 के नियम 4 के अधीन याची द्वारा प्रस्तुत पृथक्-पृथक् आवेदन की अन्तर्वस्तुओं से यह उपदर्शित होता है कि याची वस्तुतः उस प्रत्यर्थी की बेदखली का दावा किया है जो स्वीकृततः संपत्ति का एक सह-स्वामी है । उसका अधिकारों का प्रयोग, अन्य सह-स्वामी के अधिकारों से असंगत है । याची ने अन्य सह-स्वामी के अधिकारों से इनकार किया है । एक बार, यदि ऐसा हो जाता है तो याची, अन्य सह-अंशधारियों की सहमति के बिना निर्माण करने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है न ही उसे संयुक्त धारित संपत्ति के किसी भाग का उपयोग करने का अधिकार होता है जिससे अन्य सह-अंशधारी के हितों को क्षति पहुंचती है या वह संपत्ति के उपयोग में परिवर्तन की कोटि में या उस भाग से अन्य सह-अंशधारी की कोटि में आता है । (पैरा 16, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48 और 49)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	ए. आई. आर. 2015 हि. प्र. 18 : **जोगिन्दर सिंह और अन्य** बनाम **सुरेश कुमार और अन्य** ;	40
[2014]	2014 (2) शिमला एल. सी. 1003 : **प्रभु नाथ और अन्य** बनाम **सुषमा** :	39
[2013]	2013 (2) हि. प्र. एल. आर. 1172 : **मुंशी लाल** बनाम **राजू वैद्य** ;	38
[2012]	2012 एच. एल. जे. (हि. प्र.) 1427 : **जगदीश राम** बनाम **विश्वमित्तर और अन्य** ;	37
[2011]	2011 ला सूट (हि. प्र.) 692 (2010 की सी. एम. पी. एम. ओ. संख्या 193) : **कलावती और एक अन्य** बनाम **सुधीर चन्द और एक अन्य** ;	34
[2011]	2011 हि. प्र. एल. आर. 80 : **बृज लाल** बनाम **पूरन चन्द** ;	35

[2010] 2010 (3) शिमला एल. सी. 205 :
प्यार सिंह बनाम **नारायण दास और अन्य** ; 33

[2009] ए. आई. आर. 2009 (1) एस. एल. जे. (एस. सी.) 714 :
जय सिंह और अन्य बनाम **गुरमेज सिंह** ; 29

[2008] (2008) 4 एस. सी. सी. 791 :
तनुश्री बासु और अन्य बनाम **ईशानी प्रसाद बासु और अन्य** ; 28

[2007] 2007 (1) नवीनतम एच. एल. जे. (हि. प्र.) 413 :
शिव चन्द बनाम **मंगरू और अन्य** ; 32

[2005] 2005 की सिविल पुनरीक्षण संख्या 153 और 161 :
अमीन चन्द और एक अन्य चेत राम बनाम **चेत राम और अन्य अमीन चन्द** ; 36

[2001] ए. आई. आर. 2001 पंजाब-हरियाणा 112 :
बच्चन सिंह बनाम **स्वर्ण सिंह** ; 27

[2000] ए. आई. आर. 2000 हि. प्र. 116 :
नागेश कुमार बनाम **केवल कृष्ण** ; 31

[1996] ए. आई. आर. 1996 बाम्बे 36 :
प्रकाश एस. अकोत्कर और अन्य बनाम **मनसुख बी. गुलाबखा और अन्य** ; 26

[1994] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1436 :
प्रकाश चन्द सचदेवा बनाम **राज्य और एक अन्य** ; 25

[1991] ए. आई. आर. 1991 (2) एस. एल. सी. 215 :
प्रद्युमन सिंह और एक अन्य बनाम **नारायण सिंह और एक अन्य** ; 30

[1985] ए. आई. आर. 1985 मद्रास 283 :
रुकमणि और अन्य बनाम **एच. एन. तीरुमलाई चेट्टियार** ; 24

[1981] ए. आई. आर. 1981 पंजाब ला जर्नल 204 :
भरतू बनाम **राम सरूप** ; 23

[1980] ए. आई. आर. 1980 केरल 94 :
गौरी और अन्य बनाम **डा. सी. एच. इब्राहिम और एक अन्य** ; 22

[1976] ए. आई. आर. 1976 कलकत्ता 277 :
सचिन्द्र नाथ सरकार और अन्य बनाम **बीनापानी बासु और अन्य** ; 21

[1969] ए. आई. आर. 1969 गोवा 90 :
जोस काएटानो वज बनाम **जुलिया लियोकाडिया लूकरेटिया फर्नांडिज** ; 20

[1961] ए. आई. आर. 1961 पंजाब 528 :
संत राम नगीना राम बनाम **दया राम नगीना राम** ; 19

[1951] ए. आई. आर. (38) 1951 इलाहाबाद 199 :
छेदी लाल और एक अन्य बनाम **छोटे लाल** ; 18

[1940] 1940 (1) आई. एल. आर. कलकत्ता 110 :
अबू साहिद बनाम **अब्दुल हक** ; 16

[1940] ए. आई. आर. 1940 लाहौर 473 :
सुखदेव बनाम **पारसी और अन्य** ; 17

[1897] 1897 ए. सी. 180 :
कैनेडी बनाम **डी. ट्रफोर्ड** । 13

आरम्भिक (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 52.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री रजनीश के. लाल, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्री बी. एस. अट्टरी, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति तारलोक सिंह चौहान – संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन यह रिट याचिका, विद्वान् जिला न्यायाधीश, कुल्लू द्वारा तारीख

21 नवम्बर, 2013 को पारित आदेश के विरुद्ध निदेशित है, जिसके द्वारा उन्होंने विद्वान् सिविल न्यायाधीश, (कनिष्ठ खंड), मनाली, जिला कुल्लू द्वारा पारित तारीख 22 मई, 2013 के आदेश की पुष्टि कर दी थी और आवेदक द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 के नियम 1 और 2 के अधीन व्यादेश मंजूर करने के लिए फाइल आवेदन को मंजूर कर लिया था और उसी समय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश के नियम 4 के अधीन प्रस्तुत आवेदन को खारिज कर दिया था ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी-वादी ने मुहल परसा फती शालीन कोठी, मनाली, तहसील मनाली, जिला कुल्लू में स्थित वाद भूमि खसरा सं. 877 और 878 में समाविष्ट, खाता सं. 10 के खतौनी सं. 10, माप 0-04-49 हेक्टेयर भूमि और खाता सं. 107 के खतौनी सं. 168 में अन्तर्विष्ट खसरा सं. 876 में समाविष्ट माप 0-02-85 हेक्टेयर भूमि के ऊपर कोई भी निर्माण करने से याची/प्रतिवादी को अवरुद्ध करते हुए, घोषणा और व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था । यह अभिकथित था कि वाद भूमि पहले 1/2 अंश तक दीनू राम और 1/2 अंश तक बराबर हिस्सों में श्री चेतू और धालू के स्वामित्व और कब्जे में थी । यह अभिकथित था कि याची दीनू का उत्तराधिकारी था और उसने राजस्व कर्मचारियों की मिली-भगत से गलत तौर पर वाद भूमि में अनन्य कब्जा प्राप्त कर लिया था । यह कथित था कि वाद भूमि संयुक्त थी और 1/4 अंश तक प्रत्यर्थी के कब्जे में थी और गलत राजस्व प्रविष्टियों के बहाने याची ने वाद भूमि का विभाजन करवाए बिना जून, 2012 में वाद भूमि पर निर्माण करना आरम्भ कर दिया था, जबकि विभाजन होने तक उक्त निर्माण कराने का उसे कोई अधिकार नहीं था क्योंकि यह राष्ट्रीय राजमार्ग पर वाद भूमि का एक अत्यधिक मूल्यवान भाग था ।

3. याची ने उत्तर फाइल करते हुए, आवेदन का विरोध किया, जिसमें यह अभिकथित किया कि आवेदन कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह भी अभिकथित किया कि प्रत्यर्थी वाद भूमि में कब्जे सहित संयुक्त स्वामी नहीं है और अनन्य कब्जे का दावा किया । यह भी अभिकथित किया कि याची ने फरवरी, 2012 में निर्माण आरम्भ किया था और उसके निर्माण पर 7,00,000/- रुपए से अधिक खर्च कर चुका है । याची ने वाद भूमि पर प्रत्यर्थी के कब्जे से इनकार किया और राजस्व प्रविष्टियों का सही होने का दावा किया ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने राजस्व अभिलेखों जिससे दीनू, चेतू

और धालू का वाद भूमि का स्वामी होना प्रलक्षित होता है, के परिशीलन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि इसमें की प्रत्यर्थी धालू की पुत्री होने के नाते वाद भूमि की सह-स्वामी है ।

5. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश से व्यथित होकर याची ने विद्वान् जिला न्यायाधीश, कुल्लू के समक्ष एक अपील फाइल की जिन्होंने विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को पृष्ठांकित किया और अपील खारिज कर दी ।

6. यह इन आदेशों के विरुद्ध ही वर्तमान याचिका इस न्यायालय के समक्ष इस आधार पर फाइल की गई है कि विद्वान् निचले न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथ्यतः और वैधतः गलत हैं और इसलिए, विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । यह भी दलील दी गई कि चूंकि वर्ष 1992 से याची विवादित भूमि के अनन्य अधिभोग में है जब उसने इसे राजकुमार से और केशव राम से आधे अंश का क्रय किया था, उसके बाद, प्रत्यर्थी का सह-स्वामी होना और व्यादेश मंजूर करने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता है । अंततः यह दलील दी गई कि विद्वान् निचले न्यायालयों ने संपूर्ण वाद भूमि पर कोरा रोक मंजूर किया है जो याची के अनन्य कब्जे में है और उक्त आदेश सुनिश्चित नहीं हो सकते हैं क्योंकि आज की तारीख तक प्रत्यर्थी द्वारा कोई विभाजन के लिए वाद फाइल नहीं किया गया है, जो उसके आचरण से स्पष्टतः प्रलक्षित होता है ।

7. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और मामले के अभिलेखों का परिशीलन किया । याची के विद्वान् काउंसेल श्री लाल ने वर्ष 2000-01 के लिए जमाबंदी की प्रतिलिपि का अवलंब लेते हुए, यह जोरदार दलील दी कि याची खसरा सं. 876 के अनन्य कब्जे में है और इसलिए, निचले न्यायालयों द्वारा व्यादेश मंजूर नहीं किया जा सकता है ।

8. मैंने, जमाबंदी की प्रतिलिपि का परिशीलन किया, निःसंदेह जिससे यह दर्शित होता है कि याची खसरा सं. 876 के ऊपर वाद भूमि के अनन्य कब्जे पर है किन्तु, प्रश्न यह है कि क्या यह इसके अनन्य तौर पर प्रयोग करने का अधिकार देता है, विशिष्टतया, तब जब प्रत्यर्थी/वादी ने स्वयं को वाद भूमि में सह-अंशधारी होने का दावा किया है । वस्तुतः, विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्टतया यह मत व्यक्त किया गया है कि इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि वाद भूमि पक्षकारों के बीच संयुक्त है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि प्रत्यर्थी-वादी 1/4 अंश तक सह-स्वामी है

जबकि, याची/प्रतिवादी 1/2 अंश तक सह-स्वामी हैं । ये निष्कर्ष, पक्षकारों के अभिवचनों पर विचार करने के पश्चात् और अभिलेख पर उपलब्ध जमाबंदी के आधार पर भी अभिलिखित किए गए हैं । प्रत्यर्थी/वादी ने विनिर्दिष्टतया यह इंगित किया है कि याची/प्रतिवादी वाद भूमि के बेहतर और मूल्यवान भाग के ऊपर निर्माण करने जा रहा है, जो राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है । चूंकि, पक्षकारों ने प्रथमदृष्ट्या प्रश्नगत वाद भूमि के सह-स्वामी होने को साबित कर दिया है जो इसलिए, इस विचार के अधीन आता है कि क्या याची को संयुक्त भूमि के ऊपर ऐसा कार्य करने के लिए मंजूर किया जा सकता है जिससे अन्य सह-अंशधारियों को सारवान् हानि या क्षति पहुंच सकती है ।

9. दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सामान्य संपत्ति चाहे इसकी प्रकृति या उत्पत्ति, जो भी हो, इसे संयुक्त संपत्ति ही कहा जाता है और उसके स्वामी, संयुक्त स्वामी कहे जाते हैं । संयुक्त संपत्ति में समुदाय का हित परिकल्पित होता है और इसका सामान्य कब्जा स्वामियों के सम्पूर्ण निकाय में निहित होता है, जिन्हें सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी कहा जाता है । स्वामियों का यह निकाय संयुक्त होता है, संपत्ति का कब्जा और स्वामित्व दोनों निहित होता है और प्रत्येक सह-अंशधारी संयुक्त संपदा के प्रत्येक इंच का कब्जे सहित स्वामी होगा । सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी के रूप में उसकी प्रास्थिति में अन्तर्निहित और संयुक्त संपत्ति के संयुक्त स्वामी या सह-अंशधारी के रूप में उसकी प्रास्थिति से निकलने वाले हित संयुक्त संपत्ति के प्रत्येक अनिवार्य भाग के संबंध में, स्वामित्व प्रत्याख्यान का अधिकार होता है । सह-अंशधारी के रूप में प्रास्थिति प्रदत्त सांपत्तिक प्रास्थिति के वास्तविक कृत्य द्वारा घटित होता है, चाहे सहदायिकी की सदस्यता के माध्यम द्वारा या हित के न्यायगमन द्वारा, जो उत्तराधिकार के अनुसरण में या विक्रय इत्यादि द्वारा संपत्ति के समनुदेशन द्वारा प्राप्त होता है ।

10. एक सह-अंशधारी, संयुक्त हक और कब्जा का भी प्रत्याख्यान करता है, जहां अन्य सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामी भूमि के विभिन्न भाग के पृथक् कब्जे में होते हैं और स्वाभाविक परिणामस्वरूप सभी अन्य सह-अंशधारी/संयुक्त स्वामियों के लिए और की ओर से संपत्ति के संयुक्त संपत्ति कब्जे के संयुक्त क्षेत्र के कब्जे में सह-अंशधारी होते हैं । सह-अंशधारी संयुक्त भूमि के प्रत्येक भाग के पृथक् कब्जा रखते हुए, संयुक्त संपदा के बेहतर प्रबंधन के प्रयोजन के लिए ऐसा कर सकते हैं । यह पृथक् कब्जा तत्समान आशय के बिना संयुक्त स्वामियों के समुदाय की संयुक्त

प्रास्थिति उसके पृथक् स्वामित्व के प्रत्याख्यान में पृथक् कब्जा में सह-स्वामी के ऊपर अधिकार प्रदत्त नहीं करता है । इसलिए, एक संयुक्त स्वामी सम्पूर्ण संयुक्त संपत्ति में एक विनिर्दिष्ट अंश का स्वामी होता है किन्तु संयुक्त संपत्ति के किसी विनिर्दिष्ट और विशिष्ट भाग के पृथक् स्वामित्व का दावा करने का हकदार नहीं होता है तब तक जब तक कि संपत्ति संयुक्त रहती है ।

11. संयुक्त स्वामी/सह-स्वामी जो वैयक्तिक स्वामी के रूप में होता है, वह एक सीमा तक संयुक्त संपत्ति का अन्यसंक्रामण करने का अधिकार अन्तर्निहित रखता है और उस अंश को धारित करता है । अपने अंश या उसके भाग का अन्तरण करने के लिए एक सह-अंशधारी मात्र ऐसे ही अधिकार रखता है जो संयुक्त स्वामी के रूप में उसमें निहित होता है, अर्थात् सामान्य कब्जे सहित संयुक्त स्वामी के रूप में अपने विनिर्दिष्ट भाग या उसके भाग का ही अन्तरण करने का अधिकार रखता है । इसलिए, ऐसे संयुक्त स्वामी या सह-अंशधारी से क्रेता ऐसे अन्तरित संपत्ति को उन सभी अधिकारों और दायित्वों के साथ प्राप्त करता है जो कि उसके विक्रेता में निहित होता है अर्थात् सामान्य हित (स्वामित्व) के प्रत्याख्यान का अधिकार और सम्पूर्ण संयुक्त संपदा में सामान्य कब्जे और संपूर्ण संयुक्त/स्वामित्व के निकाय के साथ सामान्य कब्जा प्राप्त करता है । यह निष्कर्ष, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 44 के सार से निकलता है, जो इस प्रकार है :–

> "धारा 44. **एक सहस्वामी द्वारा अन्तरण** – जहां कि स्थावर संपत्ति के दो या अधिक सहस्वामियों में से एक, जो ऐसा करने के लिए वैध रूप से सक्षम है, ऐसी संपत्ति में का अपना अंश या कोई हित अन्तरित करता है, वहां अन्तरिती ऐसे अंश या हित के बारे में और वहां तक, जहां तक उस अन्तरण को प्रभावशील करने के लिए आवश्यक हो सम्पत्ति पर संयुक्त कब्जा रखने का, या सम्पत्ति का अन्य सामान्य या भागिक उपभोग करने का और उस सम्पत्ति का विभाजन कराने का अन्तरक का अधिकार अर्जित करता है जो ऐसे अन्तरित अंश या हित पर अन्तरण की तारीख को प्रभाव डालने वाली शर्तों और दायित्वों के अध्यधीन है ।"

12. सह-स्वामियों के बीच विधिक संबंध किसी संविधि द्वारा विनियमित नहीं है । यह न्यायिक विनिश्चयों और न्यायिक विनिश्चयों द्वारा

अधिकथित सिद्धांतों द्वारा शासित होता है जो साम्या, न्याय और शुद्ध अन्तःकरण पर आधारित है ।

13. **कैनेडी** बनाम **डी. ट्रफोर्ड**[1] वाले मामले में, हाउस आफ लार्ड्स द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि चूंकि, रियल इस्टेट के सामान्य किराएदारों के बीच वैश्वासिक संबंध नहीं होता है, न ही रियल इस्टेट के सामान्य किराएदर के ऊपर उसके सह-किराएदार द्वारा संपत्ति का प्रबंध छोड़ते हुए, वैश्वासिक चरित्र की बाध्यता अधिरोपित की जा सकती है ।

14. संविधि (4 एएनएन. सी. 16, धारा 27), काफी पहले ही निरस्त की जा चुकी है, किन्तु इसके अधीन अधिकथित सिद्धांत की ब्रिटेन के साथ ही उन देशों में जिनमें इंग्लिश कामन ला स्वीकार किया गया है, में इंग्लैंड की कामन ला के भाग रूप में स्वीकार किया गया है ।

15. भारत में, इस मुद्दे पर इंग्लिश कामन ला के सिद्धांत को न्यायाधीशों द्वारा न्याय, साम्या और शुद्ध अन्तःकरण आधारों पर स्वीकार किया है ।

16. यह सुस्थिर है कि एक सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों के लिए मात्र एक सह-स्वामी के रूप में होता है न कि अभिकर्ता के रूप में होता है । (देखें – **अबू साहिद** बनाम **अब्दुल हक**[2]) । किन्तु, वह संविदा, अभिव्यक्त या विवक्षित तौर पर अन्य सह-स्वामियों के लिए एक अभिकर्ता हो सकता है ।

17. **सुखदेव** बनाम **पारसी और अन्य**[3] वाले मामले में, लाहौर उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक सह-अंशधारी, जो संयुक्त खाते के किसी भाग का अनन्य कब्जा रखता है, उस भाग का, विभाजन के समय पर उसमें के अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों के समायोजन के अध्यधीन अन्तरण कर सकता है और यह कि अन्य सह-अंशधारियों के अधिकार पर्याप्त तौर पर सुरक्षित होंगे यदि उन्हें यह घोषणा करते हुए, डिक्री मंजूर कर ली जाती है कि विवादित भूमि में अन्तरितियों का कब्जा विभाजन के समय पर समायोजन के अध्यधीन उस सह-अंशधारी/अंशधारियों का होगा । निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों को यहां

---

[1] 1897 ए. सी. 180.

[2] 1940 (1) आई. एल. आर. कलकत्ता 110.

[3] ए. आई. आर. 1940 लाहौर 473.

प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा :–

> "विनिश्चय के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या संयुक्त धारक में एक सह-हिस्सेदार को, जो कतिपय भूखंड के अनन्य कब्जे में है, का विक्रय करने का अधिकार है और यदि ऐसा है तो क्या अन्तरिती को विभाजन होने तक उस भूखंड का कब्जा बनाए रखने का अधिकार है । प्रत्यर्थी की ओर से यह विवादित नहीं किया गया है कि प्रतिवादी जोत में अपने अंश (या उसका कोई भाग) का विक्रय कर सकता है किन्तु यह दलील दी गई है कि कोई भी अंशधारी किसी विनिर्दिष्ट भूखंड का विक्रय करने का हकदार नहीं है क्योंकि वह उसका एकमात्र स्वामी नहीं है । इस दलील के समर्थन में, विद्वान् काउंसेल ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तीन विनिश्चयाधारों का अवलंब लिया है ।
>
> तथापि, यह वर्तमान मामलों के तथ्यों से विभेदनीय प्रतीत होता है क्योंकि प्रतिवादियों ने भूखंडों का विक्रय करने में यह प्रत्याख्यान नहीं किया है कि वे उसके अनन्य स्वामी हैं । विद्वान् न्यायाधीश ने अपने निर्णय में, यह टिप्पणी की है कि वर्तमान वादों में प्रतिवादियों द्वारा विनिर्दिष्ट भूखंडों के विक्रय करने के लिए अनन्य हक का प्रत्याख्यान किया गया था । किन्तु, यह सही प्रतीत नहीं होता है । कोई विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं हुए थे और नामांतरणों से यह प्रतीत होता है कि प्रतिवादी सह-अंशधारियों के रूप में इन भूखंडों में मात्र अपने हित का अन्तरण करने के लिए ही तात्पर्यित थे । सह-अंशधारियों के रूप में, उन्हें विभाजन के समय पर समायोजन के अध्यधीन विभाजन होने तक इन भूखंडों का कब्जा बनाए रखने का अधिकार था और वे इसे ही क्रेताओं को अन्तरित करना चाहते थे । यह इस तथ्य से उपदर्शित होता है कि विक्रय को जोत के कालम में दर्शित किया गया है और न कि नामांतरण कार्यवाहियों को शासित करने वाले नियमों के अनुसार स्वत्वधारी के कालम में दर्शित किया गया है । इसके अतिरिक्त, प्रतिवादियों ने अपने लिखित कथनों में भी यह स्पष्ट किया है कि वे विक्रय भूखंडों को तभी तक धारित करने का दावा कर रहे हैं जब तक कि यह अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों के अध्यधीन विभाजन होने तक और विभाजन के समय पर समायोजन के अध्यधीन है । यदि प्रतिवादियों द्वारा अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों के अध्यधीन और विभाजन के समय पर

समायोजन के अध्यधीन ही भूखंडों को अन्तरित किया जाता है । यह देखना कठिन है कि किस प्रकार अन्य अंशधारियों के अधिकार किसी तरह से प्रतिकूल हो सकते हैं । यह सुस्थिर है कि यदि एक सह-अंशधारी अविभाजित जोत के किसी भाग का, जो उसके स्वयं के अंश से अधिक नहीं है, कब्जा सिद्ध कर देता है तो विभाजन होने तक उसके कब्जे को बाधित नहीं किया जा सकता है (देखें – ए. आई. आर. 1938 लाहौर 465 और इसमें उद्धृत अन्य अधिकथित सिद्धांत) ।

परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि एक सह-अंशधारी जो संयुक्त खाता के किसी भाग के कब्जे में है, विभाजन के समय पर उसमें अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों के समायोजन के अध्यधीन उस भाग का अन्तरण कर सकता है (देखें – ए. आई. आर. 1925 लाहौर 518, ए. आई. आर. 1929 लाहौर 168 और ए. आई. आर. 1939 अवध 243) । यह मत, संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 44 में समाविष्ट सिद्धांत के संगत प्रतीत होता है जो सह-अंशधारियों द्वारा संयुक्त संपत्ति में अपने हित का अंतरण करने के बारे में है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क दिया कि इन मामलों में प्रतिवादी काफी लम्बे समय से कब्जे में नहीं है । तथापि, यह प्रतीत होता है कि वे विक्रय के ठीक पूर्व कुछ वर्षों से कब्जे में है और यह अभिनिर्धारित करने के लिए अच्छा आधार प्रतीत नहीं होता है कि वे 12 वर्ष या इससे अधिक अवधि का उनका कब्जा होने तक भूखंडों को अन्तरित नहीं कर सकते हैं, जैसा कि विद्वान् काउंसेल द्वारा सुझाया गया है । प्रतिवादियों ने कोई भी प्रतिकूल हक अर्जित करने का दावा नहीं किया है । सभी में, उन्होंने यह दावा किया है कि वे विभाजन होने तक अबाधित कब्जा बनाए रखने के हकदार हैं । वे निश्चित तौर पर विक्रय के ठीक पूर्व कुछ वर्षों से कब्जे में हैं, जैसा कि उपर्युक्त कथित है और प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल यह दर्शित करने में समर्थ नहीं रहे हैं कि अन्य सह-अंशधारियों को विभाजन होने तक अबाधित अपना कब्जा बनाए रखने का अधिकार था ।"

18. **छेदी लाल और एक अन्य** बनाम **छोटे लाल**[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया है कि जब कि सह-अंशधारी एक अन्य सह-अंशधारी के अध्यधीन हकदार होता है

[1] ए. आई. आर. (38) 1951 इलाहाबाद 199.

तो अन्य सह-अंशधारी की भूमि में क्षति से अनन्य रूप से विनियोग द्वारा स्वयं को अवगत रखता है, प्रश्न यह है कि सभी पूर्ववर्ती विनिश्चयों के प्रकाश में, उसे क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए और इसे निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "25. पूर्ववर्ती चर्चा के परिणामस्वरूप, हमें यह प्रतीत होता है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-अंशधारियों के अधिकार के प्रश्न को इस प्रश्न से पृथक् और विभेदनीय रखा जाना चाहिए कि उस सह-अंशधारी को क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए जिसके संयुक्त भूमि के संबंध में अधिकार अन्य सह-अंशधारियों द्वारा अतिक्रमण किया गया है या तो अनन्य रूप से भूमि के विनियोग या जोत द्वारा या उस पर कोई निर्माण करके किया गया है । कुछ विनिश्चयों में विरोधाभास से दो भिन्न मामलों में भ्रम प्रकटतः उद्भूत होता है । इसलिए, जब कि सह-अंशधारी एक अन्य सह-अंशधारी के अध्यधीन होता है तो वह अन्य सह-अंशधारियों की क्षति से स्वयं को अनन्य रूप से भूमि का विनियोग कर लेता है तो यह प्रश्न कि ऐसी दशा में वादी को क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है । न्यायालय द्वारा न्यायानुमत मामले में साबित परिस्थितियों के अनुसार, उन्मूलन और व्यादेश के लिए अनुतोष मंजूर या रोका जा सकता है । यदि न्यायालय यह महसूस करता है तो वह दोनों अनुतोष मंजूर कर सकता है कि यदि साक्ष्य से यह सिद्ध होता है कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त रूप से प्रतिकर नहीं दिया जा सकता है और यह कि अनुतोष मंजूर करने के मुकाबले अनुतोष नामंजूर करने के परिणामस्वरूप उसे अत्यधिक क्षति हो सकती है । इसके प्रतिकूल यदि अनुतोष मंजूर करने से प्रतिवादी को तात्विक और सारभूत क्षति कारित होती है तो न्यायालय को ऐसे अनुतोष को रोके रखने के समुचित विवेकाधिकार का प्रयोग करने में कोई संदेह नहीं होगा । जैसा कि कुछ मामलों में इंगित किया गया है, कि प्रत्येक मामला उसके स्वयं के विशिष्ट तथ्यों पर विनिश्चित होंगे और इसे न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया जाता है कि वह साबित परिस्थितियों पर विनिश्चय करे कि किस ओर सुविधा का संतुलन दर्शित होता है । न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, न्याय, साम्या और शुद्ध अन्तःकरण से मार्गदर्शित होगा और इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता है तथा न्यायालय के लिए इस बारे में

कठोर नियम अधिकथित किया जाना संभाव्य नहीं होता है कि किन परिस्थितियों में, जिसमें उन्मूलन और व्यादेश के लिए अनुतोष मंजूर या नामंजूर किया जाना चाहिए ।"

19. सह-अंशधारी के आपसी अधिकार और दायित्व, **संत राम नगीना राम** बनाम **दया राम नगीना राम**[1] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के विनिश्चय की विषयवस्तु रहे हैं और अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित प्रतिपादनाएं सुस्थिर की गई हैं :–

"(1) एक सह-अंशधारी का संपूर्ण संपत्ति में हित होता है और इसके प्रत्येक भाग में भी हित होता है ।

(2) एक सह-अंशधारी द्वारा संयुक्त संपत्ति का कब्जा विधि में, सभी की ओर से कब्जा होता है किन्तु, वस्तुतः एक का कब्जा होता है ।

(3) संपूर्ण संयुक्त संपत्ति के बड़े भाग या उसके छोटे भाग का मात्र अधिभोग, आवश्यक रूप से बेदखली की कोटि में नहीं आता है क्योंकि एक का कब्जा सभी की ओर से समझा जाता है ।

(4) उपर्युक्त नियम का एक अपवाद स्वीकार किया गया है, जब एक अन्य सह-स्वामी द्वारा दूसरे सह-स्वामी द्वारा बेदखल किया जाता है । किन्तु, बेदखली के आधार पर सभी की ओर से संयुक्त कब्जे की उपधारणा के नकारात्मक अनुक्रम में सह-स्वामी का कब्जा न केवल अनन्य होना चाहिए अपितु, किसी की भी जानकारी में प्रतिकूल भी होना चाहिए, जब कि एक सह-स्वामी खुले तौर पर अपने स्वयं के हक का प्रत्याख्यान करता है और अन्य के हक से इनकार करता है ।

(5) समय बीतने के साथ उस सह-स्वामी का अधिकार समाप्त नहीं होता है जो सयुंक्त संपत्ति के कब्जे से बाहर कर दिया गया है सिवाय बेदखली या परित्याग की दशा में ।

(6) प्रत्येक सह-स्वामी को संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार होता है किन्तु ऐसा अन्य सह-स्वामियों के इसी प्रकार के अधिकारों के असंगत नहीं होना चाहिए ।

---

[1] ए. आई. आर. 1961 पंजाब 528.

(7) जहां एक सह-स्वामी, अन्य सह-स्वामियों की सहमति से एक व्यवस्थापन के अधीन पृथक् भूखंड के कब्जे में होता है तो इसे विभाजन के लिए वाद फाइल करने के सिवाय अन्यों की सहमति के बिना किसी भी व्यक्ति द्वारा विवादित करने के लिए खुला नहीं होता है ।"

20. **जोस काएटानो वज** बनाम **जुलिया लियोकाडिया लूकरेटिया फर्नांडिज**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"6. उपर्युक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि यद्यपि, सह-स्वामी संयुक्त संपत्ति के कब्जे में होता है किन्तु, उसे अन्य सह-स्वामियों की सहमति के बिना उस संपत्ति के उपयोग में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं होता है और यह कि यदि व्यथित सह-स्वामी संयुक्त संपत्ति पर भवन निर्माण करने से प्रतिवादी को अवरुद्ध करने के लिए तुरन्त न्यायालय आता है तो न्यायालय द्वारा प्रतिषेधात्मक व्यादेश की डिक्री पारित करना अत्यधिक विधिसम्मत हो सकता है और यदि इसी बीच में कोई विनिर्माण कर लिया गया है तो आज्ञापक व्यादेश की डिक्री भी मंजूर की जा सकती है ।"

21. **सचिन्द्र नाथ सरकार और अन्य** बनाम **बीनापानी बासु और अन्य**[2] वाले मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पूर्ववर्ती निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित विधि की प्रास्थिति वर्णित की है :–

"18. इस न्यायालय के विनिश्चयों की संगतता में निम्नलिखित विधि की प्रास्थिति है –

(क) सह-स्वामी, सामान्य संपत्ति में अपने अधिकारों से बाहर एक अन्य सह-स्वामी को अवरुद्ध करते हुए, व्यादेश पाने का हकदार नहीं होता है, पूर्णतया और साधारणतया इस कारण से कि वह एक सह-स्वामी है ।

(ख) पूर्व में व्यादेश जारी किया जा सकता है यदि वादी यह सिद्ध कर देता है कि उसे कुछ क्षति कारित हुई है, उस कार्य द्वारा, जिसकी वह शिकायत करता है जिससे तात्विक रूप से संयुक्त संपत्ति में उसकी प्रास्थिति या उसका उपभोग या अभ्यस्त उपभोग प्रभावित होता है जो असुविधाजनक और

---

[1] ए. आई. आर. 1969 गोवा 90.

[2] ए. आई. आर. 1976 कलकत्ता 277.

हस्तक्षेप होगा ।

(ग) यह प्रश्न कि क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए, यह न्यायालय के विवेक पर छोड़ा जाना चाहिए जो सुविधा के संतुलन पर मौजूद परिस्थितियों में, और अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण से मार्गदर्शित होकर विनिश्चय कर सके ।"

22. **गौरी और अन्य** बनाम **डा. सी. एच. इब्राहिम और एक अन्य**[1] वाले मामले में, साधारण सिद्धांत पर यह अधिकथित किया गया है कि यदि विभिन्न स्वामी अविभाजित संपत्ति के कब्जे में हैं तो उनमें से किसी को भी उस संपत्ति के किसी भाग के अपने अनन्य उपयोग में दुर्विनियोग करने का अधिकार नहीं होता है क्योंकि इससे उसकी पसंद के अनुसार उसके स्वयं के पक्ष में अनिवार्य विभाजन प्रभावित होगा । न्यायालय की मताभिव्यक्तियों को निर्णय के पैरा 11 को निम्नलिखित उद्धृत करना उपयुक्त है :–

"विधि यह है कि एक सह-स्वामी का सामान्य संपत्ति पर निर्माण उद्भूत करने या उसमें अन्य सुधार करने का अधिकार अन्य सह-स्वामियों की सहमति, अभिव्यक्त या विवक्षित या मौन सहमति पर वस्तुतः निर्भर करता है और जब एक सह-स्वामी, अन्य सह-स्वामियों की सहमति के बिना भवन निर्माण आरम्भ करता है और भवन निर्माण का विरोध करने के बावजूद भवन निर्माण जारी रखता है तो यह दोषपूर्ण हो जाता है और व्यादेश के आदेश द्वारा निर्माण कार्य को रोका जा सकता है । सह-स्वामी द्वारा दोषपूर्ण कब्जा या सह-स्वामी द्वारा बेदखली स्वयमेव में ही अन्य सह-स्वामियों को क्षति कारित करता है और बाद में, व्यादेश की कार्रवाई के लिए उन्हें अन्य क्षति को साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है (देखें – मित्रा का को-आनरशिप एण्ड पार्टिशन - 5वां संस्करण, पृष्ठ 127 और 128) ।"

23. **संत राम** (उपर्युक्त) वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा सुस्थिर प्रतिपादना की पुष्टि, **भरतू** बनाम **राम सरूप**[2] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय द्वारा भी की गई है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1980 केरल 94.

[2] ए. आई. आर. 1981 पंजाब ला जर्नल 204.

24. **रुकमणि और अन्य** बनाम **एच. एन. तीरुमलाई चेट्टियार**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक सह-अंशधारी को सह-अंशधारी द्वारा फाइल विभाजन के लिए वाद लम्बित रहने के दौरान सारभूत निर्माण करने के द्वारा अन्य सह-अंशधारियों को प्रतिकूलता कारित करना मंजूर नहीं किया जा सकता है । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :–

> "प्रत्यर्थी को सह-अंशधारी होने के नाते, सह-अंशधारियों द्वारा फाइल विभाजन के लिए वाद लम्बित रहने के दौरान सारभूत निर्माण करने के द्वारा अन्य सह-अंशधारियों को प्रतिकूलता कारित करना मंजूर नहीं किया जा सकता है ।"

25. **प्रकाश चन्द सचदेवा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "3. ..... जब दावा या हक विवादित नहीं होते हैं और पक्षकार स्वयं को सह-स्वामी दर्शित करते हैं और कोई विभाजन नहीं हुआ है तो उनमें से किसी एक को बलपूर्वक और विधिविरुद्ध कार्य करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है और अन्य को विधि के अनुसरण में कार्य करने को कहा जा सकता है ....."

26. **प्रकाश एस. अकोत्कर और अन्य** बनाम **मनसुख बी. गुलाबखा और अन्य**[3] वाले मामले में, बाम्बे उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक सह-स्वामी का, अन्य सह-स्वामियों के लिए और की ओर से संपत्ति में कब्जा और कब्जे से बाहर सह-स्वामी कब्जे में नहीं होते हैं तो वे अन्य सह-अंशधारियों के विरुद्ध व्यादेश का दावा नहीं कर सकते हैं । अन्य सह-अंशधारी व्यादेश का दावा इस प्रकार नहीं कर सकते ताकि अन्य सह-स्वामियों को सह-स्वामियों के रूप में अपने अधिकार का प्रयोग करने से अपवर्जित किया जा सके । निर्णय के पैरा 4 और 5 को यहां प्रस्तुत करना उपयुक्त है, जो इस प्रकार है :–

> "4. यहां ईप्सित व्यादेश की प्रकृति महत्वपूर्ण है । वादी ने अपने

---

[1] ए. आई. आर. 1985 मद्रास 283.

[2] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1436.

[3] ए. आई. आर. 1996 बाम्बे 36.

अनन्य कब्जे में हस्तक्षेप से अवरुद्ध करने के लिए सभी प्रतिवादियों के लिए व्यादेश की ईप्सा की है । यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि इन प्रतिवादियों में न केवल प्रथम प्रतिवादी सम्मिलित है जिसने विक्रय करार निष्पादित किया है अपितु, नूरजहां के अन्य तीनों पुत्र भी सम्मिलित हैं । यह कहा जा सकता है कि चूंकि इन पुत्रों ने भी प्रतिवादी सं. 5 और 6 के पक्ष में संपत्ति का अन्यसंक्रामण किया है । यह उपधारणा की जा सकती है कि यद्यपि वादी, जिसने विक्रय करार निष्पादित करते हुए, प्रथम प्रतिवादी को कब्जा दिया था, इस संदर्भ में प्रश्न यह है कि कब्जे की प्रकृति क्या है जिसे प्रथम प्रतिवादी हस्तांतरित कर सकता है, वादी द्वारा अविभाजित कब्जे की प्रकृति का मामले से प्रथमदृष्ट्या संबंध होना चाहिए । साधारण तौर पर, एक सह-स्वामी का अन्य सह-स्वामियों के साथ संपूर्ण संपत्ति में बराबर अधिकार और हित होता है । प्रत्येक सह-स्वामी को अन्य सह-स्वामियों के बराबर उपभोग और कब्जे का अधिकार होता है और उसका संपत्ति के प्रत्येक अत्यंत सूक्ष्म भाग में भी हित होता है । दूसरे शब्दों में, एक सह-स्वामी का हक और कब्जा अन्य सह-स्वामियों के हित के समविस्तृत होता है । सह-स्वामी होने के नाते प्रथम प्रतिवादी को अन्य सह-स्वामियों के हक और कब्जे का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता है । प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने टीकम चन्द लूनिया **बनाम** रहीम खान इसहाक खान (ए. आई. आर. 1971 मध्य प्रदेश 23) वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि इन परिस्थितियों में, वह व्यादेश के लिए आवेदन कायम रखने का हकदार है । यह भी उपधारणा कि प्रथम प्रतिवादी ने वैधतः विक्रय करार निष्पादित किया है तो भी उस विक्रय करार से कोई हित सृजित नहीं हो सकता है, यह मात्र संपत्ति के स्वामित्व से संबद्ध सभी बाध्यताएं ही सृजित कर सकता है । इसलिए, प्रत्यर्थी को विक्रय करार का प्रवर्तन कराने का अधिकार है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री खापरे द्वारा मेरे समक्ष प्रस्तुत वादपत्र की फोटोप्रति से यह दर्शित होता है कि वादी ने सभी 6 प्रतिवादियों के विरुद्ध विक्रय करार प्रवर्तित कराने की ईप्सा की है । इसका निश्चित तौर पर अभिप्राय यह है कि वादी ने न केवल प्रथम प्रतिवादी के हक को स्वीकार किया है अपितु उसने प्रतिवादी सं. 2 से 4 अर्थात् प्रथम प्रत्यर्थी के भाइयों के साथ ही अन्यसंक्रामणग्राहियों प्रतिवादी सं. 5

और 6, जिनके पक्ष में प्रतिवादी सं. 1 से 4 ने विक्रय-विलेख निष्पादित किया है, के भी हक को स्वीकार किया है । आवश्यक तौर पर यह कहा जाना चाहिए कि वादी ने विक्रय करार के विनिर्दिष्ट तौर पर प्रवर्तन कराने की प्रार्थना के सिवाय कोई प्रतिकूल दावा नहीं किया है । यहां तक कि प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलम्बित विनिश्चय, टीकम चन्द लूनिया **बनाम** रहीम खान इसहाक खान (ए. आई. आर. 1971 मध्य प्रदेश 23) वाले मामले में भी यह नहीं कहा गया है कि पर-व्यक्ति, जिसने सह-अंशधारियों में से किसी एक से विक्रय करार प्राप्त किया है वह भी एक सह-स्वामी की स्थिति में ही होता है । उसके बाद, विद्वान् काउंसेल ने नन्द कुमार **बनाम** लक्ष्मीबाई (1984 महाराष्ट्र ला जर्नल 1915) वाले मामले का अवलंब लिया । इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क के अधीन कब्जे में व्यक्ति को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 1 के अधीन व्यादेश के लिए आवेदन कायम रखने का अधिकार है । इस प्रतिपादना के बारे में, कोई विवाद नहीं हो सकता है । इस संदर्भ में, यद्यपि यह उपधारणा की जाती है कि वह वादी जो कब्जे में है उसका कब्जा मात्र सह-स्वामी के रूप में ही हो सकता है । विद्वान् काउंसेल ने जोसफ **बनाम** जान (ए. आई. आर. 1960 केरल 27) वाले मामले का भी अवलंब लिया । उपर्युक्त सभी विनिश्चयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब एक सह-स्वामी अपनी सम्पूर्ण संपत्ति को सह-स्वामी के रूप में किसी पर-व्यक्ति को अंतरित करता है तो ऐसे पर-व्यक्ति का कब्जा, उस अअन्यसंक्रामण करने वाले सह-स्वामी के प्रतिकूल हो जाएगा । इस संबंध में, माननीय उच्चतम न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय को निर्दिष्ट करना आवश्यक है कि कब्जे में सह-स्वामी के कब्जे की प्रकृति क्या होती है । करवला बाई बेगम **बनाम** मोहम्मद सईद (ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 77 = 1980 इलाहाबाद ला जर्नल 902) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि कब्जे में सह-स्वामी की विधिक प्रास्थिति, अन्य सह-अंशधारियों की ओर से आन्वयिक न्यासी के रूप में होती है जो कब्जे में नहीं होते हैं और यह कि सह-अंशधारी का अधिकार न्यासी द्वारा संरक्षित समझा जाता है । उसके बाद, ऐसी प्रास्थिति में व्यक्ति प्रथमदृष्ट्या अपने कब्जे की प्रकृति को एकाकी रूप में कोई भी परिवर्तन नहीं कर

सकता है जिससे कि उसकी समनुदेशिती को बेहतर प्रास्थिति प्राप्त होता हो, जिसके पक्ष में वह मात्र विक्रय करार ही निष्पादित किया है । यहां स्वयं विक्रय करार वर्ष 1994 में हुआ था । यह पक्षकथन नहीं किया गया है कि प्रथम प्रतिवादी-नूरजहां का पुत्र कभी भी प्रतिकूल कब्जे में रहा था । इन परिस्थितियों में, प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ऐसे कब्जे के आधार पर यह तर्क नहीं दे सकते हैं, यह दावा करते हुए कि अन्यसंक्रामणग्राही, अअन्यसंक्रामण करने वाले सह-स्वामी के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 34 के नियम 1 के अधीन आवेदन कायम रख सकता है । प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने परेश नाथ विश्वास **बनाम** कमल कृष्णा चौधरी (ए. आई. आर. 1958 कलकत्ता 614) वाले मामले का भी अवलंब लिया । इस विनिश्चय में भी यह अभिनिर्धारित किया गया है कि सह-स्वामी द्वारा अविभाजित गृह को पर-व्यक्ति को अन्तरित करने के उपरान्त, सह-स्वामी, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 44 के अधीन अन्य सह-स्वामियों के साथ संयुक्त कब्जे का दावा नहीं कर सकता है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि सह-अंशधारियों द्वारा कुटुम्ब निवास गृह के अविभाजित भाग को पर-व्यक्ति को अन्तरित करने के उपरान्त अन्तरित भाग के संबंध में संयुक्त कब्जे के किसी कार्य को करने से पर-व्यक्ति अन्तरिती को अवरुद्ध करने के लिए व्यादेश का वाद कायम रख सकता है । यह विनिश्चय प्रत्यर्थियों की कोई सहायता नहीं करता है ।

5. जैसा कि उल्लिखित है, इन परिस्थितियों में वादी के कब्जे की प्रकृति मात्र सह-स्वामी के रूप में ही हो सकती है, यद्यपि, कब्जा विक्रय करार के अधीन प्राप्त किया गया है । संत राम नगीना राम **बनाम** दया राम नगीना राम (ए. आई. आर. 1961 पंजाब 528) वाले मामले में पंजाब उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने सह-स्वामियों के अधिकारों और दायित्वों तथा उस दशा जिसमें बेदखली की जा सकती है, के सम्पूर्ण प्रश्न पर विचार किया । इसमें यह अभिनिर्धारित किया है कि एक सह-स्वामी का सम्पूर्ण संपत्ति और उसके प्रत्येक भाग में हित होता है और एक सह-स्वामी द्वारा संयुक्त संपत्ति में कब्जा, विधि की दृष्टि में सभी की ओर से कब्जा होता है किन्तु, वस्तुतः, एक के अलावा सभी कब्जे से बाहर होते हैं । उसके बाद, यह अभिनिर्धारित किया जाना है कि यह शर्त तब तक अविभावी होगी

जब तक कि बेदखली साबित नहीं हो जाती है । उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को सम्यक् ध्यान में रखते हुए, विशिष्टतया इस तथ्य को कि प्रतिवादी सं. 1 से 4 मुस्लिम विधि द्वारा शासित होते हैं, इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उनका हित उन सह-स्वामियों में है । प्रथम प्रतिवादी को यह अधिकार नहीं है कि वह प्रतिवादी सं. 2 से 4 के हित को प्रथमदृष्ट्या आबद्ध कर सके । ऐसा होते हुए, प्रतिवादी सं. 1 से 4 के अन्यसंक्रामणियों, जो प्रतिवादी सं. 5 और 6 हैं, वे कम-से-कम प्रतिवादी सं. 2 से 4 का स्थान ग्रहण करना समझे जाने चाहिएं यद्यपि, प्रथमदृष्ट्या, प्रथम प्रतिवादी के अधिकार विक्रय करार के अधीन बाध्यताओं से संबद्ध हैं । सह-स्वामी के रूप में, कब्जे की इस प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि उपर्युक्त उपदर्शित है, अवधारण के लिए मात्र यह प्रश्न उद्भूत होता है कि क्या कब्जे में एक सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों के विरुद्ध इस प्रकृति का व्यादेश पाने का हकदार है । जब एक बार, एक सह-स्वामी अन्य सह-स्वामियों के लिए और की ओर से कब्जे में पाया जाता है तो अन्य सह-स्वामी इस प्रकृति के व्यादेश का दावा नहीं कर सकते हैं जिससे कि सह-स्वामियों के रूप में अपने अधिकार का प्रयोग करने से अन्य सह-स्वामियों को अपवर्जित किया जा सके । इसलिए, प्रत्यर्थियों/वादियों का प्रथमदृष्ट्या ऐसा कोई मामला नहीं बनता है । परिणामतः, इस संक्षिप्त आधार पर सिविल न्यायाधीश का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है । इसलिए, आदेश अपास्त किया जाता है और वर्तमान अपील मंजूर की जाती है । मुश्किल से उसे यह उल्लिखित करने की आवश्यकता प्रतीत होती है कि इस आदेश में व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियां सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 34, नियम 1 और 2 के अधीन प्रत्यर्थियों के दावों का निपटारा करने के प्रयोजन के लिए ही लागू होंगे ।"

27. **बच्चन सिंह** बनाम **स्वर्ण सिंह**[1] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ ने सह-स्वामियों के अधिकारों और दायित्वों तथा सह-स्वामियों को अपवर्जित करते हुए, निर्माण करने के उनके अधिकारों पर न्यायिक उद्घोषणाओं पर विचार किया और निम्नलिखित राय व्यक्त की :–

---

[1] ए. आई. आर. 2001 पंजाब-हरियाणा 112.

"(i) एक सह-स्वामी, जो संपत्ति के किसी भाग के कब्जे में नहीं है, उस अन्य सह-स्वामी के विरुद्ध व्यादेश की ईप्सा करने का हकदार नहीं है जो उस सामान्य संपत्ति के अनन्य कब्जे में है जब तक कि उस संपत्ति के कब्जे में व्यक्ति का कोई कार्य, कब्जे के बाहर सह-स्वामियों के हित के प्रतिकूल या प्रतिकूल बेदखली की कोटि में नहीं आता है ।

(ii) सामान्य संपत्ति में मात्र कोई निर्माण या सुधार करना बेदखली की कोटि में नहीं आता है ।

(iii) यदि कब्जे में सह-स्वामी के किसी कार्य द्वारा संपत्ति के मूल्य या उपयोगिता में कमी आती है तो कब्जे से बाहर सह-स्वामी निश्चित तौर पर उस संपत्ति के मूल्य और उपयोगिता में होने वाली कमी को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकते हैं ।

(iv) यदि कब्जे में सह-स्वामी के किसी कार्य द्वारा अन्य सह-स्वामियों के हित को क्षति पहुंचती है तो कब्जे से बाहर सह-स्वामी ऐसे कार्य जिससे उसके हित को क्षति पहुंचती है, को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकता है ।"

28. **तनुश्री बासु और अन्य** बनाम **ईशानी प्रसाद बासु और अन्य**[1] वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने सह-अंशधारियों के मामलों पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि संयुक्त संपत्ति के अनन्य कब्जे में रहने वाला सह-स्वामी व्यादेश पाने का हकदार होता है और यह निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"13. विधि की इस सामान्य प्रतिपादना के बारे में कोई संदेह या विवाद्यक नहीं हो सकता है कि एक सह-स्वामी का कब्जा सभी की ओर से कब्जा समझा जाता है । तथापि, इस प्रकृति के मामले में यह अभिप्राय नहीं होता है कि जहां पक्षकारों को तीन फ्लैट संयुक्त रूप से आबंटित किए गए हैं तो उनमें से प्रत्येक पृथक् तौर पर एक सह-स्वामी के अधिभोग में नहीं हो सकता है ।

14. हम, इसके पूर्व यह उल्लिखित कर चुके हैं कि वादी-अपीलार्थी स्वयमेव ही ऐसा कोई असुनिश्चित शर्त स्वीकार नहीं कर सकते हैं कि आपसी समायोजन के कारण तीनों फ्लैटों अर्थात् फ्लैट

[1] (2008) 4 एस. सी. सी. 791.

सं. 201, 202 और 301 के पृथक् कब्जे में रह सके । यदि वे पृथक् फ्लैटों के कब्जे में हैं तो वादी सह-स्वामियों के रूप में, ताला लगाते हुए प्रथम प्रत्यर्थी को बे-कब्जा करने का प्रयास अन्यथा नहीं कर सकते हैं । प्रथम प्रत्यर्थी के अनुसार, जैसा कि इसमें पूर्व उल्लिखित है, तालाब, वादियों-अपीलार्थियों द्वारा इसके तत्काल पश्चात् लिया गया था जब उनके द्वारा उच्च न्यायालय में प्रस्तुत अपील खारिज कर दी गई थी ।

15. विद्वान् सिविल न्यायाधीश ने तारीख 21 नवम्बर, 2006 के आदेश द्वारा ताला हटाने का निर्देश दिया था । हम, इसमें कोई अवैधता नहीं पाते हैं ।

16. अब, यह विधि का सुस्थिर सिद्धांत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39, नियम 1 ही व्यादेश मंजूर करने की न्यायालय की शक्ति का एकमात्र स्रोत नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 न्यायालय को व्यादेश मंजूर करने की शक्ति देती है, यदि, मामला, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश के नियम 1 और 2 के अधीन नहीं आता है । [देखें – मनोहर लाल चोपड़ा **बनाम** सेठ हीरालाल, ए. आई. आर. 1962 एस. सी. 527 और इंडिया हाउसहोल्ड एण्ड हेल्थकेयर लिमिटेड **बनाम** एल. जी. हाउसहोल्ड एण्ड हेल्थकेयर लिमिटेड, ए. आई. आर. (2007) 5 एस. सी. सी. 510] ।

17. विद्वान् काउंसेल श्री बनर्जी ने भागूजी बायाजी पोकले और अन्य **बनाम** कांति लाल बब्बन गुन्जावाटे [(1998) 3 एस. सी. सी. 377 बाम्बे] वाले मामले में, बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का जोरदार अवलंब लिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि –

> '8(7). द्वितीय सारवान् विधि के प्रश्न के संबंध में अर्थात् सह-स्वामी, संयुक्त तौर पर धारित संपत्ति के बारे में, अन्य सह-स्वामी के विरुद्ध व्यादेश के आदेश का दावा नहीं कर सकते हैं, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने मोहम्मद बकर **बनाम** नईम-उन-निशां बीबी (ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 548) वाले मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा 7

में निम्नलिखित अतिसुस्पष्टतः अभिनिर्धारित किया है –

> '7. ..... कार्रवाई के पक्षकार सह-अंशधारी हैं और विधि के अधीन एक सह-अंशधारी का कब्जा सभी सह-अंशधारियों का कब्जा होता है, यह तब तक उनके प्रतिकूल नहीं हो सकता है जब तक कि कब्जे में व्यक्ति द्वारा उनकी जानकारी में, उनके अधिकारों से इनकार नहीं करता है और कानूनी अवधि में उनका उस पर अपवर्जन और बेदखली नहीं हो जाता है ।'

यह भी मत व्यक्त किया है कि –

> '10. ..... इसी प्रकार, विधिक प्रास्थिति यह है कि संपत्ति का सह-स्वामी या सह-अंशधारी, अन्य अंशधारियों के प्रतिकूल कब्जे द्वारा कभी भी स्वामित्व का दावा कर सकता है । यह भी विधि का सुस्थिर सिद्धांत है ।'

18. इस मामले में, हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या यदि एक सह-स्वामी, संयुक्त संपत्ति के विनिर्दिष्ट कब्जे में है तो उसे न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना उससे बेकब्जा किया जा सकता है । इस मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी ने प्रतिकूल कब्जे के हक का दावा नहीं किया है । इसलिए, उक्त विनिश्चय वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होता है ।

19. श्री बनर्जी द्वारा अबू शाहिद **बनाम** अब्दुल हक दोभाश (ए. आई. आर. 1940 कलकत्ता 363), हेमन्त कुमार बनर्जी **बनाम** सतीश चन्द्र बनर्जी और अन्य (ए. आई. आर. 1941 कलकत्ता 635) और जहूरी शाह और अन्य **बनाम** द्वारिका प्रसाद झुनझुनवाला (ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 109) वाले मामलों का भी अवलंब लिया गया ।

20. **अबू शाहिद** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रश्न, जो विचार के लिए उद्भूत हुआ था वह बेदखली के साथ ही खाते की व्याख्या के अभिवाक् के बारे में था । हमारा, इस मामले में, ऐसे प्रश्न से कोई संबंध नहीं है ।

21. **हेमन्त कुमार बनर्जी** (उपर्युक्त) वाले मामले में, प्रश्न जो विचार के लिए उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या सह-अंशधारियों

के बीच विभाजन के विरुद्ध नियम लचीला है । पुनः हमारा संबंध यहां ऐसे प्रश्न से नहीं है ।

22. **जहूरी शाह** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त की है कि –

> 'इसके बाद, हम इस बात पर विचार करते हैं कि क्या प्रतिकर संदाय करने की संविदा प्रवर्तनीय नहीं है । इस सत्यता के बारे में कोई संदेह नहीं है कि विधि के अधीन अविभाजित संपत्ति का प्रत्येक सह-स्वामी सम्पूर्ण संपत्ति का उपभोग करने का हकदार है और उन सह-स्वामियों के प्रतिकर संदाय करने के लिए दायी नहीं होते हैं जिन्होंने संपत्ति उपभोग करने का चुनाव नहीं किया है । यह भी सत्य है कि उस सह-स्वामी के विरुद्ध उद्भूत प्रतिकर संदाय करने का दायित्व, जिसे जानबूझकर संपत्ति के उपभोग से अन्य सह-स्वामियों द्वारा अपवर्जित किया गया है । तथापि, यह मात्र ऐसे मामले में उद्भूत प्रतिकर संदाय करने का दायित्व का ही अनुसरण करता है न कि अन्य मामलों में । सह-स्वामी विधिमान्य तौर पर अपनी अविभाजित संपत्ति का उपभोग करने के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था करने में सक्षम होते हैं और संपत्ति के उपभोग से संबंधित कोई भी निबंधन अधिकथित करने के लिए स्वतंत्र होते हैं । विधि का ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है जो उन्हें ऐसा करार करने से अपवर्जित करता हो कि उनमें से कोई भी, जो वास्तविक कब्जे में है और संपत्ति का उपभोग कर रहा है वह अन्य सह-स्वामियों के प्रतिकर का संदाय करेगा ।'

ये मताभिव्यक्तियां भी अपीलार्थियों की कोई सहायता नहीं करते हैं । यदि पक्षकार आपसी करार द्वारा पृथक् फ्लैटों के कब्जे में प्रविष्ट करते हैं तो किसी भी अंशधारी को उसका भंग करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए ।''

29. **जय सिंह और अन्य** बनाम **गुरमेज सिंह**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक सह-अंशधारी के आपसी अधिकारों और दायित्वों में अन्तर्वलित मामले पर विचार किया और **भरतू** (उपर्युक्त) वाले मामले में यथाअधिकथित सिद्धांतों की तरह सिद्धांत अधिकथित किया ।

---

[1] ए. आई. आर. 2009 (1) एस. एल. जे. (एस. सी.) 714.

आगे कार्यवाही करने के पूर्व और विभिन्न न्यायालयों के निर्णयों को उल्लिखित करने के पश्चात् अब मैं विधि की प्रास्थिति को उल्लिखित करता हूं जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अधिकथित है ।

30. **प्रद्युमन सिंह और एक अन्य** बनाम **नारायण सिंह और एक अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक सह-अंशधारी को उस विवादित भूमि पर कोई निर्माण करने का अधिकार नहीं होता है जो विरोधी पक्षकार को हानि पहुंचाने में पक्षकार आपस में जुड़े होते हैं और न्यायालय के लिए यह समुचित नहीं होता है कि वह निर्माण जारी रखना मंजूर कर ले और इस शर्त पर निर्माण पूरा करने दे कि यह नष्ट कर दिया जाएगा यदि अंततोगत्वा यह पाया जाता है कि पक्षकार को निर्माण करने का कोई अधिकार नहीं था या उसने निर्माण करने के अपने अधिकार का अधिक्रमण किया है ।

31. **नागेश कुमार** बनाम **केवल कृष्ण**[2] वाले मामले में, इस न्यायालय ने **प्रद्युमन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले का अवलंब लेने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "16. एक सह-अंशधारी, व्यादेश पाने के लिए दावा करने का हकदार होता है, जब एक अन्य सह-अंशधारी अनन्य रूप से समुचित संयुक्त भूमि में ढांचे का निर्माण करते हुए, अन्य सह-अंशधारियों को क्षति पहुंचाने की धमकी देता है ।
>
> 17. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, वादी ने अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए वाद फाइल किया जैसे कि उसके द्वारा प्रार्थना की गई थी और जिसे कि विद्वान् ज्येष्ठ उप-न्यायाधीश द्वारा मंजूर कर लिया गया था ।
>
> 18. यदि, जब एक सह-अंशधारी उसके द्वारा धारित संयुक्त भूमि पर कोई निर्माण करने से रोकने के लिए अन्य सह-अंशधारियों के विरुद्ध स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल करता है तो उस अंशधारी के विरुद्ध इसकी अनुज्ञा देना ठीक और समुचित नहीं होता है, जब ऐसी भूमि पर गृह/निर्माण जारी रखने/पूरा करने के लिए व्यादेश के अनुतोष का दावा किया गया हो ।

---

[1] ए. आई. आर. 1991 (2) एस. एल. सी. 215.

[2] ए. आई. आर. 2000 हि. प्र. 116.

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने हरीश चन्दर वर्मा **बनाम** कायस्थ पाठशाला ट्रस्ट [1988 (1) जे. टी. (एस. सी.) 625] वाले मामले में इसी प्रकार की स्थिति पर विचार करते हुए, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है –

> '..... स्थायी व्यादेश के लिए डिक्री के विरुद्ध अपील में, उच्च न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा इसमें के प्रतिवादी/प्रत्यर्थी को निर्माण करने की अनुज्ञा दे दी, इस शर्त के अध्यधीन कि डिक्री की पुष्टि होने पर निर्माण ढहा दिया जाएगा ।
>
> 2. पक्षकारों की सुविधा और मामले के तथ्यों में उद्‌भूत साम्या के अलावा, एक व्यापक सिद्धांत मामले में अन्तर्वलित है । स्थायी व्यादेश के लिए डिक्री के आमुख पर ही इसे मंजूर करना अपील न्यायालय के लिए समुचित होता यदि इसे अपील के पूर्व अकृत होने के नाते निपटाया जाता । हमारा यह मत है कि उत्तर नकारात्मक में होना चाहिए ।'

20. इसी प्रकार का मत, इस न्यायालय द्वारा प्रद्युमन सिंह **बनाम** नारायण सिंह (उपर्युक्त) वाले मामले में अपनाया गया है ।"

32. **शिव चन्द** बनाम **मंगरू और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "7. प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह मत कि संयुक्त कब्जे में, के व्यक्तियों में से एक संयुक्त संपत्ति के एक भाग पर निर्माण कर सकता है परन्तु ईप्सित निर्माण क्षेत्र उसके अंश से अधिक नहीं हो सकता है, यह विधिक प्रतिपादना के प्रतिकूल है । विधि अति स्पष्ट है कि अचल संपत्ति के संयुक्त कब्जे में का व्यक्ति तब तक वाद संपत्ति की प्रकृति में परिवर्तन नहीं कर सकता है जब तक कि संपत्ति विभाजित नहीं हो जाती है अथवा संयुक्त कब्जे में के अन्य व्यक्तियों की संपत्ति की प्रकृति में ऐसे परिवर्तन करने की सहमति नहीं हो जाती है .....।
>
> 8. अगले प्रश्न पर विचार करते हैं, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अपनाया गया मत पुनः त्रुटिपूर्ण है । अचल संपत्ति के

[1] 2007 (1) नवीनतम एच. एल. जे. (हि. प्र.) 413.

व्यवस्थित संयुक्त कब्जे में के व्यक्तियों का संयुक्त कब्जे में स्वामियों के रूप में उसी प्रकार और तरीके में प्रत्येक अन्य व्यक्ति का संयुक्त कब्जे का अधिकार होता है । इसलिए, विद्वान् प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह मत कि दोनों पक्षकार अतिक्रमणकर्ता होने के नाते, उनमें से कोई भी बिना विभाजन अथवा अन्यों की सहमति के बिना संपत्ति की प्रकृति में परिवर्तन कर सकता है, सुस्थिर प्रतिपादना और विधि के सिद्धांतों के प्रतिकूल है । अतएव, इस प्रकार का उत्तर भी वादी-अपीलार्थी के पक्ष में दिया जाता है ।"

33. **प्यार सिंह** बनाम **नारायण दास और अन्य**[1] वाले मामले में, इस न्यायालय ने **नागेश कुमार** और **प्रद्युमन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में को उल्लिखित करने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"12. प्रत्यर्थियों ने लिखित कथन में विनिर्दिष्टतः यह अभिवाक् किया है कि पक्षकार, कुटुम्ब व्यवस्थापन के अधीन पृथक् कब्जे में है । याची ने संयुक्त भूमि पर अपने गृह का भी निर्माण कर लिया है । याची का आधार यह नहीं है कि प्रत्यर्थी उस क्षेत्र में निर्माण कर रहे हैं जो उनके हिस्से से अधिक है । प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि याची भूमि के बेहतर भाग पर अपने गृह का निर्माण किया है । प्रत्यर्थियों द्वारा किया जा रहा गृह निर्माण, राष्ट्रीय राजमार्ग 21 से दूर है जबकि याची का गृह, राष्ट्रीय राजमार्ग 21 से सटा हुआ है । प्रत्यर्थियों ने पुनरीक्षण की फाइल पर प्रत्यर्थियों के निर्माणाधीन गृह के फोटोग्राफ अभिलेख पर रखा है । फोटोग्राफों से याची द्वारा पहले ही निर्मित गृह और प्रत्यर्थियों का निर्माणाधीन गृह के बीच पर्याप्त दूरी उपदर्शित होती है जिस पर भी स्लैब लगे हुए हैं । लिखित कथन में प्रत्यर्थियों का पक्षकथन यह है कि वे कुटुम्ब व्यवस्थापन के अधीन भूमि के पृथक् कब्जे में हैं । इस तथ्य को प्रत्युत्तर फाइल करते हुए, इनकार नहीं किया गया है । प्रत्यर्थियों ने कुटुम्ब व्यवस्थापन अर्थात् याची की सहमति से वाद भूमि, जिस पर निर्माण चल रहा है, पर कब्जे का दावा किया है । इस प्रकार, प्रत्यर्थियों ने प्रथमदृष्ट्या मामले को सिद्ध कर दिया है, सुविधा का संतुलन, अपूरणीय क्षति उनके पक्ष में है । इन परिस्थितियों में, आक्षेपित निर्णय में कोई गलती नहीं पाई जा सकती है । पुनरीक्षण का क्षेत्र सीमित होता है जैसा कि मैनेजिंग

[1] 2010 (3) शिमला एल. सी. 205.

डायरेक्टर (एम. आई. जी.) हिन्दुस्तान एयरोनोटिक्स लिमिटेड, बालानगर, हैदराबाद और एक अन्य **बनाम** अजीत प्रसाद तारवे, मैनेजर (परचेज एण्ड स्टोर्स) हिन्दुस्तान एयरोनोटिक्स लिमिटेड, बालानगर, हैदराबाद (ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 76) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । वाद, स्थायी प्रतिषेधात्मक और आज्ञापक व्यादेश के लिए है । पक्षकारों के अधिकार वाद में विनिश्चित होंगे । यह सिद्ध नहीं किया गया है कि विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा अपनाया गया मत अभिलेख पर के सामग्रियों से उद्भूत नहीं होता है ।"

34. **कलावती और एक अन्य** बनाम **सुधीर चन्द और अन्य**[1] वाले मामले में, जो तारीख 13 अप्रैल, 2011 को विनिश्चित हुआ, **बच्चन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चयाधार पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"8. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वाद फाइल किए जाने के पूर्व ही सारभूत निर्माण कर लिए गए थे और प्रतिवादियों ने घटनास्थल से बड़ी मात्रा में सामग्रियां एकत्रित कर ली थीं, इसलिए, मेरे मत में मामले में वादियों को कोई अपूरणीय हानि और क्षति कारित नहीं होगी यदि ऐसे निर्माण को जारी करना मंजूर कर लिया जाता है । दूसरी ओर, यदि प्रतिवादियों को निर्माण जारी रखने की अनुज्ञा दे दी जाती है तो वादियों के हित यह स्पष्ट करते हुए संरक्षित किया जा सकता है कि निर्माण, वाद का अंतिम विनिश्चय होने के अध्यधीन किया जा सकता है और यदि वाद, वादियों के पक्ष में डिक्री होता है तो प्रतिवादियों को या तो अपने अंश से अधिक भाग को नष्ट करना होगा या उसे भवन निर्माण की लागत के लिए कोई प्रतिकर मांगे बिना वादियों को सौंपना होगा ।"

35. **बृज लाल** बनाम **पूरन चन्द**[2] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"8. विभाजन कार्यवाहियां सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लम्बित हैं यद्यपि, प्रतिवादी, प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में कुछ कुटुम्ब विभाजन के बारे में निर्देश किया है, तथापि, उसने न तो कोई तारीख न ही

---

[1] 2011 ला सूट (एच. पी.) 692 (2010 की सी. एम. पी. एम. ओ. संख्या 193).

[2] 2011 हि. प्र. एल. आर. 80.

माह न ही वर्ष दिया है जब कुटुम्ब विभाजन किया जाना है । उसने यह स्वीकार किया है कि वाद भूमि माप 11-12 बीघा पक्षकारों की संयुक्त भूमि है । अपने लिखित कथन में उसने न केवल यह दावा किया है कि वह वाद भूमि के अनन्य कब्जे में है अपितु, वादी और अन्य सह-अंशधारियों को अपवर्जित करते हुए वाद भूमि में अनन्य हक भी रखता है । चूंकि प्रश्नगत भूमि विभाजित नहीं हुई है, इसलिए, प्रतिवादी को उसका कोई व्यवस्थापन हुए बिना या सह-स्वामियों की सहमति के बिना उस पर कोई निर्माण करने की कोई अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है । यदि वह उस पर कोई निर्माण करना चाहता है तो उसे अन्य सह-स्वामियों की सहमति लेनी चाहिए जब तक कि प्रश्नगत भूमि संयुक्त है । विद्वान्, जिला न्यायाधीश ने अपील खारिज करते हुए, सही ही, संत राम नगीना राम **बनाम** दया राम नगीना राम (ए. आई. आर. 1961 पंजाब 528) और इस न्यायालय द्वारा प्रीति सिंह **बनाम** बचीत्तर सिंह (1969 डी. एल. टी. 583) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है ।"

36. **अमीन चन्द और एक अन्य चेत राम** बनाम **चेत राम और अन्य अमीन चन्द**[1] विनिश्चित तारीख 7 अप्रैल, 2010 वाले मामले में, **बच्चन सिंह** और **नागेश कुमार** (उपर्युक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णय को उल्लिखित करने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

"12. यह सत्य है कि यदि भूमि वादी और अन्य सह-अंशधारियों द्वारा संयुक्ततः धारित और कब्जे में है और उसका विभाजन नहीं हुआ है तो वादी को विभाजन होने तक वाद भूमि की प्रकृति में परिवर्तन करने से या उस पर कोई निर्माण करने से प्रतिवादियों को अवरुद्ध करते हुए, उसके पक्ष में व्यादेश मंजूर करने का हकदार अभिनिर्धारित किया जा सकता है । तथापि, ऐसा तभी किया जा सकता है यदि भूमि कुछ अन्य व्यक्तियों को विक्रय कर दी गई हो तब वादी स्वयं ही जो विभाजन होने तक निर्माण करने से प्रतिवादी सं. 1 की शक्ति पर विक्रय-विलेख में कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किया है अथवा यह निर्देश नहीं किया है कि भूमि के किस विशिष्ट भाग, चाहे वह राजमार्ग से सटा हुआ हो या पीछे की ओर हो, प्रतिवादी सं. 1 को विक्रय कर दिया हो । वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित

[1] 2005 की सिविल पुनरीक्षण संख्या 153 और 161.

प्रश्नगत विक्रय-विलेख तारीख 26 जून, 1995 का है और उसके परिशीलन से यह दर्शित होता है कि इसमें यह स्पष्टतः उल्लिखित किया गया है कि 4 बिस्वा भूमि प्रतिवादी सं. 1 को विक्रय कर दिया गया है जो ऐसे किसी भी तरीके से उसका उपयोग करने का हकदार होगा, जैसा वह चाहता है और उसे कब्जा भी सौंप दिया गया था । यदि वादी, कोई निर्माण करने से प्रतिवादी सं. 1 की शक्तियों पर कुछ निर्बंधन लगाना चाहता है या उसका यह विचार है कि प्रतिवादी सं. 1, वादी और अन्य सह-स्वामियों के सम्पूर्ण हिस्से में से राजमार्ग से सटे सम्पूर्ण भूमि का अधिक्रमण नहीं कर सकता है तो वह भूमि के इस विशिष्ट भाग पर निर्माण करने से प्रतिवादी की शक्तियों पर निर्बंधन लगा सकता है । यह हो सकता है कि वादी, प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व करे और स्वयं को राजमार्ग से सटे भूमि का स्वामी दर्शित करे और जब एक बार प्रतिवादी भूमि क्रय कर लेता है और सम्पूर्ण भूमि में से 4 बिस्वा भूमि का कब्जा उसे सौंप दिया जाता है और तब विभाजन होने तक निर्माण करने से उसकी शक्तियों पर कोई निर्बंधन नहीं लगाया जा सकता है । यह बात विनिर्दिष्ट नहीं है कि भूमि, राजमार्ग या अन्यथा से सटा हुआ है । साम्या में, सिविल न्यायालय द्वारा मामले का निपटारा करने तक, वादी को व्यादेश के लिए वाद फाइल करने और अस्थायी व्यादेश के अनुतोष का दावा करने का हकदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । साम्या में, वादी तब तक अपने पक्ष में अस्थायी व्यादेश पाने का हकदार नहीं होता है जब तक कि इस प्रश्न का निपटारा सिविल न्यायालय द्वारा नहीं कर दिया जाता है कि पक्षकारों में से किसका कब्जा था या भूमि का कौन सा विशिष्ट भाग प्रतिवादी सं. 1 को विक्रय किया गया था और कौन सी भूमि, वादी द्वारा प्रभावी विक्रय-विलेख के अनुसरण में प्रतिवादी सं. 1 को कब्जे में दी गई थी । ये सभी प्रश्न सिविल न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जाने हैं किन्तु, इस समय, साम्या के अनुसार, वादी को उसके पक्ष में व्यादेश के अनुतोष का हकदार अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । यह विशिष्टतया, तब जब प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया है उसने 1 लाख रुपए खर्च करके वाद भूमि पर निर्माण कर लिया है, जैसा कि लिखित कथन में अभिवाचित है । प्रतिवादी, अधिक्रमण नहीं करेगा या उस भूमि से अधिक आच्छादित नहीं करेगा जितनी भूमि पर उसने पहले ही निर्माण कर लिया है जिसमें वह वाद का निपटारा होने तक निर्माण कार्य पूरा करने का

हकदार होगा । तथापि, प्रतिवादी द्वारा इस प्रकार किया गया निर्माण विभाजन होने पर अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों के अध्यधीन होगा और यदि प्रतिवादी अपने अंश से अधिक अंश पर निर्माण कर लिया है या उस भाग पर निर्माण कर लिया है जो विभाजन होने पर अन्य सह-अंशधारी के हिस्से में आएगा तो प्रतिवादी सं. 1 को ऐसे निर्माण को नष्ट करना होगा जिसे उसने स्वयं अपने जोखिम पर निर्माण किया है । यह विभाजन के समय पर समायोजन के अध्यधीन होगा जिसमें पक्षकारों में से कोई भी आवेदन करने और समुचित अनुतोष पाने का हकदार होगा ।"

37. **जगदीश राम** बनाम **विश्वमित्तर और अन्य**[1] वाले नवीनतम मामले में, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक स्वामी द्वारा संयुक्त संपत्ति का कब्जा, विधि की दृष्टि में सभी की ओर से कब्जा माना जाता है किन्तु, एक के अलावा वस्तुतः सभी कब्जे से बाहर होते हैं । सम्पूर्ण संयुक्त संपत्ति के बड़े भाग या संपूर्ण संपत्ति का अधिभोग बेदखली की कोटि में नहीं आता है, क्योंकि एक का कब्जा सभी की ओर से कब्जा माना जाता है । एक सह-स्वामी को उपचार, जो कब्जे से बाहर है और कब्जे में नहीं है, विभाजन या वस्तुतः संयुक्त कब्जे के लिए वाद के माध्यम से दिया जा सकता है ।

38. **मुंशी लाल** बनाम **राजू वैद्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

"13. याची कम-से-कम एक सह-अंशधारी है । वह वाद भूमि की प्रकृति में अन्य सह-अंशधारियों की सहमति के बिना और वाद भूमि का विभाजन किए बिना परिवर्तन नहीं कर सकता है । याची इस प्रक्रम पर, वाद भूमि में से विनिर्दिष्ट भूमि 0-14-09 बीघे भूमि पर अपने कब्जे की शनाख्त करने में असफल रहा है । दोनों निचले न्यायालयों ने अभिलेख पर की सामग्रियों का मूल्यांकन करने के पश्चात् प्रत्यर्थी के पक्ष में अन्तरिम व्यादेश मंजूर किया है । यह नहीं कहा जा सकता है कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा दिए गए विनिश्चय बिना अधिकारिता के हैं या विधि की ऐसी त्रुटि से ग्रसित है जो संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन याचिका के माध्यम

[1] 2012 एच. एल. जे. (हि. प्र.) 1427.
[2] 2013 (2) हि. प्र. एल. आर. 1172.

से, सुधार किया जाना अपेक्षित है । इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं है ।"

39. मैंने, स्वयं **प्रभु नाथ और एक अन्य** बनाम **सुषमा**[1] वाले मामले में, **नागेश कुमार, शिव चन्द** (उपर्युक्त) और **बृज लाल** (उपर्युक्त) वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयाधार पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "3. स्वीकृततः, पक्षकार सह-स्वामी हैं और यह सुस्थिर है कि प्रत्येक सह-स्वामी का भूमि के प्रत्येक इंच पर प्रत्येक का अधिकार होता है । एक सह-अंशधारी का कब्जा सभी की ओर से कब्जा माना जाता है और इसलिए, सह-अंशधारी एक अन्य सह-अंशधारी को क्षति पहुंचाते हुए, वाद भूमि की प्रकृति में परिवर्तन नहीं कर सकता है जब तक कि वाद भूमि विभाजित नहीं हो जाती है या अन्य सह-अंशधारियों की सहमति से ऐसा नहीं किया गया है । इस मत को इस न्यायालय द्वारा निरन्तर कई निर्णयों में अपनाया गया है ।"

40. **जोगिन्दर सिंह और अन्य** बनाम **सुरेश कुमार और अन्य**[2] वाले मामले में, **नागेश कुमार** (उपर्युक्त) और **बचन सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामलों में दिए गए निर्णयों को विचार में लेने के पश्चात् निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "19. स्वीकृततः, प्रतिवादी ने वाद भूमि का विभाजन किए बिना उसके एक भाग के ऊपर कुर्सी तक निर्माण कर लिया है । वह ऐसा करते हुए, अन्य सह-अंशधारियों जिसमें इसमें के वादी ही सम्मिलित हैं, के अधिकारों से वंचित करने की भी धमकी दी है । वह खाली वाद भूमि के अनन्य कब्जे में भी नहीं था जिसके ऊपर उसका निर्माण करने का आशय था, अतएव, उसे इसमें के अन्य सह-अंशधारियों के अधिकारों और हितों का अतिक्रमण करते हुए, निर्माण जारी रखने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।"

41. विधि की प्रतिपादना, जैसा कि उपर्युक्त निर्दिष्ट विभिन्न निर्णयों में जिसमें इस उच्च न्यायालय के निर्णय भी सम्मिलित हैं, में परिगणित है जहां तक कि यह सह-अंशधारियों के अधिकारों और दायित्वों से संबंधित

---

[1] 2014 (2) शिमला एल. सी. 1003.

[2] ए. आई. आर. 2015 हि. प्र. 18.

है, निम्नलिखित प्रतिपादनाएं उद्भूत की जा सकती हैं :–

"1. एक सह-स्वामी का सम्पूर्ण संपत्ति में और इसके प्रत्येक भाग में भी हित होता है ।

2. एक सह-स्वामी द्वारा संयुक्त संपत्ति का कब्जा, विधि की दृष्टि में, सभी की ओर से कब्जा माना जाता है किन्तु, वस्तुतः एक को छोड़कर सभी कब्जे से बाहर होते हैं ।

3. मात्र एक बड़े भाग का अधिभोग या सम्पूर्ण संयुक्त संपत्ति का अधिभोग आवश्यक रूप से बेदखली की कोटि में नहीं आता है, क्योंकि एक का कब्जा सभी की ओर से कब्जा माना जाता है ।

4. उपर्युक्त नियम का एक अपवाद स्वीकृत है, जब एक अन्य द्वारा दूसरे सह-स्वामी की बेदखली की जाती है । किन्तु, बेदखली के आधार पर सभी की ओर से संयुक्त कब्जे की उपधारणा के नकारात्मक अनुक्रम में, एक सह-स्वामी का कब्जा न केवल अनन्य होना चाहिए अपितु, सभी की जानकारी में प्रतिकूल भी होना चाहिए क्योंकि जब एक सह-स्वामी खुले तौर पर स्वयं अपने हक का प्रत्याख्यान करता है और अन्यों का इनकार करता है ।

5. समय बीतने के साथ उस सह-स्वामी का अधिकार समाप्त नहीं हो जाता है, जो संयुक्त संपत्ति के कब्जे से बाहर होता है, सिवाय बेदखली या त्यक्त करने की दशा में ।

6. प्रत्येक सह-स्वामी को अपने तरीके से संयुक्त संपत्ति का उपयोग करने का अधिकार होता है, जो अन्य सह-स्वामियों के इसी प्रकार के अधिकारों से असंगत नहीं होता है ।

7. जहां एक सह-स्वामी, अन्य सह-स्वामियों की सहमति से एक व्यवस्थापन के अधीन पृथक्-पृथक् भागों के कब्जे में होता है तो यह किसी भी व्यक्ति के लिए खुला नहीं होता है कि वह अन्यों की सहमति के बिना व्यवस्थापन को विवादित कर सके, सिवाय विभाजन के लिए वाद फाइल करके ।

8. एक सह-स्वामी का उपचार कब्जे में नहीं होता है और न ही संयुक्त संपत्ति के एक अंश के कब्जे में होता है, अपितु, यह विभाजन या वस्तुतः संयुक्त कब्जे के लिए वाद के माध्यम से होता है, किन्तु यह बेदखली के लिए वाद के माध्यम से नहीं होता है । इसी प्रकार के

मामले होते हैं, जहां एक सह-स्वामी स्वयं में अनन्य हक स्थापित कर सकता है ।

9. जहां सह-स्वामियों की सामान्य सहमति से संयुक्त संपत्ति का विभाजन होता है वहां विशिष्ट सामान्य प्रयोजन आरक्षित होता है, तो इसे एक सह-स्वामी द्वारा असंगत उपयोगकर्ता के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो वह बेदखली के लिए दायी होता है और वह विशिष्ट भाग इसके मूल दशा में वापस होने के लिए दायी होता है । ऐसे मामलों में यह दर्शित करना आवश्यक नहीं होता है कि विशेष क्षति कारित हुई है ।"

42. यह भी सुरक्षित तौर पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सह-स्वामी विभिन्न और सुभिन्न हकों द्वारा संपत्ति धारित करते हैं किन्तु कब्जे में एकांकी रखते हैं । वास्तविक भौतिक कब्जा अनिवार्य नहीं है, सामान्य संपत्ति में कब्जे का अधिकार होना अपेक्षित है ।

43. उपर्युक्त अधिकार के सांपार्श्विक रूप में, कोई सह-स्वामी प्रतिकूल करार के अभाव में, सामान्य संपत्ति में प्रविष्ट होने और सम्पूर्ण संपत्ति का कब्जा लेने का अधिकार रखता है, किन्तु यह उन अन्य सह-स्वामियों के समान अधिकार के अध्यधीन होता है जिन्हें कब्जा रखने का अधिकार होता है, उसे उसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं होता है ।

44. सामान्य संपत्ति में एक सह-स्वामी का कब्जा प्रथमदृष्ट्या अन्य सह-स्वामियों के प्रतिकूल नहीं होता है क्योंकि ऐसा कब्जा सभी सह-स्वामियों की ओर से एक के कब्जे के रूप में विचार किया जाता है, सिवाय जब प्रतिकूल हक की बेदखली या प्रत्याख्यान का स्पष्ट सबूत होता है ।

45. क्योंकि प्रत्येक सह-स्वामी, सामान्य संपत्ति के प्रत्येक भाग में कब्जे का हकदार होता है और उसके अंश के अनुसार, उपभोग में कोई निर्बंधन नहीं होता है, जहां तक कि वह अन्य सह-स्वामियों के अधिकारों से इनकार नहीं करता है जो सामान्य संपत्ति में कब्जे और उपभोग का समान अधिकार रखते हैं, वह ऐसे सह-अंशधारियों को या तो लेखे के लिए या प्रतिकर संदाय करने के लिए किसी बाध्यता के अधीन नहीं होता है । मामला भिन्न होता है, यदि अन्य सह-अंशधारी आक्षेप करते हैं और कोई भी मैत्रीपूर्ण व्यवस्थापन नहीं हुआ हो । वे मामले भी इसी प्रकार के होते हैं जहां अन्य सह-स्वामियों के हक की बेदखली या इनकार होता है और स्वयं

को प्रतिकूल हक का प्रत्याख्यान है ।

46. विभिन्न न्यायिक उद्घोषणाओं पर विचार करते हुए और सह-अंशधारियों के अधिकारों और दायित्वों तथा अन्यों को अपवर्जित करते हुए, निर्माण करने के उनके अधिकारों पर इन विनिश्चयों में अपनाए गए प्रबल मतों के आधार पर, औपचारिक तौर पर निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किए जा सकते हैं :–

"(i) एक सह-स्वामी को सामान्य संपत्ति में पूर्णतः और साधारण तौर पर अपने अधिकारों का अतिक्रमण करते हुए अन्य सह-स्वामी को अवरुद्ध करते हुए व्यादेश पाने का हक नहीं होता है क्योंकि वह तब तक एक सह-स्वामी होता है जब तक कि संपत्ति में कब्जाधारी व्यक्ति का कोई कार्य प्रतिकूल बेदखली की कोटि में नहीं आता है या कब्जे से बाहर सह-स्वामी के हित के प्रतिकूल नहीं होता है ।

(ii) सामान्य संपत्ति में मात्र निर्माण या उसमें सुधार करना बेदखली की कोटि में नहीं आता है ।

(iii) यदि कब्जे में के सह-स्वामी के किसी कार्य द्वारा संपत्ति के मूल्य या उसकी उपयोगिता में कोई हानि होती है तो कब्जे से बाहर के सह-स्वामी निश्चित तौर पर संपत्ति के मूल्य और उपयोगिता की हानि को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकते हैं ।

(iv) यदि कब्जे में के सह-स्वामी किसी कार्य द्वारा अन्य सह-स्वामियों के हित को क्षति पहुंचती है तो कब्जे से बाहर के सह-स्वामी ऐसे कार्य को रोकने के लिए व्यादेश की ईप्सा कर सकते हैं जिससे उसके हित की क्षति होती है ।

(v) व्यादेश जारी करने के पूर्व, वादी को यह सिद्ध करना होता है कि उसे ऐसे कार्य द्वारा क्षति हुई है, जिसकी वह शिकायत करता है, जो तात्विक रूप से संयुक्त संपत्ति में उसकी प्रास्थिति या उसके उपभोग या अभ्यस्त उपयोगकर्ता को प्रभावित करता है, जिससे असुविधा या हस्तक्षेप होता है ।

(vi) यह प्रश्न कि सुविधा के संतुलन के आधार पर मौजूद परिस्थितियों में, क्या अनुतोष मंजूर किया जाना चाहिए, यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है और न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करते समय न्याय, साम्या और शुद्ध अंतःकरण द्वारा

मार्गदर्शित होता है ।"

47. न्यायालय अस्थायी व्यादेश मंजूर करने के लिए, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग मात्र तभी कर सकता है जब वादी द्वारा निम्नलिखित अपेक्षाएं पूरी की जाती हों :–

> "(i) प्रथमदृष्ट्या मामले की मौजूदगी, यथाअभिवाचित, में अस्थायी व्यादेश जारी करते हुए, वादी के अधिकारों की आवश्यक रूप से संरक्षण,
>
> (ii) जब वादी के अधिकारों का संरक्षण करने की आवश्यकता को प्रतिवादी के अधिकारों या इसी प्रकार के प्रतिवादी के अधिकारों के अतिलंघन का संरक्षण करने की आवश्यकता के विरुद्ध तुलना या भार दिया जाता है तो सुविधा का संतुलन वादी के पक्ष में होना चाहिए, और
>
> (iii) वादी को कारित होने वाले अपूर्णनीय क्षति की स्पष्ट संभाव्यता यदि अस्थायी व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है ।
>
> इसके अतिरिक्त, सामयिक अनुतोष होने के नाते अस्थायी व्यादेश मंजूर करने का विवेकाधिकार का प्रयोग तभी किया जा सकता है जब वादी का आचरण दोषमुक्त हो और वह न्यायालय के समक्ष स्वच्छ हाथों से आया हो ।"

48. विद्वान् विचारण न्यायालय के साथ ही अपील न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि दोनों निचले न्यायालयों ने न केवल अभिवचनों पर विचार किया है अपितु इस विषय पर विधि पर भी विचार किया है और इसके पश्चात् व्यादेश मंजूर किया है । यह न्यायालय, संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते समय, निचले न्यायालयों के विवेकाधिकार में साधारणतया हस्तक्षेप नहीं करेगा और अपना विवेकाधिकार प्रतिस्थापित नहीं करेगा सिवाय जब तक कि निचले न्यायालयों द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार मनमाना, स्वेच्छाचारी या अनुचित दर्शित नहीं होते हैं अथवा जहां कि न्यायालय ने अन्तर्वर्ती व्यादेश मंजूर या इनकार करने में सुस्थिर विधि के सिद्धांतों की अवहेलना की है । यह न्यायालय सामग्रियों का पुनः विवेचन भी नहीं करेगा और निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से भिन्न निष्कर्ष भी नहीं निकालेगा यदि निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष,

संभाव्यतः युक्तियुक्त तौर पर उसके समक्ष मौजूद सामग्रियों पर निकाले गए हों । यह न्यायालय साधारण तौर पर एकमात्र इस आधार पर विवेकाधिकार के प्रयोग में हस्तक्षेप करना न्यायोचित नहीं समझता है कि यदि इस मामले पर, विचारण के प्रक्रम पर विचार किया गया होता तो इसमें प्रतिकूल निष्कर्ष निकाले गए होते । यदि निचले न्यायालयों द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार युक्तियुक्त हैं और न्यायिक तरीके से हैं तो यह न्यायालय निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए मत से भिन्न मत नहीं अपनाएगा और न ही उनके द्वारा प्रयोग किए गए विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करेगा ।

49. तथ्यों का उल्लेख करते हुए, यह प्रतीत होता है कि याची ने कब्जे के विशुद्धः बल पर ही वाद भूमि पर निर्माण करने के अधिकार का दावा किया है और वस्तुतः, अपने पक्ष में प्रतिकूल कब्जे का इस आधार पर दावा किया है कि वह वाद भूमि पर शांतिपूर्ण और निर्वाधित कब्जे में है । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 के नियम 1 और 2 के अधीन फाइल उत्तर की भाषा के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 39 के नियम 4 के अधीन याची द्वारा प्रस्तुत पृथक्-पृथक् आवेदन की अन्तर्वस्तुओं से यह उपदर्शित होता है कि याची वस्तुतः उस प्रत्यर्थी की बेदखली का दावा किया है जो स्वीकृततः संपत्ति का एक सह-स्वामी है । उसका अधिकारों का प्रयोग, अन्य सह-स्वामी के अधिकारों से असंगत है । याची ने अन्य सह-स्वामी के अधिकारों से इनकार किया है । एक बार, यदि ऐसा हो जाता है तो याची, अन्य सह-अंशधारियों की सहमति के बिना निर्माण करने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता है न ही उसे संयुक्त धारित संपत्ति के किसी भाग का उपयोग करने का अधिकार होता है जिससे अन्य सह-अंशधारी के हितों को क्षति पहुंचती है या वह संपत्ति के उपयोग में परिवर्तन की कोटि में या उस भाग से अन्य सह-अंशधारी की कोटि में आता है ।

50. ऐसा कथन करते हुए, मैं, इस याचिका में कोई गुणागुण नहीं पाता हूं और इसे कुल 25,000/- रुपए के खर्चे के साथ खारिज करता हूं ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

क.

गतांक से आगे.....

अध्याय 10

निःशक्त व्यक्तियों के लिए संस्थाओं को मान्यता

50. **सक्षम प्राधिकारी** – राज्य सरकार, किसी प्राधिकारी को, जिसे वह इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सक्षम प्राधिकारी होने के लिए ठीक समझे, नियुक्त करेगी ।

51. **किसी व्यक्ति द्वारा निःशक्त व्यक्तियों के लिए, किसी संस्था की स्थापना या उसका अनुरक्षण रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के अनुसार ही किया जाना, अन्यथा नहीं** – इस अधिनियम के अधीन जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई भी व्यक्ति, निःशक्त व्यक्तियों के लिए किसी संस्था की स्थापना या उसका अनुरक्षण इस निमित्त सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के अधीन और उसके अनुसार ही करेगा, अन्यथा नहीं :

परन्तु यह कि ऐसा व्यक्ति जो इस अधिनियम के प्रारंभ के ठीक पूर्व निःशक्त व्यक्तियों के लिए किसी संस्था का अनुरक्षण कर रहा है, ऐसे प्रारंभ से छह मास की अवधि के लिए ऐसी संस्था का अनुरक्षण चालू रख सकेगा और यदि उसने उक्त छह मास की अवधि के भीतर ऐसे प्रमाणपत्र के लिए आवेदन किया है तो ऐसे आवेदन के निपटाए जाने तक संस्था का अनुरक्षण चालू रख सकेगा ।

52. **रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र** – (1) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के लिए प्रत्येक आवेदन, सक्षम प्राधिकारी को ऐसे प्ररूप में और ऐसी रीति से किया जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ।

(2) उपधारा (1) के अधीन आवेदन की प्राप्ति पर, सक्षम प्राधिकारी, ऐसी जांच करेगा जो वह ठीक समझे और जहां उसका यह समाधान हो जाता है कि आवेदक ने इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन किया है वहां वह आवेदक को रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र देगा और जहां सक्षम प्राधिकारी का इस प्रकार समाधान नहीं होता है वहां वह, आदेश द्वारा, ऐसा प्रमाणपत्र देने से, जिसके लिए आवेदन किया जाता है, इनकार करेगा :

परन्तु प्रमाणपत्र देने से इनकार करने का कोई आदेश करने के पूर्व, सक्षम प्राधिकारी, आवेदक को सुनवाई का उचित अवसर देगा और

प्रमाणपत्र देने से इंकार करने का प्रत्येक आदेश, आवेदक को ऐसी रीति से, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए, संसूचित किया जाएगा ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक वह संस्था, जिसके बारे में आवेदन किया गया है, ऐसी सुविधाएं देने तथा ऐसे स्तरमान बनाए रखने की स्थिति में है जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(4) इस धारा के अधीन दिया गया रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, –

(क) जब तक धारा 53 के अधीन प्रतिसंदत्त नहीं किया जाता है, उस अवधि के लिए प्रवृत्त बना रहेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए ;

(ख) वैसी ही अवधि के लिए समय-समय पर नवीकृत किया जा सकेगा ; और

(ग) ऐसे प्ररूप में होगा और ऐसी शर्तों के अधीन होगा, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(5) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, के नवीकरण के लिए आवेदन, विधिमान्यता की अवधि के कम से कम साठ दिन पूर्व किया जाएगा ।

(6) रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, संस्था द्वारा किसी सहजदृश्य स्थान पर प्रदर्शित किया जाएगा ।

53. **प्रमाणपत्र का प्रतिसंहरण** – (1) यदि सक्षम प्राधिकारी के पास यह विश्वास करने का युक्तियुक्त हेतुक है कि धारा 52 की उपधारा (2) के अधीन दिए गए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के धारक ने, –

(क) प्रमाणपत्र जारी करने या नवीकरण के किसी आवेदन के संबंध में ऐसा कथन किया है जो तात्विक विशिष्टियों में गलत या मिथ्या है ; या

(ख) नियमों या किन्हीं ऐसी शर्तों का भंग किया है या भंग करवाया है, जिनके अधीन प्रमाणपत्र दिया गया था,

तो वह ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, आदेश द्वारा, प्रमाणपत्र को प्रतिसंहृत कर सकेगा :

परन्तु ऐसा कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक

प्रमाणपत्र के धारक को हेतुक दर्शित करने का ऐसा अवसर नहीं दे दिया जाता है कि प्रमाणपत्र क्यों न प्रतिसंहृत किया जाए ।

(2) जहां किसी संस्था की बाबत, प्रमाणपत्र उपधारा (1) के अधीन प्रतिसंहृत किया गया है वहां ऐसी संस्था, ऐसे प्रतिसंहरण की तारीख से कृत्य करना बंद कर देगी :

परन्तु जहां कोई अपील, प्रतिसंहरण के आदेश के विरुद्ध धारा 54 के अधीन की जाती है वहां ऐसी संस्था, –

(क) जहां कोई अपील नहीं की गई है वहां, ऐसी अपील फाइल किए जाने के लिए विहित की गई अवधि की समाप्ति पर तुरन्त, या

(ख) जहां ऐसी अपील की गई है किन्तु प्रतिसंहरण के आदेश को मान्य ठहराया गया है वहां, अपील के आदेश की तारीख से,

कृत्य करना बन्द कर देगी ।

(3) किसी संस्था की बाबत किसी प्रमाणपत्र के प्रतिसंहरण पर, सक्षम प्राधिकारी, यह निदेश दे सकेगा कि कोई निःशक्त व्यक्ति, जो ऐसे प्रतिसंहरण की तारीख को ऐसी संस्था का वासी है, –

(क) यथास्थिति, उसके माता-पिता, पति या पत्नी या विधिक संरक्षण की अभिरक्षा में दे दिया जाएगा, या

(ख) सक्षम प्राधिकारी द्वारा विनिर्दिष्ट किसी अन्य संस्था को अंतरित कर दिया जाएगा ।

(4) प्रत्येक संस्था, जो ऐसा रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र धारण करती है जो इस धारा के अधीन प्रतिसंहृत किया जाता है, ऐसे प्रतिसंहरण के तुरन्त पश्चात् ऐसा प्रमाणपत्र सक्षम प्राधिकारी को अभ्यर्पित करेगी ।

54. **अपील** – (1) सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रमाणपत्र देने से इंकार करने से या प्रमाणपत्र का प्रतिसंहरण किए जाने से व्यथित व्यक्ति, ऐसी अवधि के भीतर जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाए, ऐसे इंकार या प्रतिसंहरण के विरुद्ध उस सरकार को अपील कर सकेगा ।

(2) ऐसी अपील पर राज्य सरकार का आदेश अंतिम होगा ।

55. **केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा स्थापित अनुरक्षित संस्थाओं को अधिनियम का लागू न होना** – इस अध्याय की कोई बात, केन्द्रीय सरकार

या किसी राज्य सरकार द्वारा स्थापित या अनुरक्षित निःशक्त व्यक्तियों के लिए किसी संस्था को लागू नहीं होगी ।

अध्याय 11

गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के लिए संस्था

56. **गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के लिए संस्थाएं** – (1) समुचित सरकार, ऐसे स्थानों पर जो वह ठीक समझे, गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के लिए संस्थाओं की स्थापना और उनका अनुरक्षण कर सकेगी ।

(2) जहां समुचित सरकार की यह राय है कि उपधारा (1) के अधीन स्थापित किसी संस्था से भिन्न कोई संस्था, गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए ठीक है वहां सरकार, ऐसी संस्था को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के लिए संस्था के रूप में मान्यता दे सकेगी :

परन्तु इस धारा के अधीन किसी संस्था को तब तक मान्यता नहीं दी जाएगी जब तक ऐसी संस्था ने इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों की अपेक्षाओं का अनुपालन न किया हो ।

(3) उपधारा (1) के अधीन स्थापित प्रत्येक संस्था, ऐसी रीति से अनुरक्षित की जाएगी और ऐसी शर्तों को पूरा करेगी जो समुचित सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, "गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्ति" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो अस्सी प्रतिशत या अधिक की एक या अधिक निःशक्तताओं से ग्रस्त है ।

अध्याय 12

निःशक्त व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त और आयुक्त

57. **निःशक्त व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त की नियुक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए निःशक्त व्यक्तियों के लिए मुख्य आयुक्त, नियुक्त कर सकेगी ।

(2) कोई व्यक्ति, मुख्य आयुक्त के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब उसके पास पुनर्वास से संबंधित विषयों की बाबत विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो ।

(3) मुख्य आयुक्त को संदेय वेतन और भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें (जिनके अंतर्गत पेंशन, उपदान और अन्य सेवानिवृत्ति फायदे हैं) ऐसी होंगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(4) केन्द्रीय सरकार, मुख्य आयुक्त को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के प्रकार और प्रवर्ग अवधारित करेगी और मुख्य आयुक्त को ऐसे अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जो वह ठीक समझे ।

(5) मुख्य आयुक्त को उपलब्ध कराए गए अधिकारी और कर्मचारी अपने कृत्यों का निर्वहन मुख्य आयुक्त के साधारण अधीक्षण के अधीन करेंगे ।

(6) मुख्य आयुक्त को उपलब्ध कराए गए अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें ऐसी होंगी, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

58. **मुख्य आयुक्त के कृत्य** – मुख्य आयुक्त, –

(क) आयुक्तों के कार्य का समन्वय करेगा ;

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा संवितरित निधियों के उपयोग को मानीटर करेगा ;

(ग) निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों और उनको उपलब्ध कराई गई सुविधाओं के संरक्षण के लिए कदम उठाएगा ।

(घ) अधिनियम के कार्यान्वयन के संबंध में केन्द्रीय सरकार को ऐसे अंतरालों पर, जो वह सरकार विहित करे, रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा ।

59. **निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों से वंचित किए जाने के संबंध में परिवादों की मुख्य आयुक्त द्वारा जांच किया जाना** – धारा 58 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, मुख्य आयुक्त, स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर या अन्यथा, –

(क) निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों से वंचित किए जाने,

(ख) समुचित सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा निःशक्त व्यक्तियों के कल्याण और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाई गई विधियों, नियमों, उपविधियों, विनियमों, जारी किए गए कार्यपालक आदेशों, मार्गदर्शक सिद्धांतों या अनुदेशों के कार्यान्वित न किए जाने,

से संबंधित मामलों के संबंध में परिवादों की जांच कर सकेगा और मामले को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठा सकेगा ।

60. **निःशक्त व्यक्तियों के लिए आयुक्त की नियुक्ति** – (1) प्रत्येक राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, निःशक्त व्यक्तियों के लिए आयुक्त, नियुक्त कर सकेगी ।

(2) कोई व्यक्ति, आयुक्त के रूप में नियुक्ति के लिए तभी अर्हित होगा जब उसके पास पुनर्वास से संबंधित विषयों की बाबत विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो ।

(3) आयुक्त को संदेय वेतन और भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निर्बंधन और शर्तें (जिनके अंतर्गत पेंशन, उपदान और अन्य सेवानिवृत्ति फायदे हैं) ऐसी होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(4) राज्य सरकार, आयुक्त को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के प्रकार और प्रवर्ग अवधारित करेगी और आयुक्त को ऐसे अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जो वह ठीक समझे ।

(5) आयुक्त को उपलब्ध कराए गए अधिकारी और कर्मचारी अपने कृत्यों का निर्वहन आयुक्त के साधारण अधीक्षण के अधीन करेंगे ।

(6) आयुक्त को उपलब्ध कराए गए अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

61. **आयुक्त की शक्तियां** – आयुक्त, राज्य के भीतर, –

(क) निःशक्त व्यक्तियों के फायदे के लिए कार्यक्रमों और स्कीमों के संबंध में राज्य सरकार के विभागों से समन्वय करेगा ;

(ख) राज्य सरकार द्वारा संवितरित निधियों के उपयोग को मानीटर करेगा ;

(ग) निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों और उनको उपलब्ध कराई गई सुविधाओं के संरक्षण के लिए कदम उठाएगा ।

(घ) अधिनियम के कार्यान्वयन के संबंध में राज्य सरकार को ऐसे अंतरालों पर, जो वह सरकार विहित करे, रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा

और उसकी एक प्रति मुख्य आयुक्त को अग्रेषित करेगा ।

62. **निःशक्त व्यक्ति के अधिकारों से वंचित किए जाने, से संबंधित मामले के संबंध में, परिवादों की आयुक्त द्वारा जांच किया जाना** – धारा 61 के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, आयुक्त, स्वप्रेरणा से या किसी व्यथित व्यक्ति के आवेदन पर, या अन्यथा, –

(क) निःशक्त व्यक्तियों के अधिकारों से वंचित किए जाने,

(ख) समुचित सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा निःशक्त व्यक्तियों के कल्याण और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए बनाई गई विधियों, नियमों, उपविधियों, विनियमों, जारी किए गए कार्यपालक आदेशों, मार्गदर्शक सिद्धांतों या अनुदेशों के कार्यान्वित न किए जाने,

से संबंधित मामलों के संबंध में परिवादों की जांच कर सकेगा और मामले को समुचित प्राधिकारियों के समक्ष उठा सकेगा ।

63. **प्राधिकारियों और अधिकारियों को सिविल न्यायालय की कतिपय शक्तियों का होना** – (1) मुख्य आयुक्त और आयुक्तों को, इस अधिनियम के अधीन उनके कृत्यों के निर्वहन के प्रयोजन के लिए, निम्नलिखित विषयों की बाबत वही शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय, किसी न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात् :–

(क) साक्षियों को समन करना और हाजिर कराना ;

(ख) किसी दस्तावेज के प्रकटीकरण और पेश किए जाने की अपेक्षा करना ;

(ग) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति की अपेक्षा करना ;

(घ) शपथपत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना ; और

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ।

(2) मुख्य आयुक्त और आयुक्तों के समक्ष प्रत्येक कार्यवाही, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और धारा 228 के अर्थ में

न्यायिक कार्यवाही होगी और मुख्य आयुक्त, आयुक्त, सक्षम प्राधिकारी, को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

64. **वार्षिक रिपोर्ट का मुख्य आयुक्त द्वारा तैयार किया जाना** – (1) मुख्य आयुक्त, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किया जाए, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए, पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान अपने क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण देते हुए एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसकी एक प्रति केन्द्रीय सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) केन्द्रीय सरकार, वार्षिक रिपोर्ट को, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी जिसके साथ उसमें की गई सिफारिशों पर, जहां तक कि वे केन्द्रीय सरकार से संबंधित हैं, की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई और ऐसी किसी सिफारिश या उसके भाग की अस्वीकृति के कारणों को, कोई हो, स्पष्ट करने वाली सिफारिशें होंगी ।

65. **वार्षिक रिपोर्टों का आयुक्तों द्वारा तैयार किया जाना** – (1) आयुक्त, ऐसे प्ररूप में और ऐसे समय पर, जो राज्य सरकार द्वारा विहित किया जाए, प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए, पूर्ववर्ती वित्तीय वर्ष के दौरान अपने क्रियाकलापों का पूर्ण विवरण देते हुए एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा और उसकी एक प्रति राज्य सरकार को अग्रेषित करेगा ।

(2) राज्य सरकार, वार्षिक रिपोर्ट को, राज्य विधानमंडल के समक्ष रखवाएगी जिसके साथ उसमें की गई सिफारिशों पर, जहां तक कि वे राज्य सरकार से संबंधित हैं, की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई और ऐसी किसी सिफारिश या उसके भाग की, यदि कोई हों, स्वीकार न किए जाने के कारणों को स्पष्ट करने वाली सिफारिशें होंगी ।

अध्याय 13

सामाजिक सुरक्षा

66. **समुचित सरकारों और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा पुनर्वास कार्य किया जाना** – (1) समुचित सरकारें और स्थानीय प्राधिकारी, अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर सभी निःशक्त व्यक्तियों का पुनर्वास करेंगे या कराएंगे ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए, समुचित सरकारें और स्थानीय

प्राधिकारी, गैर सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान करेंगे ।

(3) समुचित सरकारें और स्थानीय प्राधिकारी, पुनर्वास नीतियां बनाते समय निःशक्त व्यक्तियों के लिए कार्य कर रहे गैर सरकारी संगठनों से परामर्श करेंगे ।

67. **निःशक्त कर्मचारियों के लिए बीमा स्कीम** – (1) समुचित सरकार, अपने निःशक्त कर्मचारियों के फायदे के लिए एक बीमा स्कीम, अधिसूचना द्वारा, बनाएगी ।

(2) इस धारा में किसी बात के होते हुए भी समुचित सरकार, कोई बीमा स्कीम बनाने के बदले, अपने निःशक्त कर्मचारियों के लिए एक आनुकल्पिक सुरक्षा स्कीम बना सकेगी ।

68. **बेरोजगारी भत्ता** – समुचित सरकारें, अपनी आर्थिक क्षमता और विकास की सीमाओं के भीतर, ऐसे निःशक्त व्यक्तियों के लिए, जो विशेष रोजगार कार्यालय में दो वर्ष से अधिक समय से रजिस्ट्रीकृत हैं और जिन्हें किसी लाभप्रद उपजीविका में नहीं लगाया जा सका है, बेरोजगार भत्ता के संदाय के लिए एक स्कीम, अधिसूचना द्वारा, बनाएंगी ।

अध्याय 14

प्रकीर्ण

69. **निःशक्त व्यक्तियों के लिए आशयित किसी फायदे का कपटपूर्वक उपभोग करने के लिए दंड** – जो कोई, निःशक्त व्यक्तियों के लिए आशयित किसी फायदे का कपटपूर्वक उपभोग करेगा या उपभोग करने का प्रयत्न करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा ।

70. **मुख्य आयुक्त, आयुक्तों, अधिकारियों और अन्य कर्मचारिवृन्द का लोक सेवक होना** – मुख्य आयुक्त, आयुक्तों तथा उनको उपलब्ध कराए गए अन्य अधिकारियों और कर्मचारिवृन्द को भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ में लोक सेवक समझा जाएगा ।

71. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या आदेशों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी

बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारों या स्थानीय प्राधिकारियों या सरकार के किसी अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

72. **अधिनियम का किसी अन्य विधि के अतिरिक्त होना न कि उसके अल्पीकरण में** – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के या निःशक्त व्यक्तियों के फायदे के लिए अधिनियमित या जारी किए गए किन्हीं नियमों, आदेश या इसके अधीन जारी किए गए किन्हीं अनुदेशों के अतिरिक्त होंगे, न कि उनके अल्पीकरण में ।

73. **नियम बनाने की समुचित सरकार की शक्ति** – (1) समुचित सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) वह रीति जिससे, किसी राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र की धारा 3 की उपधारा (2) के खंड (ट) के अधीन चुना जाएगा ;

(ख) वे भत्ते जो सदस्य धारा 4 की उपधारा (7) के अधीन प्राप्त करेंगे ;

(ग) प्रक्रिया के वे नियम, जिनका केन्द्रीय समन्वयन समिति धारा 7 के अधीन अपने अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के संबंध में पालन करेगी ;

(घ) ऐसे अन्य कृत्य, जिन्हें केन्द्रीय समन्वयन समिति धारा 8 की उपधारा (2) के खंड (ज) के अधीन कर सकेगी ;

(ङ) वह रीति जिससे, किसी राज्य सरकार या संघ राज्यक्षेत्र को धारा 9 की उपधारा (2) के खंड (ज) के अधीन चुना जाएगा ;

(च) वे भत्ते, जो सदस्य धारा 9 की उपधारा (3) के अधीन प्राप्त करेंगे ;

(छ) प्रक्रिया के वे नियम, जिनका केन्द्रीय कार्यपालिका समिति

धारा 11 के अधीन अपने अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के संबंध में पालन करेगी ;

(ज) वह रीति और वे प्रयोजन, जिनके लिए किसी व्यक्ति को धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन सहयुक्त किया जा सकेगा ;

(झ) वे फीस और भत्ते, जिन्हें केन्द्रीय कार्यपालिका समिति से सहयुक्त कोई व्यक्ति धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन प्राप्त करेगा ;

(ञ) वे भत्ते, जो सदस्य धारा 14 की उपधारा (7) के अधीन प्राप्त करेंगे ;

(ट) प्रक्रिया के वे नियम, जिनका राज्य समन्वयन समिति धारा 17 के अधीन अपने अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के संबंध में पालन करेगी ;

(ठ) ऐसे अन्य कृत्य जिन्हें राज्य समन्वयन समिति धारा 18 की उपधारा (2) के खंड (छ) के अधीन कर सकेगी ;

(ड) वे भत्ते, जो सदस्य धारा 19 की उपधारा (3) के अधीन प्राप्त करेंगे ;

(ढ) प्रक्रिया के वे नियम, जिनका राज्य कार्यपालिका समिति धारा 21 के अधीन अपने अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार के संबंध में पालन करेगी ;

(ण) वह रीति और वे प्रयोजन, जिनके लिए किसी व्यक्ति को धारा 22 की उपधारा (1) के अधीन सहयुक्त किया जा सकेगा ;

(त) वे फीस और भत्ते, जिन्हें राज्य कार्यपालिका समिति से सहयुक्त कोई व्यक्ति धारा 22 की उपधारा (3) के अधीन प्राप्त कर सकेगा ;

(थ) वह जानकारी या विवरणी, जो प्रत्येक स्थापन में के नियोजक को देनी होगी और वह विशेष रोजगार कार्यालय जिसको ऐसी जानकारी या विवरणी धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन दी जाएगी ;

(द) वह प्ररूप जिसमें, और वह रीति जिससे, अभिलेख किसी

नियोजक द्वारा धारा 37 की उपधारा (1) के अधीन रखा जाएगा ;

(ध) वह प्ररूप जिसमें, और वह रीति जिससे, धारा 52 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन किया जाएगा ;

(न) वह रीति जिससे, इंकार करने का आदेश, धारा 52 की उपधारा (2) के अधीन संसूचित किया जाएगा ;

(प) ऐसी सुविधाएं या स्तरमान, जो धारा 52 की उपधारा (3) के अधीन दी जानी या बनाए रखी जानी अपेक्षित हैं ;

(फ) वह अवधि, जिसके लिए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र धारा 52 की उपधारा (4) के खंड (क) के अधीन विधिमान्य होगा ;

(ब) वह प्ररूप, जिसमें और वे शर्तें जिनके अधीन रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, धारा 52 की उपधारा (4) के खंड (ग) के अधीन किया जाएगा ;

(भ) वह अवधि, जिसके भीतर कोई अपील धारा 54 की उपधारा (1) के अधीन की जाएगी ;

(म) वह रीति जिससे, गंभीर रूप से निःशक्त व्यक्तियों के लिए कोई संस्था धारा 56 की उपधारा (3) के अधीन अनुरक्षित की जाएगी और वे शर्तें जिन्हें पूरा किया जाएगा ;

(य) धारा 57 की उपधारा (3) के अधीन मुख्य आयुक्त के वेतन, भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(यक) धारा 57 की उपधारा (6) के अधीन अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और उनकी सेवा की अन्य शर्तें ;

(यख) वे अंतराल, जिन पर मुख्य आयुक्त धारा 58 के खंड (घ) के अधीन केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट देगा ;

(यग) धारा 60 की उपधारा (3) के अधीन आयुक्त के वेतन, भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(यघ) धारा 60 की उपधारा (6) के अधीन अधिकारियों और कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और उनकी सेवा की अन्य शर्तें ;

(यङ) वे अंतराल जिनके भीतर आयुक्त धारा 61 के खंड (घ) के अधीन राज्य सरकार को रिपोर्ट देगा ;

(यच) वह प्ररूप, जिसमें और वह समय जब वार्षिक रिपोर्ट धारा 64 की उपधारा (1) के अधीन तैयार की जाएगी ;

(यछ) वह प्ररूप, जिसमें और वह समय जब वार्षिक रिपोर्ट धारा 65 की उपधारा (1) के अधीन तैयार की जाएगी ;

(यज) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना अपेक्षित है या विहित किया जाए ।

(3) केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 33 के परन्तुक, धारा 47 की उपधारा (2) के परन्तुक के अधीन बनाई गई प्रत्येक अधिसूचना, उसके द्वारा धारा 27, धारा 30, धारा 38 की उपधारा (1), धारा 42, धारा 43, धारा 67 और धारा 68 के अधीन बनाई गई प्रत्येक स्कीम और उसके द्वारा उपधारा (1) के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद्, के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम, अधिसूचना या स्कीम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगी । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम अधिसूचना या स्कीम, नहीं बनाई जानी चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगी । किन्तु नियम, अधिसूचना या स्कीम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(4) राज्य सरकार द्वारा धारा 33 के परन्तुक, धारा 47 की उपधारा (2) के परन्तुक के अधीन बनाई गई प्रत्येक अधिसूचना, उसके द्वारा धारा 27, धारा 30, धारा 38 की उपधारा (1), धारा 42, धारा 43, धारा 67, धारा 68 के अधीन बनाई गई प्रत्येक स्कीम और उसके द्वारा उपधारा (1) के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, जहां विधानमंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां ऐसा विधानमंडल एक सदन से मिलकर बनता है वहां उस सदन के समक्ष, रखा जाएगा ।

74. **1987 के अधिनियम 39 का संशोधन** – विधिक सेवा प्राधिकरण

अधिनियम, 1987 की धारा 12 के खंड (घ) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात् :–

"(च) निःशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकार, संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 की धारा 2 के खंड (न) में परिभाषित निःशक्त व्यक्ति है ;"।

———